१२६

सखाराम नेमचंद ग्रंथमाला.

महाकवि रत्नाकरवर्णविरचित

भरतेश-वैभव

(भोग-विजय)

प्रथम भाग.

अनुवादक—
विद्यावाचस्पति,
श्री. वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री,
संपादक— जैनबोधक, सोलापूर.

प्रकाशक—
रावजी सखाराम दोशी,
सोलापूर.

वीर सं २४६२] मूल्य रु. १।।) [सन १९३६ ई



प्रातःस्मरणीय पूज्य श्री. क्षुल्लक विमलसागर महाराज !

कर्णाटकसाहित्य उसमे भी खासकर महाकवि रत्नाकरकी कृतियोंमे आपका असीमप्रेम, सतत ध्यानाध्ययनमे अभिरुचि, विपुल भोगके होते हुए भी उसमे निस्पृहता, आदि आपके गुणोसे मुग्ध होकर यह " भोगविजय " भाग आपकी सेवामे गुरुभक्तिके एक चिन्ह रूपमे समर्पण किया जाता है ।

सोलापूर
१ । ८ । ३६

चरणसरोजचंचरीक
वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री

भरतेशवैभव और रत्नाकरवर्णी

साहित्य संसारमें कर्णाटक साहित्यके लिये बहुत ऊंचा स्थान है। कर्णाटक भाषामें जैन साहित्य विपुल रूपसे अंकित किये गये हैं। अन्य साहित्योंके अपेक्षा इसमें शब्दमाधुर्य, भावगांभीर्य व अपूर्वरचना कौशल होनेसे सुश्राव्य नहीं सुग्राह्य भी हुआ करता है। जैन साहित्यका बहुभाग अंश कर्णाटक भाषामें अंकित कहा जाय तो अनुचित न होगा। कर्णाटक देशमें बडे २ आगमोंके ज्ञाता कवि हुए हैं। उनमें सबसे अधिकश्रेय इस क्षेत्रमें प्राप्त हुआ है तो रत्नाकरवर्णीको कह सकते हैं। उसकी रचनायें सभी दृष्टिसे अद्वितीय हैं।

उपर्युक्त कविने कर्णाटक कवितावोंमें भरत चक्रवर्तीका स्वतंत्र जीवन चरित्रको खींचा है। इस ग्रंथको कर्णाटकमें " भरतेशचरिते " कहनेकी पद्धति चली आरही है, परतु कविने स्वयं पीठिकामें कहा है कि 'श्रीभरतेशवैभवविदु' अर्थात् यह भरतेश वैभव है, 'भरतेश वैभव वेंबकाव्यवनिदनोरेदेनु सुखिगळालिपुदु' अर्थात् भरतेशवैभव नामके काव्यको मैने कहा है सज्जन लोग सुने। इससे इस ग्रंथका नाम भरतेशवैभव ऐसा योग्य जान पडता है। सचमुचमें इसमें भरतके वैभवका ही वर्णन किया है, इसलिये इसको यही नाम उपयुक्त है। कोई २ इसे भरतेश संगति और अण्णाळचरितके नामसे कहते हैं, यह ग्रंथ कर्नाटकके सांगत्य छंदमें निर्मित होनेसे पहिला नाम एवं इस कविको अण्णागळु (भाईसाहेब) कहकरके पुकारनेकी पद्धति होनेसे इसका दूसरा नाम रूढिमें आया होगा।

ग्रंथ प्रमाण

यह ग्रंथ पांच कल्याणसे विभक्त है जिनको कविने क्रमसे भोग विजय, दिग्विजय, योगविजय, मोक्षविजय, अर्ककीर्तिविजय इस प्रकार

नाम दिये हैं। इन पांचकल्याणोंमें अस्सी संधि एवं ९९६० श्लोक संख्या है। देवचन्द्रके राजावलि कथामें इस ग्रन्थको ८४ संधियोंका होना सिद्ध होता है। परन्तु ४ संधि इस समय अनुपलब्ध हैं।

कवि

इस ग्रंथ कर्ताका नाम रत्नाकर वर्णी है। कविने अपनेको क्षत्रिय वंशज कहा है। उसने श्रीमन्धर स्वामीको अपने पिता, दीक्षा गुरुके स्थानमें चारुकीर्तिको एवं मोक्षगुरु हंसनाथ (परमात्मा) इस प्रकार उल्लेख किया है। देवचन्द्रने अपने ग्रंथमें इस कविका उल्लेख करते हुए लिखा है कि यह कर्णाटकके सुप्रसिद्ध क्षेत्र मूडबिद्रीके सूर्यवंशके राजा देवराजका सुपुत्र था एवं उसका नाम रत्नाकर रखा गया। बाकी उपाधि उनके बादके अवस्था की है।

रत्नाकर बाल्यकालमें ही काव्यालंकार शास्त्रमें अत्यंत प्रवीण था एवं मात्रय टीका, कुंदकुंद ग्रन्थटीका समाधिशतक, समयसार, योग रत्नाकर, नियमसार, अध्यात्मसार, स्वरूप संबोधन, इष्टोपदेश आदि ग्रंथोंको मनन पूर्वक अभ्यास कर उस देशके भैरव राजाके आस्थानमें प्रसिद्ध विद्वान् था। उसको लोकमें सबसे अधिक " निरंजन सिद्ध और चिदम्बर पुरुष " पर प्रेम था। इसे शृङ्गार कवि नामकी भी उपाधि थी।

रत्नाकर भैरव राजाका आस्थान कवि था। इसकी विद्वत्ताको देखकर राजकन्या मोहित हो गई। रत्नाकर भी उसके मोहपाशमें आगया। वह उस पर आसक्त होकर शरीरके वायुवोंको वशमें करके, वायुनिरोधयोगके बलसे महलमें पहुंचकर उस राजपुत्री के साथ प्रेम करता था। यह बात धीरे २ राजाको मालुम होनेपर राजाने उसे पकडने का प्रयत्न किया। उसी दिन रत्नाकरने अपने गुरु महेंद्रकीर्तिसे पंचाणुव्रतको लेकर अध्यात्मतत्वमें अपने आत्मा को लगाने को प्रारंभ किया। उसी समय भट्टारकजीके शिष्य विजयण्णाने एक द्वादशानुप्रेक्षा नामक ग्रंथ संगीतमें रचना की थी जिसका

बहुत आदरके साथ हाथीके ऊपर जुलूस निकाला गया। तब रत्नाकरने अपने भरतेशवैभवको भी हाथीके ऊपर रखकर जुलुस निकालना चाहिये इसप्रकार भट्टारकजीसे प्रार्थना की। तब भट्टारकजीने कहा कि उसमें दो तीन शास्त्र विरुद्ध दोष हैं इसलिये वैसा नहीं कर सकते हैं, तब रत्नाकरने इस विषयपर उनसे चर्चाकी तब उन्होने ७०० घरके श्रावकों को यही आज्ञा देदी कि इस रत्नाकर को कहीं भी आहार नहीं दिया जाय। तब रत्नाकर अपने बहिन के घरमें भोजन करते हुए, जिन धर्मपर रुसकर आत्मज्ञानिको कोई भी जाति कुछ बराबर है ऐसा समझकर लिंग बांधकर लिंगायत बन-गया, वहांपर वीरशैवपुराण बसवपुराण आदिकी रचना की। कविके विषयमें और एक कथा सुननेमें आती है। रत्नाकर बाल्य कालमें ही वैराग्यको प्राप्त कर चारुकीर्ति योगीसे दीक्षा लेकर योगाभ्यास करता था। प्रातः काल उठते ही अपने साथीदारोंको एवं शिष्योंको उपदेश देता था। दिनपर दिन उसके शिष्य वर्गकी वृद्धि होती जाति थी। कुछ लोग उसके प्रभावको देखकर उससे जलने थे, उन लोगोंने एक दिन प्रातः काल होनेके पहिले रत्नाकरके पलंगके नीचे एक वेश्याको लाबिठालकर स्वयं यथावत् शास्त्र सुननेको बैठगये। उस वेश्याने कुछ समयबाद अपने आभरणोंका शब्द किया तो उन ईर्षालु लोगोंने यह क्या है ऐसा कह कर उस वेश्याको बाहर निकाल कर रत्नाकरका अपमान किया। रत्नाकर एकदम उठकर वहांसे चला गया। कुछ लोग जाकर बहुत प्रार्थना करने लगे। परंतु वह पीछे नहीं लौटा। जाते २ एक नदीको पारकर रहा था, तब भक्तोंने शपथपूर्वक प्रार्थनाकी तो भी "मुझे ऐसे दुष्टोंका संपर्ग नहीं चाहिये। मैं आज ही इस जैनधर्मको तिलांजलि देता हूं" ऐसा कहकर उस नदीमें डूब गया। वहांसे उठकर एक पर्वतपर चलागया। पर्वतपर एक शैवग्रंथको हाथीपर जुलुस निकालते हुए देखकर उस ग्रंथको बांचकर उसमें कुछ भी रस ही नहीं है

ऐसा कह दिया। सब लोगोंने राजासे इसकी शिकायत की। राजाने उसे सरम ग्रंथ समझकर उसके मरणा के लिये आज्ञा दी थी। रत्नाकर को बुलाकर राजा कहने लगे " तुम्हारा रस कौनसा है ? तब रत्नाकरने ९ मासकी अवधि मांगी। उसके बाद इस भरतेशवैभवको रचकर राजाको दिखाया कि इसमें रस है तब राजा इस काव्यको सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। बडे २ विद्वान इसके काव्यसे मुग्ध हो गये। राजाने कविका पूर्ण सत्कार करके लिंगायत होनेके लिये आग्रह किया। कविने उस राजाको प्रसन्न करनेके लिये लिंगको धारण लिया। परंतु कहा कि मैं जिस समय मरूंगा मेरा दाहसंस्कार वगैरे जैन ही करेंगे। मैं बाहरसे लिंगायत होनेपर भी अन्दरसे जैन हूं एवं यह लिंग नहीं केवल चांदीकी पेटी है ऐसा मनमें समझता था। अन्तमें जैन होकरही मर गया

इन दोनों कथावोंको देखने पर मालुम होता है कि कवि पूर्वमें जैन होकर किसी समय किसी कारणसे लिंगायत बनकर पुन जैन बनगये थे।

यद्यपि इस ग्रंथकी रचना शुभ स्वर्णीसे हुई है यह बात उपर्युक्त कथा संदर्भोंसे मालुम होती है तथापि कवि स्पष्ट कहते है कि मैंने इस काव्यको किसीके साथ स्पर्धा बुद्धिसे इसकी रचना नहीं की। परमात्मा की आज्ञासे आत्मसंतोषके लिये मेरा इसकी रचना की। चाहे इसे कोई पसंद करें या न करें इसकी मुझे चिंता नहीं इत्यादि। संसारके नियमा-नुसार कविने अपने काव्यके प्रति आदरकी अपेक्षा नहीं की तो उसका यथेष्ट आदर हो गया। अर्थात जिस पदार्थकी हम उपेक्षा करते हैं वह तो हमें मिल जाता है जिसको हम चाहते है वह हमसे दूर चला जाता है। कविने इस काव्यका आदर एवं अपने लिये कीर्तिकी इच्छा नहीं की। परन्तु वे दोनों बातें उसे अनायास ही प्राप्त हुई। कीर्ति चाहनेसे नहीं आती, सत्कार्य करनेसे अपने आप आती है।

कविने स्वयं एक प्रसंगमें कहा है कि इस कथाको कहते समय

लोकमें सब लोगोंको संतोष हुआ किंतु ४-५ पोलियोंको ईर्षासे मनमें दुःख हुआ। उनसे कवि उपेक्षित था विद्वान लोगोंने उनका विरोध किया इस कविका यथेष्ट आदर किया।

कविकी इतर रचना

कविने भरतेश वैभवके अलावा रत्नाकर शतक, अपराजित शतक त्रिलोक शतक नामक शतकत्रय नामक ग्रंथकी रचना की है। एवं करीब २००० श्लोक प्रमाण प्रमाण अध्यात्मगीतोंकी रचना की है उपर्युक्त शतकत्रयमें रत्नाकर शतकमें वैराग्यरस अपराजितशतकमें भक्ति-रस एवं तीसरे शतकमें त्रिलोकका वर्णन है। वैराग्य और भक्तिशतक बहुत ही हृदयग्राही ढंगसे लिखे गये हैं। भरतेशवैभवमें अपने गुरुको चारुकीर्ति व शतकत्रयमें देवेंद्रकीर्तिके नामसे कवि उल्लेख करते हैं। इससे ये दोनों ग्रंथ भिन्न २ रत्नाकरके हैं ऐसा लोग समझेंगे। परन्तु यह बात नहीं है। कविके जीवनघटनामें दीक्षा गुरु चारुकीर्ति होनेपर भी जब उन्होंने उसे बहिष्कृत किया तब वह देवेंद्रकीर्तिके पास जाकर रहा होगा। चारुकीर्ति मूडबिद्रीके भट्टारकका नाम हैं। देवेंद्रकीर्ति होम्बुच गादीके भट्टारक हैं। दोनों ग्रंथोंकी रचना शैली, यत्र तत्र वर्णनसादृश्य आदि बातोंको देखनेपर यह बात निश्चित होजाती है कि दोनोंके कर्ता एक ही प्रसिद्ध रत्नाकर है। रत्नाकरको शृंगारकवि हंस-राज नामक उपाधि थी। यदि शतकत्रयके कर्तासे यह रत्नाकर भिन्न माना जावे तो उस रत्नाकरका कोई शृंगार काव्य होना चाहिये। जिससे वह उपाधि चरितार्थ होती। परंतु अन्य कोई ग्रंथ नहीं है। यही भरतेश वैभव उस उपाधिके लिये कारण है। इसमें कोई संदेह नहीं। इसलिये ये सब रचनायें रत्नाकर वर्णीकी है एवं कर्णाटक साहित्यमें अद्वितीय हैं।

काल विचार.

रत्नाकरने अपने कालके विषयमें त्रिलोक शतककी रचना करते

समय कहा है कि "पणिपेंद्रगति इंदु शालिशक"। इस प्रकार कह-
नेसे इनका समय शालिवाहन शक वर्ष १४७० ठहरता है। अर्थात्
सन् १५५७ है। आजसे करीब २ पौनेचार सौ वर्ष पूर्वका यह रत्ना-
कर है। रत्नाकरके विषयमें हमें विशेष लिखनेकी आवश्यकता नहीं।
उनकी प्रखर विद्वत्ता उसकी रचनाओंसे ही स्पष्ट है। किस विषयमें
इनकी गति नहीं थी यह कहने में असमर्थ हैं।

अपने ग्रंथमें कविने प्रत्येक विषयको चित्रण किया है। शृंगार,
अलंकार, अध्यात्म, संगीत आदि विषयोंका वर्णन करते हुए भोगीयोगि-
योंको हर्ष उत्पन्न करनेकी शक्ति उनमें अद्भुत थी। यही कारण है कि
उनका यह काव्य विद्वानोंको, यहांतक कि बडे २ योगियोंको भी
आदरणीय हुआ।

इस प्रकार हम इस प्रस्तावनामें कविके विषयमें भूमिका बांधनेके
बाद उनकी कृति जो प्रकृतकाव्य उसपर भी थोडा विचार करें जिससे
आगे काव्यको बांचनमें विशेष सहायता मिल सकेगी।

कथासार।

कौशल देशके अयोध्यानगरीमें श्रीवृषभनाथ तीर्थंकरके पुत्र
षट्खंडाधिपति भरत चक्रवर्ति बहुत आनंदके साथ राज्य पालन करता
था। वह अत्यंत निपुण एवं प्रजाओंका आन्तरिक हितचिंतक था।
सदा उसे आत्मविनोदके कार्यमें प्रसन्नता होती थी। वह अपने दर-
बारमें बहुतसे विद्वान् कवियोंके साथ कविता विनोदमें संगीत विद्वा-
नोंके साथ तद्विषयमें प्रातःकालके समयको बिताता था। देव पूजादि
नित्य कर्मोंसे निवृत्त होकर ही वह प्रतिनित्य दरबारमें आता था।
दरबार बरखास्तकर सत्पात्रदान देनेके कार्यमें लगता था। मुनियोंको
आहार देकर भोजन करनेमें अपनेको धन्य समझता था। भोजनानंतर

दिनके शेष भागमें अपने ९६ हजार राणियोंके साथ भोगयोगमें लीन होकर राजयोगी होकर बहुतसे सुखोंका अनुभव करते हुए भी योगीके समान रहता था इसी प्रकार उसने अपने सत्कार्योंसे धवल यशको प्राप्त किया।

भोगविजय

एक दिन दसरेके समय आयुध पूजा आदि करके वह राजा भरत दिग्विजयके लिये निकला। सबसे पहिले मागध, वरतनु, प्रभास इत्यादि व्यन्तर राजावोंसे सन्मानको प्राप्तकर उनसे बहुमूल्य भेंटको प्राप्त करते हुए अन्य षट्खण्डवर्ति राजावोंसे स्त्रीरत्नादि भेंट प्राप्त करते हुए बहुत सुखके साथ दिग्विजय यात्रा की। वह साठ हजार वर्ष दिग्विजयमें रहा। बीचमें उसे बारह सौ तद्भव मोक्षगामी पुत्ररत्नोंकी प्राप्ति हुई। उन सबका यज्ञोपवीत विवाह आदि संस्कारोंको बहुत समारम्भके साथ करते हुए जब दिग्विजयसे लौटे तब उसके छोटे भाई बाहुबलि उसे सामना करने लगा। युद्धकेलिये सन्नद्ध होकर आया। भरतने अपने छोटे भाईके साथ युद्ध न करके अपने वचन चातुर्यसे ही उसे जीत लिया। बाहुबलि अपने अपराधकेलिये पश्चात्तापकर दीक्षा लेकर जिनयोगी बन गया। भरतेश बहुत समारम्भके साथ निज नगर प्रवेश कर दिग्विजयकी थकावटको दूर करने लगे।

दिग्विजय

बाहुबलि जिन दीक्षालेकर जंगलमें जाकर घोर तपश्चर्या कर रहा था। तथापि उसे आत्मसिद्धि नहीं हुई। इस समाचारको सुनकर भरतने अपने पिता श्री आदिनाथ भगवंतके समवशरणमें जाकर इसका कारण पूछा। पूछनेपर उसके हृदयमें अभीतक शल्य मौजूद है जो आत्मसिद्धिकेलिये बाधक है ऐसा मालुम कर उसी जंगलमें जाकर बाहुबलि योगिसे अनेक प्रकारसे प्रार्थना कर उसके शल्यको दूर कर उसे केवल ज्ञानकी प्राप्ति कराई। भरतकी माता यशस्वती देवी भी

अनंतवीर्य स्वामीसे दीक्षा लेकर अर्जिका बनगई। कैलास पर्वतमें जो जिन निवास निर्माण कराये गये थे उनका मुख्य वस्त्रोद्घाटन भरत चक्रवर्तिने अपने सकल परिवारोंसे युक्त होकर विधिपूर्वक बहुत ही समारंभके साथ करके अपूर्व धर्म प्रभावना की।

योगविजय

भरतचक्रवर्तिके सौ पुत्र विद्याध्ययन कर रहे थे। एक दिन उनके भाई मेघज संसारसे विरक्त होकर दीक्षा लेकर चला गया। तब उन सौ पुत्रोंने भी संसारसे वैराग्यको प्राप्त कर लिया तदनंतर समवशरणमें जाकर भगवान आदिनाथसे तत्वोपदेश सुना एवं मोक्षमार्गको समझकर जिन दीक्षासे दीक्षित हो गये। इस समाचारको मालूम कर भरतचक्रवर्तिको बड़ा दुःख हुआ। वह उसी समय समवशरण गया जाकर अपने पुत्रोंको देखकर तीर्थनाथकी बड़ी भक्तिसे पूजा की। दूसरे दिन भगवान आदिनाथको निर्वाणपदकी प्राप्ति हुई।

भरत चक्रवर्ति पुनः अयोध्याको आकर राज्य पालन करने लगा। एक दिन दर्पणमें मुख देखते समय अपने एक पके बालको देखकर उसे वैराग्य उत्पन्न हुआ। तत्क्षण अर्ककीर्तिका पट्टाभिषेक किया। तदनंतर स्वयं ही अपने गुरु होकर दीक्षा लेली, एवं निश्चलध्यानके बलसे तैजस कार्मण वर्गणाओंको जलाकर अंतर्मुहूर्तमें केवल ज्ञानको प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त किया।

मोक्ष विजय

अर्ककीर्ति राज्यको पालन करता था। परन्तु उसे जब यह समाचार मिला कि पिताश्री भरत मुक्तिको गये तब उसका भी चित्त उदास हुआ राज्यमें मोहको छोड़कर अपने छोटे भाई आदिराजके साथ जिन दीक्षा लेली। फिर क्रमसे मूलोत्तर गुणोंको पालन करते हुए कुछ समय बाद निश्चल ध्यानके बलसे मुक्तिको गया।

अर्ककीर्तिविजय

मुख्य पात्रवर्ग·

कथासार उपर्युक्त प्रकार है। इस साहित्यका मुख्य नायक भरत है। राजा भरत जैन तीर्थंकरोंमें सबसे आदिके श्री आदिनाथ तीर्थंकरके आदिपुत्र, आदिचक्रवर्ती व तद्भव मोक्षगामी था। षट्खण्डको पालन करते हुए भी वह आत्मानुभवी था अतएव राजा होकर भी योगी था। भरतेशके जीवनकी प्रत्येक दशा अनुकरणीय है। विद्वान् कविने काव्य के मुख्य अंगको पूर्ण बल देकर उसे सुंदर रूपसे चित्रण किया है। भरत चक्रवर्तीको ९६ हजार राणियां थी और १२०० पुत्र तद्भव मोक्षगामी थे। सारांश यह है कि भरतेश सत् युगके आदि महापुरुष था। इसलिये इस खंडको भरत खंड कहते हैं।

भुजबलि राजा भरतका छोटे भाई है। भरतेश चक्रवर्ती होकर जिस समय अयोध्यामे राज्य पालन कर रहा था उस समय भुजबलि युवराज होकर पौदनापुरमें राज्य पालन-कर रहा था। भुजबलि अपने नामके समान महावीर था। षट्खण्ड भरतको वशमें होने के बाद भी भुजबलिने भरतकी आधीनता स्वीकार नही की। इसलिये भाई भाइ-योंमें परस्पर युद्ध हुआ। उसमें भुजबली की जय हुई। पीछे राज्यके लिये मुझे भाईसे युद्ध करना पड़ा इस प्रकारके पश्चात्तापसे वैराग्य पाकर भरतको राज्य सौंपकर दीक्षा लेकर चला गया इस प्रकार पुराणोंमें कथन है। परन्तु कविने अपने चातुर्यसे भरतको धीरोदात्त रूपसे वर्णन करने की सदिच्छासे कथाभागको तत्वाविरोध रूपसे थोडा बदलकर भरतेश की ही जय हुई है। वह भी बाहुबलिके साथ युद्ध न करके भरतने केवल अपने वचन चातुर्यसे ही बाहुबलिको परास्त किया जिससे लज्जित होकर वह विरक्त हुआ ऐसा लिखा है। यहांपर पाठकोंको जैनागममें परस्पर विरोधिताका भास होजायगा। परन्तु वस्तुतः विरोध नहीं है यह भरतेश वैभव होनेसे भरतको धीर, उदात्त व उच्च पात्रके रूपसे वर्णन

करना यह काव्यका मर्म है। फिर भी दूरदर्शितासे कविने आगमविरोधा भासके भ्रमको दूर करनेके लिये ही मानो उस समय भरतके मुखमें यह कहलाया है कि ....अरे भाई! मैंने युद्धसे इनका तुमको बातोंमें लगाया ऐसा तुम शायद मनमें कहोगे। वैसा नहीं! तुम जिस ढंगसे युद्धके लिये आये हो इसमें तुम्हारे लिये अवश्य विजय है। सामान्य मनुष्योंके समान युद्ध करनेकी क्या आवश्यकता है। अच्छा! सही! तुम जीते हम हार गये। मेरे भाईकी जीत मेरी जीत नहीं क्या! मुझे जरा भी मनमें क्लेश नहीं है' इससे भी वाचक ठीक २ अर्थ समझेंगे। बाहुबलि आदिकामदेव था, इसलिये ग्रंथमें बाहुबलिकेलिये यत्रतत्र कामदेवके पर्याय वाची शब्द उपयोगमें लाये गये हैं। बाहुबलिकी पट्टरानी इच्छा महादेवी, मंत्री प्रणयचंद्र, सेनापति वसंतक, पट्टहाथी माकंद, बाहुबलिका जीवन पूर्वमें तिरस्कार पश्चात् अनुराग उत्पन्न होने लायक है। यही बाहुबलि अब गोम्मटस्वामी कहलाते हैं।

बुद्धिसागर भरतका मंत्री है। यह चक्रवर्तिकेलिये दाहिने हाथके समान रहकर अपने अनुभवसे चक्रवर्तीके सर्व कार्य बुद्धिमत्तासे साधन करता था। उसकेलिये अंतःपुर प्रवेश भी निषिद्ध नहीं था। वह चक्रवर्तीके मनोगत विषयको पहिलेसे समझकर उसी प्रकार सर्व व्यवस्था करता था। चक्रवर्तीके मित्र मागध, वरतनु, प्रभास इत्यादि व्यंतरोंको जिस समय सत्कार किया गया उस समय उनके योग्यतानुसार वचन कहे थे। चक्रवर्तीको विश्वासपात्र षट्खण्डकार्यनिर्वाहक होने पर भी सबसे प्रेम पूर्वक व्यवहार करता था।

जयराज यह भरतके यशस्वी सेनापति है। इसीने अपनी कुशलतासे भरतको षट्खण्डको साधन कर दिया था। इसको भरतने मेघेश्वर नामकी उपाधि देदी। यह महावीर था। इसके चरित्रको वर्णन करने वाले कर्नाटक व संस्कृत साहित्यमें कई ग्रंथ हैं।

मागधामर यह भरतेशके व्यंतर सेनापति है पूर्व सागरके एक

द्वीपमें वह राज्य पालन कर रहा था। वह धीर व महागर्वी था। क्रोधी होने पर भी हितैषियोंके वचनको सुननेवाला था. भरतके आगमनको सुन. पहिले यद्यपि उसने युद्धकी तैय्यारी की फिर भी बादमें मंत्रीके समझा- नेसे समझकर भरतचक्रवर्तीको भेंट वगैरह देकर उनकी सेवामें उपस्थित हुआ। उसके बाद कई व्यंतर राजाओंको वशमें करके दिया।

नमिराज भरतके छोटे साला है। भरतचक्रवर्ति मुझसे संपत्तिमें बड़ा होनेपर भी वंशमें बड़ा नहीं है इस गर्वसे भेंट व बहिन सुभद्रा देवीको देनेके समयमें भरत यदि हमारे घरमें आयगा तो देंगे नहीं तो नहीं देंगे इस प्रकार उसने निश्चय किया था। फिर माता व बुद्धिसागर के समझानेसे भरतके पासमें जाकर बहुत सभ्रमसे सुभद्रादेवीका विवाह भरतके साथ किया। भरतने उसका सत्कार किया। कविने की पात्रोंको भी अच्छी तरह वर्णन किया है।

यशस्वतीदेवी भरतेशकी पूज्य माता थी पुत्रके प्रति माताका अत्यधिक प्रेम व पुत्रकी माताके प्रति श्रद्धा उनमें आदर्शरूपसे थी। यशस्वतीदेवी सदा आत्मचिंतनके साथ २ पुत्रके प्रति हितकामना करती थी। भरतचक्रवर्तीकी ९६ हजार राणियोंकी भक्ति सासुके प्रति अनुकरणीय थी। दिग्विजयप्रस्थानके समय बहुएं और बेटेको मातुश्रीने आशिर्वादके साथ जो समयोचित वचन कहे वह मनन करने योग्य है। बहुवोंनें जो पुन: सासुके दर्शन करने पर्यंत कुछ नियम ग्रहण कर लिया है इसीसे उनके भक्ति वात्सल्य व्यक्त होजाता है।

कुसुमाजी भरतके ९६ हजार स्त्रियोंमें अत्यधिक प्रीतिपात्र थी यद्यपि भरतका प्रेम सबकेलिये समान था फिर भी उसके गुणसे विशेष अनुरक्त था भरत उसे बाहरसे नहीं बतलाता था, फिर भी कुसुमाजीने जो तोतेके साथ जो सरससल्लाप किया था एवं भरतको अपने घर बुलाकर भोजन कराते समय जो सल्लाप किया उससे उनका प्रेम अच्छी तरह व्यक्त होता है।

सुभद्रा देवी भरतकी पट्टराणी थी, वह भरतके खास मामाकी बेटी थी। वह गुणोंमें भरतचक्रवर्तीकेलिये अनुगुण थी। पट्टराणी होनेपर भी सभी राणियोंसे प्रेमपूर्वक व्यवहार करती थी। सभी राणियोंको संतान होनेपर भी इसकेलिये कोई संतान नहीं थी। फिर भी इतर सबके संतानको अपने संतानके समान निर्माया भावसे प्रेम करती थी।

इसके अलावा बहुतसे पात्र हैं जिनका परिचय स्थानप्रसंगमें पाठकोंको हो जायगा।

साराशत सर्व प्रकारसे यह काव्य सुंदर मृदुमधुरवाक्योंकी रचनासे अर्थसे इतिवृत्त चित्ताकर्षक, इहपरमें सुखोत्पादक नीतियोंसे युक्त, मानवीय हृदयमें महागुणोंको बीजारोपण करनेवाला, कथाप्रेमियोंको आनंद देनेवाला, अध्यात्मप्रेमियोंको पिघलनेवाला, शृंगारप्रेमियोंको अध्यात्मरस शृंगार उसको देनेवाला, तत्वज्ञानियोंको तत्वज्ञान जगानेवाला एवं विद्वानोंको परमपूज्य है। एक बार नहीं अनेकबार मनन करने योग्य है।

शैली।

इस काव्यकी रचनामें कविने अत्यन्त सरल शैलीको पसंद किया है। साधारणसे साधारण रसिकोंको इस काव्यका रस मिले इस उद्देश्यसे कविने अत्यंत सरल पद्धतीसे स्वाभाविक चित्रोंको चित्रित किया है। काव्य मधुर व श्रव्य रहे इसकेलिए कविने बहुत प्रयत्न किया है। अतएव काव्य शिक्षाप्रद नैतिकवरदायकएवं आत्मकल्याणकेलिए साधक होगया है।

रचनाचातुर्य।

इस काव्यको बाचनेसे कविके रचनाचातुर्यका बोध होता है। यद्यपि भोगविजयमें कथाभाग तो बहुत ही कम है यही कारण है कि कविने भरत चक्रवर्तिके तीन दिनकी दिनचर्याको १९ परिच्छेदोंमें

चित्रित किया है। यही कौशल है।

काव्यको एक नाटकके ढंगसे प्रारंभ किया है। आस्थानसंधिसे प्रारम्भकर भरत चक्रवर्तीको राज दरबारमें बैठाल दिया है। वहांपर दिग्विजकलाधर नामक आस्थानकविसे भरतकी स्तुति कराई है जिससे पाठकोंको भरतेशके गुणोंका परिचय हो, दिग्विजकलाधरने भी उस कार्यको पूर्णकर अपने विवेकको बतलादिया। तदनंतर चक्रवर्तीके धार्मिक कार्योंसे परिचय करानेके लिए मुनिभुक्तिसंधिका वर्णन किया है। उसके बाद शय्यागृह संधि पर्यंत भरत चक्रवर्तीका राणियोंके साथ एक दिनके सरस विहारका वर्णन होनेपर भी पाठकोंके चित्तको आकर्षण करनेवाला है।

भरतेशके सर्वांगीण वर्णन करना इस काव्यका मुख्य ध्येय है। आदि चक्रवर्ती भरतका परिचय पंचमकालके वह भी १६ वीं शताब्दिके एक कविकी अपेक्षा भरतके साथ रात्रिदिन रहनेवाली उसकी प्रिय राणीको रहना स्वाभाविक है। इसलिये कविने उस विषयपर अनधिकार चेष्टा न कर भरतेशके प्रियरानी कुसुमाजीसे ही उस कामको कराया है। उसमें भी क्या तारीफ? वह अपने हृदयकी बात दूसरोंसे कहती है क्या? नहीं, वह अपने महलमें बैठकर अपने प्रिय तोतेसे पतिकी प्रशंसा कर रही है। पडोसमें रहनेवाली अमनाजी सुमनाजी राणियोंने छिपकर सुनलिया फिर उसे एक काव्यके रूपमें रचना की। उस काव्यको सुननेके लिये पण्डिताने राजासे आग्रह किया। राजाने अंतरग दरबारमें उसे सुन लिया। कवि स्वयं पीछे हटकर राणियोंसे ही उसका वर्णन कराया यह विचित्र बात है।

लोकमें दांपत्य प्रेमकी आवश्यकताको प्रकट करनेकी इच्छासे कविने जिस समय कुसुमाजी तोतेसे अपने प्राणवल्लभकी कथा कहरही थी उस समय उसने तोतेसे चुप्पी साधनेका कारण पूछा तो

विजय, मोक्ष विजय और अर्ककीर्तिविजयमें कविने प्रायः संसारकी अस्थिरता बतलाकर भव्योंका चित्त मोक्षकी ओर आकर्षण किया है।

वर्णनाक्रम.

कविने प्रथमतः प्रतिज्ञा की है कि " प्रचुरादि पदिनेंटु रचनेय काव्यके रचिसुवरानंतु पेळे, उचितके तक्कुदु पेळ्वेनध्यात्मवं निचित प्रयोजनवेनगे " अर्थात् कविगण अठारह अंगोंको लक्ष्यमें रखकर काव्यकी रचना करते हैं परंतु मैं वैसा नहीं करूंगा। मुझे केवल थोडासा अध्यात्मविवेचन करना यहांपर मुख्य प्रयोजन है। जिस समय ध्यानसे मेरा चित्त विचलित होगा उस समय शुभयोगमें मेरा चित्त रहे एवं अध्यात्म विचार हो इस दृष्टिसे इस काव्य रचनाकी प्रतिज्ञा की है। इसलिये इसकी रचनामें कविने अन्य कवियोंका अनुकरण नहीं किया है। इसका वर्णन स्वाभाविक है। जिस पदार्थको उसने वर्णन किया है वह पदार्थ नैसर्गिकरूपसे पाठकोंके हृदयमें अंकित हुए बिना नहीं रहसकता। जो वर्णन उसे स्वयंको पसंद नहीं आया या उसे और ढंगसे नहीं वर्णन करना चाहता था वहां तत्क्षण उसे बदलकर पाठकोंको अरुचि उत्पन्न नहीं हो इस ढंगसे वर्णन करता है। आस्थानमें बैठे हुए चक्रवर्तिका वर्णन करते हुए वीररसको अच्छी तरह टपका दिया है। एवं उसकी सुंदरताका अच्छा चित्र खींचा है जिसे सुनकर ही अच्छा चित्रकार हूबहू चित्र खींचसकता है। इसी प्रकार प्रत्येक स्थानका विचित्र वर्णन पाठकोंका मनमोहक होगया है।

संगीत शास्त्रमें गति.

इस कविकी गति संगीतशास्त्रमें भी अद्भुत थी। आंखोंसे जिन पदार्थोंको हम लोग देखसकते हैं वह पदार्थ हमारे सामने न हो उसका वर्णनकर हमारे सामने लाकर ठहरादेना यह अद्भुत शक्ति है, फिर उसमें भी कानोंसे स्वरभेदोंको सुनकर आनंद प्राप्त करनेवाले गानोंको

न रहा। केवल विवरणसे ही गानेसे भी अधिक आनंदका अनुभव कराना यह इस कविका एक असाधारण कौशल कहना चाहिये। क्यों कि संगीतमें यह स्वयं प्रवीण था। संगीतका वर्णन इन्होंने किया है वहांपर गायन रसिक स्वयं वादन यंत्रको लेकर उसे बजाते हुए स्वर्गीय आनंदको प्राप्त किये विना नहीं रह सक्ता। इसलिये संगीत प्रेमियोंको भी यह आदरणीय है।

कविने पूर्व नाटक उत्तर नाटक प्रकरणमें नाट्य कलाके मुख्य अंग नर्तनका बहुत ही उत्तम ढंगसे वर्णन किया है। प्रकरण को वाचन समय नाटक प्रत्यक्ष आखों के सामने हो रहा हो ऐसा मालुम होता है।

इन्द्रियोंको गोचर होनेवाले पदार्थों को अच्छी रूपसे वर्णन करना यह कवियोंकी विद्वत्ता है। उसमें भी इन्द्रियोंसे अगोचर पदार्थोंको आखोंके सामने लाईना यह असाधारण शक्ति है। अतींद्रियज्ञानके गोचर परमात्माको इस कविने इस ढंगसे वर्णन किया है कि मानो मालुम होता है कि आत्मा हमारे आखोंके सामने ही हो, या हमारे हथेलीमें आ बैठा हो। अध्यात्म विचारको वर्णन करते समय कविने वस्तुतः पूर्ण प्रावीण्य का दिग्दर्शन किया है। यह विषय इसे अभ्यस्त होनेके कारण इसने खास ढंगसे इसका वर्णन किया है इसमें संदेह नहीं।

रस.

रस भी काव्यका एक अंग है। प्रसंगानुसार रसका परिपोषणकर पाठकोंको हर्ष विषादादिमें डालना यह कविके बुद्धिचातुर्यपर निर्भर है। रत्नाकरकी रचनाओंसे उसे शृंगारकविहंसराज नामक उपाधि थी। शृंगार विषयके वर्णनमें भी इसने अपने अप्रतिम कौशलको बतलाया है जिस प्रकार भरतने कई जगह इस बातका अनुभव कराया है कि आत्मविज्ञानीकेलिये दुनियामें कोई बात अशक्य नहीं, बाकीकी लौकिक बातें उसे सरलतासे प्राप्त होसकती है इसी प्रकार अध्यात्मरसमें अधिकारप्राप्त कविने यह बतलाया है कि अध्यात्मरसिकके प्राप्त

होनेके बाद बाकीके रसोंका वर्णन करना बांये हाथका खेल है इसलिये कविने काव्यमें प्रसंग पाकर श्रृंगार रसका अपूर्व चित्र खींचा है। चाहे कुछ स्थलोमें वह मर्यादातीत होगया ऐसा अनुभवमें भी आवे फिर भी अध्यात्मरसोंके बीचमें आजानेसे एवं काव्यका मुख्य अंग होनेसे कोई खेद नही हुआ है।

भरतेशको कुमार वियोगका जिस समय समाचार मिला, उसे उस समय जो दु:ख हुआ उसका वर्णन करते समय कविने करुणा रससे पाठकोंके चित्तको आर्द्रित किया है। उसे बांचते समय पत्थर भी पानी हुए विना नही रह सकता।

भरतके राणियोंके सरसालाप व विदूषकके प्रासंगिक विनोद काव्यमें हास्य रसको यत्रतत्र व्यक्त करते हैं। ऐसे स्थानोंके अध्ययनसे उदासीन पाठकोंके हृदयमें भी उल्लास छाजाना साहजिक है।

कविने जहां अध्यात्म विषयका वर्णन किया है वहांपर शांतरस अच्छीतरह टपकता है। जहांपर वैराग्य भावका वर्णन किया है वहां आस्तिक वादीके हृदयमें विरक्ति परिणाम हुए विना नहीं रह सकता सचमुचमें यही कविका असाधारण प्रभाव व सामर्थ्य कहना चाहिये कि उसकी रचनामें यत्रतत्र चित्रित विषयोंका प्रभाव अविलंबसे वाचकोंके हृदय पर हो जाय। यह खूबी इस कविके काव्यमें नैसर्गिकवर्णनोंके आधिक्य होनेसे खूब ही पाई जाती है प्रत्येक विषयमें निष्णात होनेके कारण जिस विषयको भी वर्णन करनेके लिये बैठे उसे अंगोपांग इस प्रकार वर्णन किया है कि जिससे पाठकोंको उसके अध्ययनसे स्वाद आये बिना न रहे।

कविका तत्त्वज्ञान

कविने अभिमान पूर्वक पहिलेसे कहा है इस काव्यके द्वारा भोगी और योगी दोनोंके हृदको मैं आकर्षण करूंगा। उसी प्रकार उसे उसमें सफलता भी मिली। तत्वज्ञानका बोध पाठकोंको हो इस इच्छासे भी भगवंतके मुखसे एवं भरतेशसे उसका उपदेश दिलाया गया है। भरतेश

वैभवके नाम सुननेपर केवल वैभवके वर्णनात्मक विषय होंगे इस प्रकार भ्रम होनेपर भी ग्रंथको देखनसे पाठकोंको मालुम होगा कि यह केवल पुराण ग्रंथ नहीं है। इससे तत्वज्ञानका भी हमको यथेष्ट बोध मिलता है। आत्मविज्ञानका वर्णन इतने सरस ढगसे वर्णन किया है कि भ्रम होता है यह केवल अध्यात्म शास्त्र ही तो नही। संसारकी प्रवृत्तिमें तत्वविचार आत्मविचार वगैरह विषयोमें मनुष्योंकी बहुत कम रुचि होती है। उनको यह विषय बहुत कठिन मालुम होता है। परतु कविने उन कठिन विषयोंको इतना सरल व सरस बनाया है कि कैसा भी व्यक्ति क्यों न हो उसे इसको सुननेकी इच्छा होगी। थोडीसी रुचि उत्पन्न होगई तो एकदफे नही कई दफे सुननेकी इच्छा करेंगे। हमतो कहते है कि यह वस्तुतमध्यात्मग्रंथ ही है जिनको एकदफे इसका स्वाद आया उनका कल्याण अवश्यं भावी है तत्व विचारोमें कविने आत्माके अनत अपार शक्तिका उदाररूपसे वर्णनकर सर्व मतवालोंको एकमत्यसे आत्मकल्याणकेलिये अध्यात्मविचारको सम्मत किया है।

हमने पाठकोंको आगे कथाभागमें सुकर हो इस दृष्टिसे यहापर कुछ सूचना दी है काव्यका असली स्वाद पाठक स्वयं आगे आकर अनुभव करेंगे इस ग्रंथको कर्णाटक लिपिमें पुत्तूर नवयुवक सघने प्रकट कर कर्णाटक बंधुवोंके लिये महोपकार किया है। उसमें क विद्वान् उभ्राण मंगेशरावका संशोधन व पूर्ववक्तव्य सोनेमें सुगंधके समान होकर हम लोगोंको बाचने लिखनेकेलिये अत्यंत सहायक हो गये है। अब हिंदीय समाज भी इस ग्रथ के भावोंसे लाभ लेनेके कारण ग्रंथकर्ता, प्रकाशक, सहायकोंको हृदयसे आभार मानेगी।

हम यहांपर प्रसंगानुसार मुख्य २ विषयोंका भावानुवाद देने का प्रयत्न करेंगे। इसलिये मूलग्रंथमें जितना रस है उतना इसमें आना शक्य ही नही, फिर भी पाठकोंको मूलग्रंथके आनन्दके अनुमान करने केलिये सहायक हो सकेगा। कहीं भूलूं तो विद्वान् लोग सम्हाल लेवें तो मेरे ऊपर उनकी दया होगी। इति।

विनीत—

सोलापुर — वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री.

ता. २४-३-३४ — (न्यायकाव्यतीर्थ-विद्यावाचस्पति)

रत्नाकरवर्णि रचित

भरतेश वैभव.

करोडो चन्द्रसूर्योंके प्रकाशसे भी अधिक तेज जिसका है ऐसे केवलज्ञानरूपी उत्कृष्ट ज्योतिको धारण करनेवाले एवं जिनके चरण देवताओंके मस्तकके किरीटोंमें प्रतिबिंबित हो रहा है ऐसे श्री भगवान वृषभदेव हमारी रक्षा करें।

अष्टकर्मोंसे रहित होनेसे सर्वदा शुद्ध एवं केवलज्ञानसंपत्तिके अधिपति सिद्ध परमेष्ठिको हमने नमस्कार किया है इसलिये सिद्ध-रसमें (पारद) डुबोया हुआ लोहेके समान अब आत्मसिद्धिको प्राप्त करूंगा, मुझे किस बातकी चिंता है ?

व्यवहार व निश्चयको जानकर, आत्माको पहिचान कर आत्मसाधन करनेवाले तीन कम नव करोड मुनियोंके चरणमें हमारा नमस्कार हो। हे आत्मन् ! तुम परमात्म हो ! तीनों लोकमें तुम ही श्रेष्ठ हो, ज्ञान ही तुमारा वस्त्र है ! सर्व कर्ममलकलंक रहित हो ! पापको जीतनेवाला हो ! इसलिये तुमारे लिये नमस्कार हो। विशेष क्या ? मेरा साक्षात गुरु तुम ही हो, मुझे दर्शन दो।

आपसे एक प्रार्थना है। जिस समय ध्यानमें चित्तकी एका-ग्रता न रहेगी उस समय आपके स्मरण करके आपकी आज्ञासे कर्णाटक भाषामें एक कथा कहूंगा।

कवियोंके बाचनेका यह काव्य ईखके समान मीठा रहे। नहीं तो क्या बासके समान रहे क्या ? नहीं। हे सरस्वती, तुम मुझे बुद्धि दो।

अय्या ! येष्टु चेन्नायितप्पा ? ऐसा कर्णाटकी लोग, अय्या मंचिदि ? ऐसा तेलुग लोग, अय्या, येच पोर्लु आण्ड ? ऐसा तुलुभाषाके लोग अर्थात् यह काव्य क्या अच्छा हुवा ऐसे कहते हुए। उत्साहसे सब भाषा भाषी दिल लगाकर सुने।

इस काव्यमे कहीं कहीं शब्ददोष, समास दोष इत्यादि रहें तो रह भी सकेंगे, सभी लक्षणोंको लक्ष्यमें रखकर काव्यकी रचना करें तो वह कठिन होजायगा। फिर वह काव्य न रहकर पुस्तकका बैंगन होजायगा।

दोष कहां नहीं है! चंद्रमामें काला कलंक नहीं है? क्या चांदनी भी काली है? नहीं! कदाचित किसीजगह शब्द दोष आजावे तो तत्वमें बाधा आयगी क्या? भव्यात्माओ! सुनो! तुम्हारेलिये एक सुंदर आदर्श कथाको सुनावूंगा। यदि आप सुनेंगे तो आपका आत्मकल्याण आजकल या परसों तक होगा। मुझे क्या!

यह भरतेश वैभव है। इसे सुनो! इसको सुननेसे वारंवार सौभाग्यकी प्राप्ति होगी, मंगल होगा, देवेंद्र पदवीकी प्राप्ति होगी, अंतमें मोक्ष मिलेगा, इसमें संदेह नहीं।

जिसने अगणित राज्यसंपत्तिको उपभोग कर दिगंबर योगी होकर एक क्षणमें कर्मोंको भस्मकर अनंत सौख्यको प्राप्त किया ऐसे राजा भरतेशका वैभव आप सुनना नहीं चाहते हैं?

इस काव्यमे अध्यात्म और शृंगारका इस प्रकार विवेचन करूंगा कि जिसमें त्याग और भोगकी सीमा मालुम हो जाय। त्यागी और भोगियोंके दोनोंके हृदयमें उसका रोमांचकारी अनुभव हो जाय ऐसा कहूंगा। सुनिये तो सही।

कविगण काव्यके कलेवरको पूर्ण करनेकेलिये, समुद्र, नगर, राजा, राणी इत्यादियोंके वर्णन करनेकी पद्धतिसे रचना करते हैं, परंतु वैसा हम न करेंगे। क्यों कि मुझे इस ग्रंथमें चारित्रकी आडमें थोडासा अध्यात्म विषय कहना है।

इस कृतिके रचयिता मैं सामान्य मनुष्य अवश्य हूं। परंतु चरित्रनायक सामान्य नहीं है। वह कृतयुगके प्रथम तीर्थंकरका

पुत्र है। इसलिये आप सुने। मेरा दोष न देखें।

यह पुण्यकथा पुण्यजीवियोंकेलिये रुचिकर होगी। दुर्जनोंको यह पसंद नहीं होगी। पापको दूरकर पुण्यसंपादन करते हुए स्वर्ग जानेकी इच्छा रखनेवाले इसे अवश्य सुनियेगा।

तो फिर " ओं नम, जिनं नम, सिद्धं नम, हंस नमामि इत्यादि मंत्रोंको बोलनेके बाद इस कथाको सुननेकी इच्छा हो तो 'इच्छामि' ऐसा कहिये। इतना कहना ही नहीं। फिर अच्छी तरह उपयोग लगाकर सुनिये।

आस्थान संधिः

भरत क्षेत्रकेलिए भूषण स्वरूप अयोध्यानगरीमें भरतचक्रवर्ती सुखसे राज्यपालन कर रहे थे। उनकी संपत्तिका मैं क्या वर्णन करूं? भगवान् आदिनाथके बडे बेटा, पृथ्वीके एक मात्र राजा वह भरत क्षणभरकेलिये आंख मींचलें तो मुक्तिको देखता है, उसका वर्णन कौन कर सकता है?

सोलहवें मनु, पहिला चक्रवर्ति, स्त्रियोंकेलिये कामदेव, विवेकियोंके चूडामणि एव तद्भवमोक्षगामी भरतका वर्णन करनेको मैं समर्थ हूं क्या?

जो गुण नहीं है ऐसे गुणोंको वर्णन करनेवाली पद्धति यह ठीक नहीं है। परंतु जो गुण उस राजा भरतमें हैं उनको भी पूर्णरूपसे कौन वर्णन करनेको समर्थ है।

बहुतसी बातें कहनेसे क्या? उस क्षत्रिय कुलरत्नको आहार तो है नीहार नहीं है। [मल मूत्र नहीं है] क्या यह अलौकिक पुरुष नहीं? लोकमें सभी पदार्थोंके जलानेपर उसका भस्म होता है। कपूरको जलानेपर भस्म होता है क्या? नहीं! संसारके सभी मनुष्योंको आहार नीहार है। हमारे भरतको आहार तो है नीहार नहीं है।

वह चक्रवर्ती भरत कोमल शरीरवाला है । सुवर्णसदृश उसका वर्ण है । अपने रूपसे दुनियाको मोहित करनेवाला सुंदर है । इतना ही नहीं अभी नवयुवक है ।

वह राजा भरत एक दिन प्रातः काल देवपूजादि नित्य क्रियासे निवृत्त होकर दरबारमें आकर विराजे हैं ।

नवरत्नोंसे निर्मित उस आस्थानभवनमें वह भरत रत्न निर्मित पुष्पक विमानमें विराजमान देवेंद्रके समान शोभ रहे थे ।

मानस सरोवरमें कमलके ऊपर जिस प्रकार राजहंस शोभता है, उसी प्रकार शरीर कांतिसे परिपूर्ण उस राजसभारूपी सरोवर में रत्नसिंहासनरूपी कमलके ऊपर वह राजहंस भरत शोभ रहा था ।

क्या यह चक्रवर्ती है ? उदयगिरिके ऊपर प्रकाश होनेवाले सूर्यके लिये सामना करनेकेलिये कोई प्रति सूर्य तो नहीं है ?

उसका शरीर कितना सुगंध है ? किरीट कितना तेज है ? क्या ही मजेका तिलक उसके मस्तकपर दिख रहा है ?

कैसे वीर दृष्टिसे वह देख रहा है । दूसरे लोग आठ दस दफे बोले तो वह एक दफे उत्तर देवे । यहांतक कि लोगोंको उसकी बात सुननेको प्रतीक्षा करनी पडती थी । यह उसकी गंभीरता है ।

ठीक बात है, गंभीरता सर्व गुणोंमें श्रेष्ठगुण है । राजा हो, राजयोगी हो उसे गांभीर्यगुणकी आवश्यकता है । गंभीरता नष्ट होजाय तो फिर क्या है ?

वह चक्रवर्ती भरत कंठमें रत्न व मोतीका हार धारण किया हुआ था जिन हारोंके बीचमें उसका सुंदर मुख कमल दिनमें भी नक्षत्रोंके बीचमें चंद्रके समान शोभ रहा था ।

इस प्रकार वह अनेक प्रकारसे शोभाको प्राप्त हो रहा था कोई इसे कविके कल्पनाचातुर्य ऐसा कहकर न छोड देवे। क्योंकि वह आदिनाथ स्वामीका बेटा है। कर्मोका शत्रु, चरम शरीरी है। उसकेलिए यह सब बातें असंभव है क्या ? हम सरीखे सामान्य देहवालोंको यह आश्चर्यकी बात होगी। वज्रमय शरीर वाले उस चक्रवर्तीकेलिए आश्चर्य है क्या ? वह तो कल करोड सूर्योंके समान प्रकाशवाले परमौदारिक दिव्य शरीरको धारण करनेवाला है। उसके रूपको कोई चिन्ह इत्यादिके बलसे चित्रण नहीं कर सकते हैं। आखोंको, मनको जो रूप गोचर नहीं हो सकता है वह वचनकेलिए कैसा गोचर हो सकता है ?

लोकमें पुरुषोंके रूपको स्त्रिया स्त्रियोंके रूपको पुरुष मोहित होते हैं यह साहजिक बात है। परंतु भरतके रूपसे स्त्री और पुरुष दोनों मुग्ध होते थे।

भरतको देखनेपर बडी बूढी भी एक दफे चमक जाती है ऐसी अवस्थामें जवान स्त्रियोंकी दशा क्या हुई यह अब मुंह खोलके कहनेकी जरूरत है क्या ? भरतके सुंदर शरीर, उसके योग्य वय, अतुलसंपत्ति, अगाध गांभीर्य एवं अनुपम पराक्रम अन्यत्र अनुपलभ्य हैं।

आहा ! इतनी सब बातोंको प्राप्त करनेकेलिए उसने पूर्व भवमें ऐसे कौनसे पुण्य कार्य किये होंगे। अथवा कितने भक्तिसे भगवान्की स्तुति की होगी। नहीं तो ऐसे वैभव उसको कैसे प्राप्त हो सक्ता है ?

विशेष क्या ? पूर्वभवमें उसने आत्मा और शरीरमे भेद विज्ञानकर आत्मकलाको अच्छी तरह साधली थी एवं आत्मध्यानका अभ्यास किया था। उसीके फलसे यह सब कुछ प्राप्त हुए हैं। लोकमें यह सबको मिलसकता है क्या ?

उसे देखनेवालोंको आखोंमें थकावट नहीं आसकती है। प्रशंसा करनेवालोंको आलस्य नहीं आसकता। देखकर, स्तुतिकर तृप्ति होती नहीं थी।

सब लोग विचार कर रहे थे यह रूप संपत्ति बल इत्यादि और किसीको मिल नहीं सकते। मिले तो शोभ नहीं सकते।

उसके दोनों ओरसे ढाले जानेवाले चामरोंके बीचमें वह सफेद बादलके बीच चंद्र है या सूर्य इस प्रकार भासने लगा।

एक तरफ आधीनस्थ राजा लोग, दूसरी तरफ नर्तकी, कवि, मंत्री इत्यादि बैठे हुए थे। सिंहासनके पीछे हितैषी अंगरक्षक खडे हुए थे।

'हल्ला मत करोजी' 'इधर सुनो' 'बैठियेगा' इस प्रकारके शब्द उस राजसभामें सुननेमें आरहे थे।

यह राजसभा है, इसमें कि ऐसा भी शब्द नहीं करना चाहिये, हंसना नहीं चाहिये, इधर उधर जाना नहीं चाहिये ऐसा भी कोई कहते थे।

कुछ बुद्धिमान् लोग, समयको जानकर, भरतके मनोगतको जानकर, एवं दूसरोंके अंदर और बाहरके विचारोंको समझकर कुछ कभी २ बोलते थे।

मण्डलीक राजावोंका समूह, राजकुमारोंका झुण्ड, मंत्रियोंके समूह, पण्डितोंके समूह, एवं गवैयोंके समूहसे वह दरबार खचाखच भर रहा था।

इसके अलावा भीख मागनेवाले, स्तुतिपाठक, वैद्य, ज्योतिषी महावत लोग, सेनाके भट, वाहकगण, एवं सेवक लोग उस सभामें यंत्र तंत्र उपस्थित थे एवं भरतकी शोभा देख रहे थे।

जिस प्रकार कमल सूर्यको देखता है। नीलकमल, चंद्रको देखता है, उसी प्रकार उस सभामें जितने लोग उपस्थित थे वे

भरतको देखनेमें लग्न होकर और बातोंको भूलगये ।

इस प्रकार उस समय सभी लोग उसकी ओर देख रहे थे उस समय उसने अपनी दृष्टि गवैयोंके तरफ फेंकी, उन लोगोने भरतके अभिप्राय जानलिया और गाने लगे ।

रोमांचनसिद्ध, जुंजुमालप, गानामोदचंचु, श्रीमंत्र गांधार रागवर्तक आदि उसके प्रसिद्ध २ गवैयोंके नाम है ।

बहुत मुह न खोलकर अपने शरीरको इधर उधर न हिलाकर बहुत ही खूबीके साथ वे गाने लगे ।

गाते समय घबराये नही, बहुत ज्यादा हल्ला भी नही किया इस प्रकार १-२-३ गवैयोने गाकर भरतका मन प्रसन्न किया ।

रागभंग न कर बहुत ही हुशियारीके साथ प्रातःकालके समयकेलिये योग्य रागमें आलाप किया । सुननेवालोंके हृदयमे ठण्डी हवा चलरही हो ऐसा मालुम हो रहा था ।

जिस प्रकार कमलके सामने जाकर भ्रमर गुंजता है उसी प्रकार ये गवैये भी भरत राजके मुखकमलके सामने जाकर गूंज रहे थे ।

जिसप्रकार चंद्रमाको देखयर समुद्र उमडकर आता है उसी प्रकार भरतचन्द्रको देखकर इन गवैयोके हृदय भी उमडकर आता था ।

भरतके स्मरण करने मात्रसे जिनको विलकुल नही आता उन लोगोंको भी भरतशास्त्र आवे ऐसी हालतमें इन लोगोंको उस में प्रवीणता मिले इसमें आश्चर्य क्या है ?

प्रातःकालके रागमें श्रीवीतरागके गुणोंको वर्णन करते हुए इस प्रकार गाये कि. सुननेवालोंका पातक दूर होजाय ।

भूपाली राग, धन्वासि रागको लेकर उस भूपाली (राजसमूह) अधिपति चक्रवर्तीके सामने श्री आदिनाथ स्वामीकी

स्तुति करते हुए इस प्रकार गाये कि सबका पाप दूर होजाय ।

मालिन रहित अनघ निर्मल, निष्कलङ्क, नित्य उस आदिनाथ भगवन्तकी स्तुति मल्हारि रागके आश्रयसे इस प्रकारकी कि सुननेवालोंका कर्ममल दूर हो ।

देशाक्षि रागमें जिनेन्द्रकी स्तुति करके उन लोगोंने देशाधिपति भरतको प्रसन्न किया । मंगल कौशिक नामके रागमें मंगलाष्टक गाकर बतलाया ।

इसी प्रकार गुण्डक्रि, भैरवि इत्यादि रागोंमें श्री जिनेश्वरकी स्तुति की ।

वीणाकी ध्वनि कौनसी है ? गानेवालोंकी ध्वनि कौनसी यह मालूम न कराकर उससे जिन और सिद्धोंके स्वरूपकी महिमा बतलाकर गाने लगे ।

किन्नरि लेकर जिस समय वे गारहे थे सुननेवाले लोग कहते थे कि अब किन्नर किंपुरुषोंकी क्या जरूरत है ?

रत्नत्रयोंके गुणको इस प्रकार वीणावादन करके गारहे थे कि सुननेवाले कहे कि शाबाश 'बहुत अच्छा' और एकतर्फ ।

कंठध्वनि, गायन जागृति, आलापक्रम ये सब कुछ उन लोगोंके अच्छे थे, उसमें जिनेंद्रका नाम और मिल गया, फिर कहना ही क्या ?

लोग कह रहे थे कि भ्रमरकी गूंज क्या चीज है ? कोयलका स्वर रहने दो, तुंबुरनारदोंकी अब क्या जरूरत है ?

पत्थर, पेड, सर्प, पशुमृग भी गानेको मुग्ध होते हैं फिर रसिक मनुष्य मुग्ध नहीं होंगे क्या ? उनके गानेसे सारी सभा अपनेको भूलगई ।

वासुगीको पशु, नागसरको सर्प, कन्याध्वानिकेलिये पेड, गुण्डक्रिके लिये पत्थर भी वश होता है ऐसी अवस्थामें मनुष्यों-का मुग्ध होना आश्चर्य है क्या ?

भरतेश वैभव (४)

गायन विद्या एकांतसे अच्छी भी नहीं बुरी भी नहीं है। यदि उस गानेमें पुण्यानुबंधिनी कथा ग्रथित हो, धर्माचरणके आदर्शको रखता है जिसका उद्देश पवित्र हो वह गायन हित करनेवाला है। पुण्यबंधका कारण है। जिसमें नीच स्त्रियोंकी प्रवृत्ति शिकार, झगडा आदिका वर्णन हो वह गायन पापबंधका कारण है। वह हेय है।

समवशरणमें विमल किरणोंके बीचमें अमल मुनियोंके समूहमें कमलकर्णिकाको स्पर्श न कर जो भगवान अर्हंत विराजमान हैं उनके गुणोंको वर्णन करते हुए बहुत भक्तिसे गाने लगे।

क्या ही आश्चर्यकी बात है ? कमलके ऊपर भी चार अंगुल छोडकर निराधार आकाशमें खडे रहनेका सामर्थ्य अर्हंत परमेष्ठीको छोडकर और किसको है ? क्या उन्हें खडे रहनेकेलिये धरातलकी जरूरत है क्या ? फूलकी जरूरत है क्या ? जिन्होंने सारे संसारको लात मारा है उन्हें किस बातकी परवाह है ?

तालाबमें कमलका रहना, जंगलमें सिंहका रहना लोकमें प्रसिद्ध है व वैसी पद्धति है। परंतु देवोंके बीचमें सिंह, सिंहके ऊपर कमलका रहना यह महदाश्चर्य है यह जिनेश्वरकी ही महिमा है।

आकाशमें एक चंद्रको तो हम देखते हैं। परंतु तीन चंद्र एक जगह शोभित होवे यह तीन छत्रधारी जिनेंद्रकी ही महिमा है।

आकाशसे देवगण जिस समय पुष्पवृष्टि कर रहे थे उस समय उन पुष्पोंके सुगंधको जो भ्रमर आकर पटते हैं उनकी शोभा अवलोकनीय है।

भगवानके पासमें रहनेवाला अशोक वृक्ष कितना अच्छा

दिख रहा है। क्या नवरत्नमे निर्मित तो नहीं है?

भगवानकी दिव्यध्वनि सचमुचमें दिव्य है। क्यों कि भगवान् दिव्य हैं। भगवानका सुख दिव्य है, दर्शन दिव्य है, ज्ञान दिव्य है, शक्ति दिव्य है, सिद्धि दिव्य है, ऐसी अवस्थामें उनकी ध्वनि दिव्य क्यों नहीं भला? अपि तु अवश्य है।

भगवानके पीछे भामण्डल मेरुपर्वतके पीछे रहनेवाला इंद्र धनुषकी शोभाको उत्पन्न कर रहा है।

चारों ओरसे बरफ हो उसके बीचमें शोभित होनेवाले पहाडके समान उन चामरोंके बीच भगवान् शोभरहे हैं।

सिंहासन आदि अष्ट महाप्रातिहार्योंके बीच विराजमान भव्योंके कर्मको संहार करनेवाले भगवान् की उन्होने अत्यंत भक्तिसे स्तुति की।

इस प्रकार जिनेंद्रकी प्रसंशा कर उसके बाद सिद्ध परमेष्ठी व तदनंतर मुनियोंकी वंदना कर इस शरीरमें स्थित आत्मतत्व विचारको गानेमे इस प्रकार गाये कि भरत चक्रवर्ती आनदित हो जाय।

आत्मा इस शरीरमे सबजगह भरा हुआ हैं यह बात कौन जानते हैं? इस बातको विचार न करके बाहर ही ढूंढढूंढकरके संसार दुःख को अनुभव कर रहे हैं॥

चमकता हुआ दर्पण हाथमें होते हुए भी पानीमें अपने प्रतिबिंबको देखने वालेके समान अंदर अपने शरीरमें रहनेवाले आत्माको नहीं देखकर बाहर सबजगह घूम रहे हैं कितने दुःखकी बात है।

अपने घरमें रहनेवाले खजानेको न देखकर बाहर जाकर श्रीमंतोंसे भीख मागनेवाला मूर्ख नहीं तो और कौन है! शरीरमें स्थित आत्माको भूलकर बाहरके पदार्थोंको देखनेवाला किस

प्रकार सुखी हो सकता है ?

ईखके अंदरके मीठे रसको न जानकर बाहरके सूखे पत्तोको खानेवाले पशुवोंके समान मूर्खजन आत्मीय सुखसे अनभिज्ञ होनेके कारण शरीर सुखमें ही मुग्ध होते है।

हां! परंतु हरे २ पत्तोंको भी छोडकर हाथी ईखके मिष्ट रसका आस्वाद लेता है उसी प्रकार कोई २ भेद विज्ञानी शरीर सुखको तुच्छ समझकर आत्मीय सुखको ही अनुभव करते हैं।

अपने हाथमे रहा हुआ पदार्थको न देखकर सारे जंगलमें ढूंडनेवालेके समान शरीरमे स्थित आत्माको न देखकर सारे लोकमे ढूंडे तो वह मिलेगा क्या?

म्यानमे रहनेवाला तलवारके समान, बादलके अंदर छिपा हुआ सूर्यके समान बाहरमे मलिन शरीरमे छिपा हुआ आत्मा अंदर प्रकाश हो रहा है।

ज्ञान ही आत्माका शरीर है, ज्ञान ही रूप है, वह निर्मल ज्ञान दर्शन शुभ्ररूप है। यह ज्ञान दर्शन ही आत्माका चिन्ह है। जो इस प्रकार समझकर आत्माको देखते हैं वे धन्य है, वह आत्मा पुरुषाकार होकर इस शरीरमें रहता है फिर भी इस शरीरके रूपमे मिल नही गया है, आकाशके बीचमे पुरुषाकारके चित्रको खींचे जिस प्रकार यह आत्मा है।

यह शरीर एक बाजेके समान है बाजेको जबतक कोई बजानेवाला बजाता नही तबतक वह बज नही सकता, इसी प्रकार इस शरीरमें जबतक आत्मा नही तबतक उसका कोई उपयोग नही। आत्मा और शरीर भिन्न २ हैं। परंतु बहुत खेदकी बात है कि इसबातको न समझकर आत्मा चलनेमे असमर्थ शरीरको भी चलाता है। बोलनेमें असमर्थ शरीरको बुलवाता है। फिर कही वह असमर्थ हो जाय तो दुःखी हो जाता है।

जिस समय अग्नि लोहेमें प्रवेश करती है उस समय लोहार उसे हथौडेसे ठोकता है परंतु वह लोहेसे बाहर निकले तो कौन ठोक सकता है प्रत्युत वही सबको जला सकता है इसी प्रकार जो आत्मा शरीरमें प्रविष्ट है उसे ही बाधा होती है शरीरको छोडनेपर कौनसी बाधा है? कोई भी नहीं।

वर्तमान देहको मरणके समय छोड देवे तो आगे पुनः दूसरे शरीरकी प्राप्ति होती है। इस शरीरको छोडकर आगे कोई शरीरको धारण न करनेकी अवस्थाको प्राप्त करना इसीको मुक्ति कहते हैं।

अब यहांपर कोई प्रश्न कर सकता है कि यह कहना तो सरल है होना कठिन है। इस प्राप्त शरीरको छोडकर आगेके शरीरको न लेनेका उपाय क्या है? इसका उत्तर यह है कि बीजकी अंकुरोत्पत्ति सामर्थ्य जबतक मूलतः नाश नहीं किया जाता है तबतक वह अंकुरोत्पत्तिका कार्य जरूर करेगा। मूलसे उसकी शक्तिको नष्ट करनेपर फिर उससे वह कार्य नहीं बनेगा। इसी प्रकार शरीरके उत्पत्तिका जो कारण कर्म है उस कर्म-बीजको मूलसे नाश करना चाहिये। तब आगेका शरीर उत्पन्न नहीं होसकता है। कर्म बीजको अच्छी तरह जलावे तो शरीरकी उत्पत्ति होना असंभव है। परंतु कौनसी अग्निमें? सम्यग्ज्ञान अथवा विवेक रूपी अग्निमें यह कर्म जलाया जा सकता है। फिर उस देहकी उत्पत्ति असंभव है तब आत्मा मुक्ति स्थानको प्राप्तकर अनंत सुखी बनता है।

जिसे वृक्षका जड ज्यादा पसरा हुआ रहता है वह स्वयं अपने नाशका कारण बनता है इसी प्रकार तैजस कार्माण शरीर-का फैलाव ही आत्माके अहितका कारण है। इसलिये सबसे पहिले आत्मानुभवरूपी अग्निसे कार्माण तैजस शरीरके फैलावको

जला देना चाहिये। तब घातियके आत्मारिमानि शरीर मत्र स्वतः ही नष्ट होते हैं तभी मुक्ति होती है।

इस प्रकार भगवान आदिनाथका संदेश है। आत्मा और शरीरको भिन्न करके देखनेकेलिये उपर्युक्त प्रकारके विचार अनूक उपाय है। भेदविज्ञानीको ही इस प्रकारके विचार प्राप्त हो सकते हैं, अन्य व्यक्तिको नहीं। इस प्रकार आत्मानिलोडी भरतके सामने उन गायकोंने गायन किया।

एवंच इस गानेमें उन लोगोंने यह भी कहा कि चाहे राजा हो, चाहे योगी हो, अथवा गृहस्थ हो, यदि इस जिनतत्वको जानकर जिनभक्ति करेगा तो उसे मुक्ति अवश्य ही मिलेगी. इसमें कोई संदेह नहीं।

इस प्रकारके गंभीर तत्वपूर्ण गानेको सुनकर चक्रवर्तीको बडा ही आनंद हुआ, वह हर्षसे हसने लगा। एवंच मुखमें हर्ष-रेखायें प्रकट होने लगी। तब उन लोगोंको बुलाकर उनके हाथमें अनेक देवांगवस्त्रोंको पारितोषिकके रूपमें रख दिया।

इतनेमें गायन समाप्त हुआ। गायकोंके गानकौशलसे वह सभा आनंदित हुई। राजा भरत भी आनंदसे उस आस्थानमें विराजमान थे इतनेमें यह आस्थानसंधि पूर्ण होती है।

इस प्रकार यह जिनकथाको जो कोई सुनते हैं उनका पाप नाश होता है, पुण्यकी वृद्धि होती है, तेज बढता है। आगे जाकर वे कैलासपर्वतमें भगवान आदिनाथका दर्शन करेंगे।

प्रेमसे इसे बांच, गावें, अथवा सुनकर प्रसन्न होवें तो नियमसे स्वर्गीय संपत्तिको अनुभव कर कल्प विदेह क्षेत्रमें श्रीमंदर स्वामीका दर्शन अवश्य करेंगे।

हे परमात्मन! तुम प्रत्येक मनुष्यके इच्छित ध्येयकी सिद्धी करनेवाले हो, योगियोंके अधिनायक हो अर्थात योगिगण सदा

तुह्मारा ही चितवन किया करते है, अंतरंग वहिरंगसे सुंदर हो, सर्व श्रेष्ठ हो, ज्ञानमे एकाधिपत्यको प्राप्त कर चुके हो, अतएव मेरे अंतरंग में तुह्मारा निवास सदाकाल बना रहे यही मेरी इच्छा है।

इति आस्थानसंधि।

अथ कविवाक्य संधि।

हे सिद्ध परमेष्ठिन्! आप समस्त लोकके यथार्थ गुरु हैं। उत्कृष्ट केवलज्ञान ज्योतिको धारण करनेवाले हैं। विषयविषको नाश कर चुके हैं अतएव अपने संसारका ही नाश किया है।

भव्यरूपी कमलोंको खिलानेके लिए आप सूर्यके समान हैं इसलिए आपसे मेरी मनस्प्रार्थना है कि मुझे आप सदा सुबुद्धी देवें।

चक्रवर्ती भरतके आस्थानमें संगीतध्वनि अब सुनाई नहीं देती, अब भरतकी इच्छा साहित्य कलाको सुननेकी ओर झुकी है। इसीलिये उसने विद्वानोंके समूहके तरफ अपने दृष्टियोंको फेंकी है।

भरतके आस्थानमें कवियोंकी क्या कमी? फिर भी उनमे दिविजकलाधर नामके कविकी ओर भरतकी दृष्टिगई है। तब वह विद्वान् भरतके भावको समझकर बोलनेलगा।

हे राजन्! तुम श्री जिनेंद्रपाद के सेवक हो राजाधिराजावोंमें अग्रगण्य हो, हंस (आत्म) कलासे आनंदित होनेवाले एवं सबको आनंदित करनेवाले हो इसलिये तुह्मारे लिये महाजय सिद्धि हो।

प्रत्येक शब्दोंमें व्यावहारिक और पारमार्थिक ऐसे दो पारिभाषिक अर्थ निकलते हैं।

शत्रु राजावोंसे तुम्हारे लिये जयसिद्धि हो ऐसा कहाजाय तो वह जयसिद्धि शब्दका लौकिक अर्थ है। यदि संसारके प्राणियोंको भय उत्पन्न करनेवाला कालकर्मको जीतलेवे तो यह उसका पारमा

थिंक अर्थ है।

हे राजन! लौकिक जयसिद्धिको प्राप्त करनेवाले राजा लोकमें बहुतसे हैं। परंतु लौकिक जय व पारमार्थिक जयको प्राप्त करनेवाले राजावोंमें दुर्लभ है। उसके लिये सुविवेककी आवश्यकता है। मामूली बात नहीं।

राजाको भोग विचारकी आवश्यकता है। आत्मयोग विचारकी भी आवश्यकता है। राजा रागरसिक भी होना चाहिये, वीतराग रसिक भी होना चाहिये।

श्रृंगार विज्ञान भी होना चाहिये। आत्मसंघकी ओर भी झुकना चाहिये। संगर (युद्धस्थान) में भी उनकी तैयारी चाहिये एवंच आत्मयोगागमें भी आगे होना चाहिये।

इहलोक संबधी सुखको भी भोगें। परलोकमें सुख मिले उसके लिये धर्मकार्य में उत्साहित होवे। बहुतसी इच्छावोंमे फसा हुआ ऐसा लोगोंको दिखना चाहिये। परंतु वह हृदयमें निस्पृह रहे।

सुखका मूल सपत्ति है। संपत्तिका मूल धर्म है। इसलिये जिस धर्मसे संपत्तिकी प्राप्ति हुई है उस धर्मको उत्तम मनुष्य कभी नहीं भूलते हैं। भोगमें फंसकर कभी लोग धर्मकी उपेक्षा करते हैं.

दान देने योग्य स्थानमें दान देना चाहिए। परिस्थिती व धर्मको जानकर बातचीतकी भी जरूरत है। अयोग्य स्थानमें मौन की भी जरूरत है। गरीबके समान भी रहना चाहिए (भगवान या अपने गुरुओंके पास) राजाके समान भी रहना चाहिए (प्रजाओंके सामने) यह उत्तम कुलोत्पन्न क्षत्रियोंका लक्षण है।

प्रजावोंके लिए राजा हितैषी रहे, शत्रु राजावोंको भुजगेंद्र [सर्प] के समान रहे। अपने गुरुके पास सेवकके समान रहे।

धार्मिक लोगोंका बंधु होकर रहे ।

परस्त्रीयोंके लिए डरपोक, युद्धकेलिए महावीर, परमत स्वीकार करनेका मोका आवे तो मूर्ख, जिनागममें प्रीति, आत्म-कलामें आनंदित होना हे राजन् ! यह राजधर्म है ।

इंद्रियोंको अपने वशमें करके रखना चाहिये । आत्मयोगमें अविचल होना चाहिए, विशेष क्या ? लोकके आजके राजा स्वर्गके कलके इंद्र कहलाना चाहिये । इंद्रियोंको वशमें करनेवालेंके लिये यह कोई बडी बात नहीं ।

इंद्रियोंको वशमें न कर इंद्रियोंके वशमें होनेवाले मछली, हाथी, पतंग, भ्रमर इत्यादि प्राणी जब एक १ इंद्रियोंके वशीभूत होकर अपने प्राणोंको खोलेते है तब पांचो इंद्रियोंके वशीभूत होनेवाले राजा बिगडजाय इसमें आश्चर्य क्या ? इसमें कोई आश्चर्य नहीं ।

अविवेकी मनुष्यके पंच इंद्रिय पंचाग्निके समान है । उन इंद्रियोंसे उसका स्वतःका नाश होता है । विवेकीके पंच इंद्रिय पंच रत्नोंके समान हे । ज्ञानशून्य होकर विषयोंको भोगनेवाला भोगी भोगी नहीं, वह भवरोगी है । विवेकसहित होकर भोगने-वाला भोगी योगी है ।

कर्म अज्ञानीको स्पर्श करता है । ज्ञानीको स्पर्श करनेका साहस कर्मको नहीं है । वह ज्ञान कहा है ? ज्ञानस्वरूप ही मैं हूं । शरीरके रूपमें मै नहीं हूं इस प्रकारका विचार विवेकी मनुष्योंका मानसिक अनुभव है ।

हे राजन ! विज्ञान दो प्रकारका है । एक बाह्य विज्ञान, दूसरा अंतरंग विज्ञान । बाह्य विषयोंको जाननेवाला बाह्य विज्ञान अपने आत्माको जानना इसे अतरंग विज्ञान कहते हैं ।

दुनियामे रत्नपरीक्षा करनेके लिये प्रयत्न करना, हाथी घोडे इत्यादिकी परीक्षा करनेको सीखना यह भी एक कला है परंतु यह वाह्य कला है। आत्मा सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूपी तीन रत्नोंके स्वरूपमें है इस प्रकार उन रत्नोको परीक्षा कर पहिचानना यह वडा कठिन है। इसीको अंतरंग विज्ञान कहते हैं। इसीसे कल्याण होता है।

काम शास्त्रका वोध, आयुर्वेद शास्त्र, मंत्रशास्त्र, तंत्रशास्त्र, गणितशास्त्र, संगीत शास्त्र, ज्योतिप शास्त्र यह सव वाह्य विज्ञान हैं। क्योंकि इन शास्त्रोंके ज्ञानसे मनुष्यको शरीरको पोण्ण करनेका उपाय ज्ञात होता है। परंतु आत्मा निर्मल स्वरूप है। उसमे और उसके गुणोंमे कोई भिन्नता नहीं है ऐसा समझकर उसीका विचार करना इसे अंतरंग विज्ञान कहते हैं। यही ग्राह्य है ऐसा जानो।

छंद शास्त्र, अलंकार शास्त्र और नाटकशास्त्र आदि वाह्य ज्ञानके साधक हैं। क्योंकि इनसे अल्प समयके लिये मनोरंजन होकर आत्मा अपनी असलियतको भूलजाता है। परंतु इन सब विकल्पोंको छोडकर आत्मतत्वका ही विचार करना यह अंतरंग विज्ञान है।

वेद, पुराण, तर्क इत्यादि शास्त्रोको जानना वाह्य कला है। आत्मा और शरीरको भेदकर असली स्वरूपका चिंतवन करनेको सीखना इसे अंतरंग विज्ञान कहते हैं। इस प्रकार और भी जितने भर भी लोकमें कलायें हैं जो आत्मपोपणके सहकारी न होकर शरीर पोपणके सहकारी हो व भौतिक उन्नतिके साधक हो उन्हे वाह्य विज्ञान कहना चाहिये। जो ज्ञान आत्महितका साधक

हो जिसके मनन करनेसे आत्मा परिशुद्ध हो जाता हो, जिस कलासे लोकमें आत्मोन्नतिका आदर्श स्थापित होता हो उसे अंतरंगज्ञान कहते हैं।

हे राजन्! प्रत्येक व्यक्तिको पीछे अनेक भवोंमें वाह्यविज्ञान अनेकवार आकर गया है। परंतु अंतरंग विज्ञान की प्राप्ति एक-वार भी नही हुई है। क्यों कि वह सामान्य ज्ञान नही हैं। यही कहा जाय तो अनुचित नहीं कि वह मुक्ति पदके लिये का-रण है। अपने मनोरथको पूर्ण करता है। कल्पवृक्ष, कामधेनु व चिंतामणि रत्न भी उसकी बराबरी नहीं कर सकते हैं। लोकमें कोई वस्तु उसकी बराबर नहीं है।

हे राजन्! जिस राजाको वह अलौकिक विज्ञान प्राप्त होता है उसके विषयमें कहना ही क्या है? वह आज इस भूमण्डल के राजा है ही कल, स्वर्गके राजा है। और परमों मुक्तिसाम्रा-ज्यके राजा है।

हे राजन्! वह आत्मविज्ञानी संपत्तिसे मदोन्मत्त न होगा मानियोंके आधीन न होगा, क्षुद्र हसीकी वातोंसे संतुष्ट न होगा गंभीरहीन वातें न करेगा, विशेष क्या? वह मेरुपर्वतके समान अकंपित धैर्यवान् रहेगा। वह इंद्रिय सुखोंमें आसक्त न होगा। देवेंद्रकी संपत्ति भी उसके नजरमें तुच्छ रहेगी, इंद्रियोंके अनुभव में रहकर भी योगींद्रवृत्तिको वह विशेषकर पसंद करता रहेगा। संसारके अनेक प्रकारके दु:खोंके वीचमें रहनेपर भी आत्मानुभवरूपी अमृतके आस्वादमें वह अपनेको अत्यंत सुखी मानता है।

वार वार आत्म चिंतवन करनेसे उसके कर्म की बराबर

निर्जरा होती जाती है। " मैं किसी तरहसे इन दुष्ट कर्मोंको दूरकर अवश्य मुक्तिको प्राप्त करूंगा " यह उसका दृढ निश्चय रहता है। सचमुचमें बात यह है कि जो व्यक्ति बार २ देह और आत्माको भिन्नता रूपमें अनुभव कर भोगता है उसे कर्मबंध नहीं, वह भोगी होते हुए भी योगी है।

राजन्! जमीनमें गढे हुए लोहेको कीट (मल) लगता है क्या सोनेको लगता है? नहीं। इसी प्रकार अविवेकी भोगियोंको कर्मबंध होता है। विवेकियोंको कर्मबंध है क्या? भोगियोमें दो प्रकार के भोगी होते हैं। एक सकामभोगी दूसरा निष्काम भोगी सकाम भोगी कर्मबंधनसे बद्ध होता है। निष्काम भोगीको कर्म-बंध नहीं होता है। जिस बीजको जलाकर बोते हैं तो वह अंकुरोत्पत्ति करनेको समर्थ हो सकता है क्या? कभी नही। क्यों कि उसमें अंकुरोत्पत्तिकी शक्ति नष्ट होजाती है। इसी प्रकार कर्मबंधरूपी अंकुरके लिये बीजरूप है ऐसे रागको यदि पहिले नष्ट किया जाय तो फिर उसकी उत्पत्ति कहांसे होय? निष्काम भोगी आत्म विज्ञानीको इंद्रिय विषयोंमे राग नही रहता है। अत एव कर्मांकुरको उत्पन्न नही करता है। विकारमय संसारके बीचमें रहनेपर भी उन विकारोंका उसके ऊपर कोई असर नही होता है। नागलोक में रहने पर भी गरु-डको सर्पोंकी बाधा होसकती है क्या? नहीं। इसी प्रकार भो-गोंके बीचमें रेह तो क्या? आत्म विज्ञानीको उन भोगोंसे कर्म-बंध है क्या? नहीं। यही दशा आपकी कही जा सकती है।

विष तो लोकमें सबको मारनेको समर्थ है। क्या जिसको गारुडी मंत्र सिद्ध है उसका विष कुछ बिगाड सकता है क्या?

नहीं। इसी प्रकार इंद्रियोंका सुख दुनियामें सबको बिगाड देता है तो क्या आत्मविज्ञानीको बिगाड सकता है ? कभी नहीं।

हे राजन् ! यह तुह्मारी वृत्ति है। लोकमें और राजावोंमें यह बात नहीं पाई जायगी। तुह्मारी वृत्ति, तुह्मारी बात, तुमको देखकर हे षट्खंडके अखंडस्वामी, तुमसे ही यह सब मैंने निवेदन किया है।

लोकमें बहुधा ऐसी पद्धति देखी जाती है कि जो राजाको पसंद हो वही दूसरे लोग कह देते हैं। उसी प्रकार तुमको प्रसन्न करने की दृष्टिसे मैंने यह कहा नहीं है। हे भरतेश ! तुह्मारा यह तत्व निश्चयसे मोक्षमार्ग है।

राजन् ! लोकमें ऐसे बहुतसे योगी होंगे जो बाहरके सभी परिग्रहोंको छोडकर अतरंग निर्मल आत्माको देखते हैं। परन्तु बाहरके अतुल ऐश्वर्य रखते हुए भी अंतरंग मे न कुछके समान निर्मोही होकर आत्मानुभव करनेवाले तुम सरीखे कितने हैं ? अर्थात् विरले हैं।

लोकमें संपत्ति, शरीर सौंदर्य, यौवनावस्था अधिकार यह सब प्रायः मनुष्यको अभिमानके पर्वतपर चढाकर अवनतिके खड्डेपर ढकेलनेके लिये साधक है परंतु हे भरतेश ! तुम्हारे लिये इन बातोंमें किस बातकी कमी है ? परंतु तुम अविवेकी नही इन सब बातोंमें पूर्णता होनेपर भी तुम्हारी दृष्टि सिद्ध स्थानमें लगी हुई है। तुम सरीखे तत्त्वविलासी लोकमें कोई है ? अर्थात् ऐसा होना दुर्लभ है।

अमुक मेरे शत्रुको मैं कैसे जीतूं ? अमुक शत्रुको जीतनेका क्या उपाय है ? ऐसा विचार करनेवाले लोकमें अगणित हैं परंतु

यमको जीतनेका उपाय क्या है ऐसा विचार करनेवाले तुम सरीखे कितने हैं ?

जिस प्रकार एक नर्तकी अपने मस्तकपर एक घडेको धारण कर नर्तन कर रही है । वह नर्तन करते समय गायन, ताल, लय मृदंग इत्यादिको भंग नहीं होने देती है, इतना सब संभालते हुए उसकी मुख्य दृष्टि यह रहती है कि मस्तकका घडा नीचे नहीं पडे इसी प्रकार हे राजन् ! समस्त राज्य वैभवको संभालते हुए भी तुम्हारी मुख्य दृष्टि मुक्तिमें है । बच्चे जिस समय आकाशमें पतंग उडाते हैं उस समय पतंग के डोरेको अपने हाथमे रखते है । यदि उस डोरेको हाथमें न रखें तो पतंग किधर उड जायगा यह पता नही। इसी प्रकार हे राजन्! तुमने अपने बुद्धी को सीधा मुक्तिमें लगाई है । आत्मा अपने चंचल परिणतिसे इधर उधर विचार न करे, अतएव तुमने उस डोरेको सम्हालकर मुक्तिमे लगाया है। घटिका यंत्रको देखनेके लिये जो व्यक्ति बैठा हुआ है वह निद्रा आनेपर दूसरोंसे कथा कहनेके लिये कहकर हूंकार करते हुए भी उस घटिका यंत्रसे उसकी दृष्टि जिस प्रकार नहीं हटती उसी प्रकार आत्मविज्ञानी संसारके अनेक विकलतावोंके बीचमे भी अपने आत्माको नहीं भूलता है ।

भावार्थ-पूर्वमें समय जाननेके लिये घरेलू ऐसे यंत्र हुआ करते थे कि विना घडियालके काम चलता था। लग्न वगैरहके समय ठीक मुहूर्त से कार्य संपन्न करनेके लिये एक प्रमाणसे निश्चित कटोरी जिसके तलेमें एक अत्यंत सूक्ष्म छिद्र कर पानीमें डालते थे । उस छिद्रसे पानी अंदर जाकर जिस समय वह कटो-री डूबती थी तब एक घटिका हुई । फिर दुवारा उसे खालीकर उस पानीमें छोडना पडता है । इसी प्रकार घटिकाका निर्णय कर-

लेते है। आजकल भी कहीं कहीं इस प्रकारकी प्रथा है। परंतु आजकलकी घडियालमें समय जाननेके लिये घडियालके पास किसी आदमीको बिठलना नहीं पडता है। ऐसी साधनके पास किसी आदमीको बिठलाना पडता है क्योंकि वहा कोई न बैठे तो कटोरी डूबकर कितना समय हुआ यह जाननेका कोई साधन नहीं। इस लिये उसके पास जो बैठा हुआ आदमी बहुत देर होजाता है उस समय बितानेके लिये दूसरे किसीसे कोई कहानी कहनेको कहता है। कहानी कहनेवाला भी सुननेवालेको नींद नही आवे इसके लिये हुंकार देनेको कहता है। वह आदमी हुंकार तो देता है परंतु उसकी दृष्टि उस पानीके कटोरी की तरफ ही रहती है। नहीं तो उसका उद्देश्यसे वह च्युत होजाता है। उसी प्रकार आत्म विज्ञानी व्यावहारिक सर्व कार्योंमें रहते हुए भी अपने लक्ष्यसे च्युत नही होता है। अपने आत्मामें स्थिर रहता है।

लोकमें ऐसे बहुत लोग जो स्त्रियोंके सौंदर्यको वर्णन करनेपर बहुत दिलचस्पीसे उसे सुनते हो, उस स्त्रीका मुख चंद्रमाके समान है, उसका कुच अमृतके कुंभके समान है। वह मदोन्मत्त हथिनीके समान है। उसकी जंघा केलेके वृक्षके समान है। उसकी कटि अत्यंत पतली है। इत्यादि शृंगारके वर्णन को लोग उत्साहसे सुनते है। आत्महितके तत्त्व सुननेवाले हे राजन्! तुम सरीखे कितने लोग भला ?

इस गद्दीको चढकर स्त्री कथा चोर कथा जार कथा, स्त्री कथा, रण कथा, वेश्या कथावोंको सुनकर नरक जानेवाले बहुत से राजा है। परंतु इस गद्दीको चढकर सत्कथावोंको सुनकर शुद्धीको एवं मुक्ति को प्राप्त करनेवाले तुम सरीखे कितने हैं! अर्थात् दूसरे नहीं है।

मंदिर में रहने वाले देवको न देखकर बाहरी मंदिरको देखने वाले मूर्ख के समान अंदरके आत्माको न देखकर शरीरको ही स्वयं समझकर अपनी प्रशंसा करानेवाले मूढ़ हैं।

राजन् ! तुम इंद्रके समान हो। चंद्रके समान हो ऐसी प्रशंसा करनेपर राजालोग बडे प्रसन्न होते हैं। परंतु चक्रवर्ती भरतको ऐसी बातोंसे हर्ष नहीं। उनका विचार है कि इंद्रादिक पदें व संपत्तियां सब नष्ट होने-वाले हैं। केवल जिनेंद्र देवकी संपत्ति ही अविनश्वर है। स्तुति-पाठक लोग राजाओंको कहते हैं कि तुम्हारी कीर्ति चंद्रके समान है तुम्हारी मूर्ति अत्यन्त कोमल है। तब राजा लोग प्रसन्न होकर उन स्तुति पाठकोंका सत्कार करते हैं। परन्तु राजा भरत कहता है कि शुद्ध निश्चयनयसे इस आत्माकी कोई मूर्ति ही नहीं। फिर इसे कोमल मूर्ति आदि कहना ठीक नहीं है।

कोई कोई राजाको कहते हैं कि तुम कल्पवृक्षके समान हो! कामधेनुके समान हो!! चिंतामणि रत्नके समान हो!!! ऐसी प्रशंसा करनेपर राजा लोग हर्षित होते हैं उन याचकोंकी इच्छा पूर्ति करते हैं। परन्तु राजा भरत विचार करते हैं कि कल्पवृक्ष तो एकेंद्रिय वृक्ष है। क्या इसके समान मैं हूं? । कामधेनु तो एक गाय है। क्या मैं इसके समान पशु हूं? हा! हा! हा! चिंतामणि रत्न तो एक पत्थर। क्या मैं भी पत्थर हूं? नहीं! नहीं! मैं तो चिन्मयरूप हूं।

आत्मा अनुपम है। संसारमें उसकी तुलना करनेवाला कोई दूसरा पदार्थ नहीं है। ज्ञानको सूर्यकी उपमा देना ठीक नहीं. दर्पणकी उपमा देना भी ठीक नहीं है। सूर्यसे अंधकारका नाश होता है। परन्तु अज्ञानका नाश नहीं होता। दर्पणमें प्रति-बिंब पडता है वैसा ज्ञानमें प्रतिबिंब नहीं पडता। ज्ञान और

आत्माका इसीलिए अनुपम स्वरूप है।

हे राजन्! तुम नृत्य कलाको देखते हो! संगीतको सुनते हो, साहित्यके आनंदको भी लूटते हो। परन्तु सबमें आत्मकला को बडी उत्सुकतासे ढूंडते हो। यही एक विचित्रता सबसे तुममे है।

अंतरंगमे तुम्हारे हृदयमे भोग विलासके प्रति आसक्ति नही फिर भी लोग तुझे षट्खण्ड वैभवके भोगी समझते हैं। बहिरंगमें तुम योगी होकर कोई आत्मध्यान नही करते हो फिर भी तुम अंतरंगमें आत्मानुभव करते हो इसीलिए योगी हो। भोगमें रहकर योग साधन कर मुक्तिको प्राप्त करने वाले तुम सरीखे कितने हैं?।

विषम विषों को खाकर उसके प्रभावको न कुछके समान करनेके लिये तुम सर्वथा समर्थ हो। विषम चित्तको आत्मामें तुमने लगाया है। अतएव हे राजन्। तुम राजर्षि हो।

हे राजन! तुमको जो देखते हैं उनका पापनाश होता है। तुम्हारे नाम लेने वालोको पुण्य बध होता है। मैंने चापलूसी नहीं की है। आखे देखी बातको कही है।

भरत महाराजकी महिमा अपार है. उनके गुण गाये नही जा सकते। कवियोंने उनकी यह तारीफ की है कि ऐसी कोई कला या शास्त्र नहीं है जिसका निर्णय भरत न कर सकें। इसी प्रकार उनके शरीरको " आयुर्वेदो नु मूर्तिमान् " ऐसा कहा है। उनका पुण्य भी अचिंत्य था उनका यह सारा अनुभव इसी जन्मका अनुभव अथवा विज्ञान नहीं था अनेक भवोंसे उसका संचय किया था। तब इस भवमे वे लोकोत्तर पुरुष हुए।

हे राजन् ! तुम प्रतिसमय उचित रूपमें जिन व सिद्धवंदना करनेको भूलते नहीं । इसलिये आत्मयोग तुम्हें दिखता है । अतुल भोगको तुम भोगते हो परंतु वह शील संगत है । इसलिये तुम्हारी स्तुति करें इसमें अनुचित भी क्या है ।

जिस प्रकार भ्रमर जाकर कमलका आश्रय करता है उसी प्रकार सत्पात्र दानी, तत्व विज्ञानी, व आत्मानुभवीको सज्जन लोग आश्रय करते हैं इसमें कोई अनुचित बात नहीं ।

हे राजन् ! देव गुरु धर्मके तुम जीर्णोद्धार करनेवाले हो । जिनयज्ञ संबंधी कथाको सुननेवाले हो । जिनसंघकी पूजामें तुम्हें अनुपम भक्ति है । प्रजाओंको तुम अपनी संतानके समान रक्षा करते हो । फिर ऐसा कौन विवेकी मनुष्य इस संसारमें होगा जो तुम्हारा वर्णन नहीं करेगा ?

(यहां कवि सचमुचमें राजा भरतकी अतिशयोक्तिसे स्तुति करता हो यह बात नहीं । भरतमें ऐसे २ अद्भुत गुण थे जिनका वर्णन करना मानवीय शक्तिके बाहर था । यहांतक कि यह भरत तीर्थंकरोंके मुखसे भी प्रशंसनीय था । अनेक राज वैभवोंको भोगते हुए भी योगी कहलानेका अधिकार, गार्हस्थ्य जीवनमें ही आत्मानुभव करनेका अद्भुत सामर्थ्य क्या किसीको सहज प्राप्त हो सकता है । उसकेलिये जन्मांतरमें कठिन तपश्चर्या करनी पडती है । जिस भरतको स्वर्गमें देवेंद्र भी प्रशंसा करता है फिर भी उसका गुणवर्णन पूर्ण नहीं होता है उसके विषयमें अन्यलोग स्तुति करें तो भी अतिशयोक्ति क्या है ? कवि तृप्त न होकर भी वर्णन करता है)

हे राजन ! आप काल कालके लिये उचित जिनभक्ति सिद्धभक्ति आदि कार्योंमें प्रमाद नहीं करते हैं, इन सबको करते हुए

आत्माको देखनेमें भी आप भूल नहीं करते, शीलमें असंगत भो-गमें आपको घृणा है। भोगमें भी आप शीलमें च्युत नहीं होते, फिर तुम सरीखे राजावोंको कौन स्तुति नहीं करेंगे?

यह स्वाभाविक बात है कि लोकमें सत्पात्र ज्ञानी, तत्वविज्ञानी व आत्मानुभवी पुरुषको जिस प्रकार भ्रमर जाकर कमलका आश्रय करते हैं सज्जन लोग आश्रय करते हैं इसमें आश्चर्य क्या है?

हे राजन्! जीर्णोद्धार कराना, जिन पूजा करना, पुण्यानुबंधिनी कथावोंको सुनना, जिन संघ सेवा करना आदि शुभकार्य तुह्मारी मुख्य दिनचर्या है। इन सब बातोंको करते हुए प्रजावोंको पुत्रवत्पालन करने में आप कभी असावधान नहीं करते हैं। फिर आपकी स्तुति कौन न करेंगे भला?

जिन भक्ति, सिद्धभक्ति, गुरुभक्ति व शास्त्र सेवा आदि तुह्मारे स्वाभाविक कार्य हैं! इस प्रकारके स्वभावको देखकर पिताको देखनेपर पुत्र जिस प्रकार प्रफुल्लित होता है उसी प्रकार प्रजासब संतुष्ट होतीं हैं।

जो व्यक्ति जिनस्वरूप व सिद्धस्वरूपको अच्छी तरह विचार न कर ध्यान करता है उसको उसका कोई उपयोग नहीं, परंतु जो जिन सिद्ध रूपको अपने मनमें लीनकर ध्यान करता हो उसे राजा प्रीति करता है, स्त्रीवश्य, राजवश्य, जनवश्यके लिये इससे अधिक और कौनसा मंत्र है?

अंतरंगमें जिस समय आत्माके रूपको जो देखता है वहा साक्षात् अरहंतके रूपको धारण करता हैं, उस अवस्था में उस व्यक्तिको व्यंतरवश्य, विद्यावश्य आदि करना कोई कठिन है क्या? ये तो जाने दो, उसे मुक्तिकांता भी सहजमें वश हो जाती है।

हे राजन्! शरीर ही जिनेंद्रमंदिर है मन ही सिंहासन है। निर्मल आत्मा यही जिनेंद्रभगवंत है। इस प्रकार बाहरके अन्य विकल्पोंको छोडकर आंखमीचकर देखें तो सचमुचमें जिनदेव अंदर दिखते हैं।

जिस प्रकार कोई बातको भूलकर फिर सावधान होकर उसकी ओर उपयोग लगानेमें जिस प्रकार उस पदार्थपर चित्त स्थिर होता है उसी प्रकार खोये हुए पदार्थको ढूंढनेके समान एकाग्रतासे ज्ञान दर्शन ही मेरा रूप है इस प्रकारकी चिंता शरीर के अंदर फिरे तब यह आत्मा दिखता है।

जिस प्रकार कोई विद्यार्थी अभ्यास किया हुआ पाठको भूल गया हो तो अध्यापकके पूछने पर मनमें ही उसे बहुत दत्तचित्त होकर विचार करता हो उसी प्रकार ज्ञान दर्शन ही मेरा रूप है ऐसा समझकर एकाग्रतासे शरीरके अंदर चित्त लगावे तब आत्मा दिखाता है।

जिस प्रकार सुंदर छायामूर्तिका रूप है उसी प्रकार आत्माका भी रूप है इस प्रकार स्मरण करते हुए आख मीचकर आत्माको देखें तो अवश्य दिखता है। प्राभृतशास्त्रोंको अच्छी तरह अध्ययन व मनन कर, शरीरस्थ वायुवोंको भृत्योंके समान वशमें कर, जिस समय चित्तमें त्रिलोकीनाथ भगवानका स्मरण करते हैं उस समय आत्मा प्रत्यक्ष होता है।

सूर्य चंद्रों (नासिका रंध्र को बंद करके प्राण व अपानवायु को जिस समय ब्रह्मरंध्र को चढाते हैं उस समय शरीरके अंदर के अंधकार नष्ट होकर होकर प्रकाशस्वरूप आत्मा दिखता है।

कोई २ वायुवोंको वश करके आत्माको देखते हैं। कोई २ वायुववोंको वश न करके ही देखते हैं। कोई शरीरको ही आत्मा समझते हैं। खेद है

हो इस बातको हम सब स्वीकार करते हैं।

हे राजन ! आप आत्मसूर्य हो ! आपके सामने हम लोग अध्यात्म रसका जो वर्णन करते हैं वह सचमुचमें सूर्यको दीपक दिखाना है।

चंदन के वृक्षोंके आसपासमें रहनेवाले अन्य वृक्ष भी उसके संसर्गसे थोडा सुगंधित होजाते हैं, उसी प्रकार हे राजन ! तुम्हारी संगतिसे आत्मविशुद्धिके मार्गको हम भी अल्प स्वल्प समझ गये इसमें आश्चर्य क्या है ?

आज उसी आपसे लिया हुआ अनुभवको आपकी सेवामें उपस्थित करने पर आपको संतोष हुआ। आपके भक्तोंको भी हर्ष हुआ। आज मैंने ' यथा राजा तथा प्रजा ' या स्वामी जैसे होता है वैसे ही उसके परिवार होते हैं " इन वाक्योंका ठीक २ अर्थको साक्षात्कार किया.

इस प्रकार त्रिविजयरत्नाकर कविकी रचनाको राजा भरतने बहुत उत्सुकताके साथ सुना और इतना ही नहीं वह सब विषय उसके हृदयमें जाकर लगे। क्योंकि अध्यात्मविषयको सुननेके लिए उसकी बडी इच्छा रहती है।

राजा भरत मन मनमें ही विचार कर प्रफुल्लित होता है कि इस कविने मेरे अंतरंगको पहिले कभी आकर देखा हो जैसे कहा है। कितनी बुद्धिमत्ता है ? इस कविको आत्मध्यान जरूर प्राप्त हुआ है। यदि नहीं तो इस प्रकार उस विषयका वचन चातुर्य कैसे आसकता है, लोकमें वचन ही मनके भावोंको झलका देता है इस प्रकार वह चक्रवर्ती अपने मनमें ही विचार करने लगा।

लोकमें भूमिमें जलमें चाहे जिधर चलना सरल है परंतु विना आधारके कोई आकाशमें चल सकता है क्या ? नहीं, इसी प्रकार आप लोग सब लोकका वर्णन कर सकते हैं। परतु अध्या-

इस विषयको वर्णन करना उन लोगोंके लिये कभी अशक्य नहीं होसकता।

शब्द समुद्रको प्रवेश करके एक शब्दको सैकड़ों अर्थ करने वाले विद्वान लोग तैयार होसकते हैं, परंतु शब्दरहित आत्मयोगको वर्णन करना यह सामान्य बात नहीं।

तर्कशास्त्रमें गति प्राप्त कर परस्पर विवाद करनेवाले विद्वान तैयार होसकते हैं। परंतु अर्क (सूर्य) के समान रहनेवाले आत्माको जानकर वचनसे कहना यह बहुत कठिन है।

आगम, काव्य व नाटकके वर्णनसे लोगोंको प्रसन्न करके उन्हें सुला सकते हैं। परंतु आत्मयोगका वर्णन कौन कर सकता है?

स्त्रियोंकी वेणी, मुख व कुचोंको वर्णन कर लोगोंको खुश करना सहज बात है। परंतु वचनागोचर परंज्योति आत्माको यथार्थ वर्णन करना क्या सहज बात है?

युद्धका वर्णन करके सुननेवालेके हृदयमें जोश भर सकते हैं। आत्माका वर्णन करके दूसरोंके हृदयमें परमात्माकी चिंता उत्पन्न करना यह अत्यंत कठिन है।

जो अति आसन्नभव्य हैं उन्हीं लोगोंको अध्यात्म विचार प्राप्त होता है। हर एकको नहीं, आत्मध्यानको करनेवाले ही आत्मध्यानकी बात कहते हैं। दूसरोंको वह कला नहीं आसकती। जिस प्रकार प्रत्यक्ष किसी विषयको देखनेवाला व्यक्ति उसका स्पष्ट वर्णन करता है उसी प्रकार आत्माको प्रत्यक्ष देखनेवाला व्यक्ति उसका वर्णन करता है। आत्माको प्रत्यक्षकर फिर वर्णन करनेपर भी अभव्य उसको नहीं मानते हैं। भव्योत्तमोंके लिये वह अमृत है।

यह कवि जरूर आसन्न भव्य है। सिद्धलोकका पथिक

है इस प्रकार चक्रवर्ति मनमें ही विचार कर रहा था। फिर अपने मुखसे स्पष्ट कहा कि हे दिविजकलाधर! तुम सचमुचमें सुकवि हो इधर आवो! इस प्रकार उसे अपने पासमें बुलाकर उसे अपने हाथसे पारितोपिक दिये। सुवर्णकंकण, कण्ठमाला, कुण्डल आदि सेकडों आभूपण व वस्त्र उसे देदिया इतना ही नहीं बहुतसे ग्रामोंके जागीर देकर उसकी दारिद्रताको दूर किया। फिर चक्रवर्ति थोडा हस कर कहने लगा कि तुमने बहुत अच्छा कहा, जो तुमने अंदर देखा है वही बाहर कहा है। बहुत देरसे तुम थक गये होगे। इसलिये अब जरा बैठो इस प्रकार कहकर उसे उसके स्थानमें जानेको कहा।

तब वह दिविजकलाधर हर्पमें कहने लगा कि हे राजन्! यह जैनागम है, यह कथन करनेके लिये क्या सरल है। मैं क्या चीज हूं? आपके आस्थान विद्वान् ही इस विपयको जान सकते हैं। यह सब आपकी ही कृपाका फल है, इसमें हमारा कुछ भी नहीं. आपके ही प्रसादसे प्राप्त अमूल्य रत्नोंको आपकी ही सेवा में मैंने अर्पण किये हैं। इसमें मैंने क्या बडी बात की? इस प्रकार कहकर वहांसे आनंदसे चला गया।

तब सभामें उपस्थित लोग भी विचार करने लगे कि चक्रवर्तिके अंतरंगको कोई पहिचानते नहीं, परंतु इस विद्वान् कविने उसे जानकर वर्णन किया है। सचमुचमें यह बहुत बुद्धिमान् व दूरद-र्शी विद्वान है इत्यादि प्रकारसे उस कविकी प्रशंसा करने लगे। कविके ज्ञानको राजा व राजाकी उदारता देखकर सर्व प्रजा जिस समय प्रसन्न होरहे थे उसी समय भों भों करके शंखका शब्द सुननेमें आया। उसी समय सब लोगोंने विचार किया कि अब चक्र-वर्तीके भोजनका समय हुआ है, ऐसा निश्चयकर सब लोग राजाको नमस्कार कर वहांसे उठे, दण्डधारी लोग सभी लोगोंको यथोचित सन्मान सूचक शब्दोंके साथ वहांसे भेज रहे थे।

दरबार बरखास्त हुआ राजा भरत भी जिनशरण शब्दको उच्चार करके वहांसे उठा जिस समय चारों ओरसे जयजयकार शब्द सुननेमें आरहा था।

राजा भरत जिस प्रकार प्रजाओंका पालन करता है उसी प्रकार रत्नत्रय धर्म पालक साधुओंकी सेवा करनेमें भी दत्तचित्त है। प्रतिनित्य साधुओंको आहार दिये विना मैं भोजन नहीं करूंगा इस प्रकारकी उसे कठिन प्रतिज्ञा है। इसलिये दरबारमें जाकर मुनियोंको पडिगाहन (प्रतिग्रहण) करनेकेलिये तैयारी करनेलगा। बीच बीचमें उसे दरबारकी बात याद आरही थी। कविने मेरे हृदयकी बात जानली थी इस बातको स्मरण करते २ मन मनमें खुश होरहा था। उसके बाद मुनियोंकी मार्ग प्रतीक्षा करनेके लिये तैयार हुआ।

इति कविवाक्य संधि

अथ मुनिभुक्तिसंधि।

(सिद्ध परमेष्ठीका स्वरूप अपार है, लोकके भव्योंको अजरामर पद देनेवाले, स्वभावावस्थाको प्राप्त किए हुए, मोहनीय कर्मको वश किए हुए प्रसिद्ध आत्मा सिद्ध स्थानपर विराजमान हैं ऐसे विशुद्धिआत्मासे सब लोग प्रार्थना करें कि हमें सुबुद्धी दे) भरतचक्रवर्तीके हृदयकी बात जिनेंद्र भगवन्त ही जाने। मुनियोंकी चर्याका समय जानकर राजमहलके दरवाजेकी ओर वह चला

जिस समय वह दरबारमें आया उस समय उसने शरीरके समस्त राज चिन्होंको उतार लिया। दरबारी वस्त्राभूषणोंको उतार लिया तो भी क्या उसकी सुंदरतामें कोई कमी हुई? नहीं शरीर शृंगारस युक्त होकर वह द्वार प्रतीक्षाके लिये चला छत्र, चामर, खड्ग, पादरक्षा आदि राज चिन्होंकी अब उसे जरूरत नहीं रही थी, केवल अब वह पात्र दानकी अपेक्षा करनेवाला एक सामान्य श्रावकके समान है।

पात्रदानकी प्रतीक्षाके लिये जाते समय उसके बांये हाथमें अक्षत पुष्प आदि मंगल द्रव्य व दाहिने हाथमे जलका कलश था। लोगोंको उनकी सख्त आज्ञा थी कि मेरे साथ नहीं आवे और न कोई मुझे मार्गमे नमस्कार करे। कोई निधिकी अपेक्षा रखनेवाला व्यक्ति जिस प्रकार उस निधिकी पूजाकर फिर उसे लानेके लिये जारहा हो उसी प्रकार भरतचक्रवर्ती भी तपोनिधियोंको लानेके लिये जारहा है। राजाके सामने सेवकको गुरुके सामने राजाको किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये यह वह राजनीतिज्ञ भरत अच्छीतरह जानता था।

दान पूजा करना यह गृहस्थका स्वकर्तव्य है। यह परहस्त से होना उचित नहीं ऐसा समझकर वह स्वत ही उस कार्यको करनेके लिये जारहे थे।

वह जिस समय आगे जारहे थे उस समय साथके लोगोंको तो पीछे रोक दिया फिर भी भरत महाराजके शरीरसुगंधसे मुग्ध हुए भ्रमर उनके पीछे २ झुण्डके झुण्ड आने लगे। भरतने उनको भी वहुत कहा कि मेरे साथ तुम लोगोंकी भी जरूरत नहीं। परतु वे भ्रमर फिर भी रुके नहीं। हां! ठीक वात है। मनुष्योंको कान है। उन लोगोंने मेरी आज्ञा सुन ली, परंतु इन भ्रमरोंको कान नहीं। चतुरिंद्रिय प्राणी है। इसीलिये इनको रोकनेसे कुछ मतलव नहीं ऐसा समझकर चुपचापके चला। आखरको किसी प्रकार उस रास्तेको तय कर राजमहलके वाहरके वराण्डे में आकर भरत महाराज खडे हो गये।

हाथके पूजा सामग्री व जलकलशको नीचे रख दिया है। साधुवोंकी प्रतीक्षा बहुत उत्सुकताके साथ कर रहे हैं।

उस समय उनकी शोभा अपार थी। शायद उस अयोध्या

नगरकी शोभा देखनेके लिये स्वयं देवेन्द्र ही न्हीं आकर नही खडा हुआ हो ।

भरत वडी चितामे पडे हुए है। उन्हे मनमे यह चिता लग रही है कि मै इस ससार समुद्रको पारकर मुक्ति कब जाऊंगा ।

उस राज महलके इधर उधरसे तीन वडे २ राजमार्ग तीन दिशामे गये हुए थे । भरत महाराज उन तीनो मार्गोके तरफ देख २ कर शात भावसे मुनियोकी प्रतीक्षा कर रहे है ।

जिस प्रकार कुमुदिनी चद्रमाकी प्रतीक्षा करती है उसी प्रकार राजा भरत मुनियोंकी इच्छा कर रहे है ।

कभी चर्म दृष्टिसे मार्ग की ओर देख रहे हैं और कभी ज्ञान दृष्टिसे शरीरस्थित आत्माका निरीक्षण कर रहे है। अंदरसे आत्माको वाहरसे मुनियोंके मार्गको देखते समय उनके कार्यमे कोई प्रमाद नही होरहा है ।

चारो ओरसे स्तब्धता फैली हुई है । महलसे लेकर वाहरतक कोई हल्ला गुल्ला नहीं है। क्योंकि सब कोई जानते थे कि यह भरतचक्रवर्तीके मुनिदानका समय है । फिर भी कुछ सेवक आस-पासमें छिपकर दान विधिको देखनेके लिये बैठे हैं । भरत उनको देख नही रहे है । शायद यह बात होगी कि वे अपनी चर्यासे यह वात वतला रहे है कि लोक सब मुझे देख रहा है तो भी उनसे मैं अलिप्त हूं । इसलिये ही वे एकाकी होकर खडे हैं । उस समय भरत इस पकार मालुम होते थे जैसे कोई आत्मविज्ञानी पंचेद्रियोंसे युक्त होनेपर भी उनसे अलिप्त रहता है ।

उस समय उनके चित्तमें निर्मल योगियोंको दान देनेके सि-वाय भोजन वगैरह करनेकी कोई चिंता नही ।

उस दिन उस नगरीमे चर्याके लिये वहुतसे योगिराज आये थे ।

परंतु रास्तेमें ही बहुतसे श्रावकोंने उनका प्रतिग्रहण कर लिया इसलिये भरतके महलतक कोई नहीं पहुंच सके । भरतचक्रवर्ती बडी चिंतामें मग्न हैं । कभी दाहिने ओर कभी बायें ओर देखते हैं परंतु किसी जिनरूपको न देखनेसे फिर चिंतामग्न होते हैं । बहुत दूर २ तक भी दृष्टि पसारकर देखे तो भी कोई नहीं दिख रहे हैं । तब उनको मनमें दुःख हो रहा है ।

क्या आज पर्वोपवासका दिन है ? आज कौनसी तिथि है ? नहीं ! आज कोई पर्व दिन नहीं । फिर क्यों नहीं आये ? क्या कारण है कि मेरे महलकी ओर तपोनिधि आते नहीं । कोई दुष्ट हाथी घोडे वगैरहने उनको कष्ट दिया ? क्या कोई दुष्टोंने उनकी निंदा की ?

मेरे राज्यमें किसीने मुनिनिंदा की तो फिर मेरे राज्यकी इतिश्री होगई ? फिर मेरे अस्तित्वसे क्या प्रयोजन ? मुझे ऐसी हालतमें कोई षट्खण्डके अधिपति कौन कहेगा ? नहीं ! नहीं ! हमारे राज्यमें मुनिनिंदा करनेवाले मनुष्य नहीं है । फिर आज मुनि-योंका आवागमन होता क्यों नहीं ?

हा ! आज मुनियोंकी सेवा करनेका भाग्य नहीं है ! सचमु-चमें एक दिन भी रिक्त न होकर मुनियोंको आहार दान देना बडे सौभाग्यकी बात है ।

जिसप्रकार द्वीपमें जानेवाले जहाजमें अनेक सामान भरकर भेजा जाता है उसी प्रकार मुक्ति जाने वाले मुनियोंके हाथपर अन्नको रखकर भेजना प्रत्येक श्रावकका कर्तव्य है ।

आत्मा और शरीरको भिन्न समझकर ध्यान करनेवाले यो-गीको अपने हाथसे आहार देनेका भाग्य हर एकको मिलता है क्या ?

रत्नत्रयोंके धारक परमवीतरागी तपस्वी जो कि आत्मामृतको

आत्माको अर्पण करते है एवं भव्यात्मोंके द्वारा दिये हुए अन्नको शरीरको देते हैं ऐसे योगियोंको आहार देनेवाला गृहस्थ धन्य नहीं क्या ?

चिद्गुणान्नको आत्माकेलिये व पुद्गलान्नको पुद्गल शरीरके लिये देनेवाले सद्गुरुवोंको आहारदान देंं तो इससे सद्गति होनेमें कोई संदेह है ?

ब्रम्हा नाम आत्माका है। उस ब्रम्हासे उत्पन्न अन्नको ब्राम्हणान्न कहते हैं। परपदार्थोंसे उत्पन्न अन्नको शूद्रान्न कहते हैं।

सुक्षेत्रमें बोया हुआ बीज व्यर्थ नहीं जाता है। उसका अंकुरोत्पादन होकर फल आदि अवश्य उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार मोक्षगामीके हाथमें दिया हुआ आहार व्यर्थ नहीं जाता है। उसका इहलोकमें ही प्रत्यक्ष फल मिलते है।

सीपमें पडा हुआ स्वाती नक्षत्रका बूंद व्यर्थ जाता है क्या ? नहीं ! वह उत्तम मोती बन जाता है। इसी प्रकार ऐसे सद्गुरुवोंको दिया हुआ आहारदान व्यर्थ नहीं जाता है। इससे मुक्ति भी प्राप्त होजाती है।

भोजन करनेको नहीं जाननेवाली मूर्तिको अर्चना द्रव्यसे पूजा करना यह उपचार भक्ति है। भोजन करनेवाले जिनरूपधारी गुरुवोंको आहार दान देना यह मुख्य भक्ति है।

इस प्रकार भरतचक्रवर्ती अनेक विचारमें मग्न हो गये। परंतु अभीतक कोई मुनिराज नहीं आये। वे और भी चिंतामें पडे।

क्या कारण है आज मुनिराजोंका आगमन नहीं हो रहा है ? इतनेमें एक आश्चर्यकारक घटना हुई। आकाशमें एक अद्भुत प्रकाश दिखनेलगा। इधर उधर देखनेको बंदकरके उस कांतिकी ओर ही भरत महाराज देखने लगे। अभी वह कांति दूरसे दिख

रही है। चक्रवर्तिकी उत्सुकता बढने लगी।

यह क्या है ! दूसरे एक सूर्यके समान यह अद्भुत प्रकाश क्या है ? जिन ! जिना ! यह क्या है !

इतनेमें वह प्रकाश एकके स्थानपर दो अलग २ होगये। भगवन् ! यह एक था अब दो होगये। पहिले सूर्यके समान दिख रहा था अब सूर्य व चंद्रमाके समान दिख रहा है। इतना विचार कर ही रहे थे कि वह दोनों प्रकाश पास पासमें आगये।

आहा ! यह चारण मुनियोंका शरीर है। और कुछ नही इस प्रकार उन्होने निश्चय किया।

सूर्यके विमानमें रहनेवाली जिन प्रतिमावोंका दर्शन अपने महलसे करनेवाले चक्रवर्ती लिए इन मुनियोंको पहिचाननेके लिए इतनी देर न लगती। परन्तु उस दिन आकाश बादलसे घिरा हुआ था, इस लिए उसने अच्छीतरह विचारकर निर्णय किया।

चिंता दूर होगई। हर्षसे रोमाच होने लगा। आहा ! मेरा भाग्योदय हुआ ! ऐसा कहकर अर्चना द्रव्यको हाथमें लेकर नीचे उतरे।

इतनेमें वह चंद्रमण्डल व सूर्यमण्डल इस धरातलमें उतरे।

गरीब मनुष्य जिस प्रकार निधियोंको देखकर नाचता है इसी प्रकार भरतचक्रवर्ती उन मुनिनिधियोंको देखकर अत्यंत हर्ष चित्तसे उनकी सेवामें उपस्थित हुए।

भो मुनिमहाराज ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ! इस प्रकार बहु। भक्तिसे चक्रवर्तीने कहा। तब दोनो मुनिराज वहा खडे होगये तब अपने हाथके गध पुष्पाक्षत आदि सामग्रियोंसे दर्शनांजलि-देकर तदनंतर भावशुद्धिसे जलधारा दी। तदनंतर अत्यंत भक्तिसे तीन प्रदक्षिणा देकर उनको साष्टाग नमस्कार किया। तब कुछ लोग इधर उधरसे आकर जयजयाकार शब्द करने लगे। कहने

लगे कि चक्रवर्ती भरत यहां खड़े २ ध्यान कर रहे थे। इस लिये उन ध्यानके बलसे ये दोनों मुनि आगये हैं।

भरतचक्रवर्ती जिस निधिको लेजानेको आये थे वह निधि अब उनको मिलगई है। अब उस निधिको अपने महलमें बहुत खुशियालीसे लेजारहे हैं।

जिस प्रकार कामदेव हारकर इन मुनियोंसे प्रार्थना कर अपने घर ले जाता हो इसी प्रकार यह नरलोकका कामदेव उनको अपने महलमें लेजारहे हैं।

जहां मुनियोंको सीढियोंसे उतरना पड़ता था तब चक्रवर्ती उनको अपने हाथका सहारा देता था और जिस समय ऊपर चढ़ते थे तब भी बहुत भक्तिसे हाथ लगाता फिर कहने लगता कि स्वामिन! आप लोग आकाशमें बिना सहारेके चलनेवाले हैं आपको सहारेकी जरूरत नहीं यह केवल हमारा उपचार है।

यह भी जाने दो! देखिये तो सही, हमारा महल जब इतना वक्र है तो हमारा अब हृदय कितना वक्र होगा? हमारा महल वक्र मनवक्र, फिर भी आप अपने शिष्यके ऊपर कृपाकरके यहां पधारे इससे अब हमारा मन व महल दोनों सीधे होगये।

भरतचक्रवर्तीके धर्म विनोदको सुनते २ मुनिराज मन २ में ही प्रसन्न होने लगे परन्तु कुछ बोले ही नहीं, क्योंकि उनकी दृढ प्रतिज्ञा थी कि भोजन करनेके पहिले किसीसे बोलेंगे नहीं. फिर भी मनमें उसके भक्ति रसके प्रति अत्यंत खुश होकर जारहे थे।

इस प्रकार भय और भक्तिसे जिस समय उन योगियोंको वह चक्रवर्ति महलमें लेगये तब भरत चक्रवर्तीकी राणियां सामने आईं। मुनियोंको देखते ही भक्तिसे सबके सब रोमांचित हुईं। तत्क्षण आरती उतारी गई। फिर सब राणियोंने मुनिराजोंको साष्टांग नमस्कार किया। जिस प्रकार कामदेव दिगंबर तपस्वि-

योंके प्रति स्पर्धा करके हारगया हो फिर वह उसी हारसे अपने महलमे लाकर अपनी स्त्रियोंसे हार स्वीकार करा रहा हो और इसीलिए स्त्रिया उन मुनि राजोंके चरणमें पडती हो इस प्रकार उस समय भरतचक्रवर्तिकी शोभा मालुम हुई ।

उस समय महलमें एकको नही दो को नही सबको एक त्यौहारका दिन मालुम हुआ । त्यौहारका दिन भी क्या ! शादीके बारातके समान खुशी थी । इसी खुशीमे उन सतियोंनें किन्नरवीणा आदि लेकर अन्नदानकी महिमाको गानेके लिये प्रारंभ किया ।

वे मुनिराज जिस समय महलके अंदर जारहे थे तब वे स्त्रियां दोनों तरफमे चामर डाल रही थी । सेवकके घर मालिक आवे तो जिस प्रकार सेवक अनेक प्रकारसे भक्ति करता है उसी प्रकार भरतचक्रवर्ति उन तपस्वियोंके अपने महलमें आनेपर अनेक तरहसे अपने स्त्रियोंसे युक्त होकर उनकी भक्तिकी और अपने भाग्य समझा ।

उन मुनिराजोंको चक्रवर्तिने हमको नमस्कार किया इसका कोई अभिमान नहीं आया और न उन सुंदरी राणियोंको देखकर कोई मनमें विकार उत्पन्न हुआ । केवल अपने मनको आत्मामे दृढकर चक्रवर्तीके साथ गये ।

जिन योगियोने अपने शरीर को भी तुच्छ समझकर आत्मा की ओर चित्त लगाया भला कुछ बाह्य पदार्थोंको देखकर उनका मन विचलित होसकता है ?

तदनतर उन योगियोंके पादकमलोको प्रक्षालन कर अमृत गृहमें पदार्पण कराया । उस घरमें कोई अंधकार नही था लोगोंको ऐसा मालुम होता था कि क्या यह कोई सूर्यका जन्म स्थान तो नहीं ?

वहांपर उन योगियोंको ऊंचा आसन दिया। फिर अपने धर्मपत्नियोंसे युक्त होकर भक्तिसे उनकी पूजा की। तदनंतर भक्तिसे आहार दान दिया।

दातावोंमें चक्रवर्ति भरत उत्तम था पात्रोंमें वे चारण मुनीश्वर उत्तम थे। इसलिये उत्तम दाताने उन उत्तम पात्रोंको सिद्धांत शास्त्रोंमें प्रणीत विधिके अनुसार उत्तम दान दिया।

दानके समय बाहर घंटा वाद्य आदि मंगल शब्द होने लगे क्योंकि चक्रवर्तिके आहारदानका संभ्रम सामान्य नहीं।

इस जगत्में जितने उत्तम पदार्थ हैं वह सब उस भरतचक्रवर्तिके महलमें हैं। इसलिये उनको किस बातकी कमी होसकती है। उन ज्ञानशील तपस्वियोंको उस चक्रवर्तिने अमृतान्न देकर तृप्त किया। सचमुचमें उस समय अनेक प्रकारके भक्ष्य, खीर, शाक, पाक, फल, आदिको सोनेके बरतनोंसे निकालकर देते हुए चक्रवर्ति कल्पवृक्ष काम धेनु व चिंतामणिको भी मात कर रहे थे

उस समय भरतचक्रवर्तिकी राणियोंकी परोसनेकी युक्ति और उन अमृतग्रासोंको मुनिराजोंके हाथमें रखनेकी चक्रवर्तिकी युक्ति सचमुचमें देखने लायक थी।

दोनों मुनि राज किसी अभिलषित पदार्थोंकी ओर इशारा न करके भरतने जिस दिव्य अन्नको दिया उसे भोजनकर तृप्त होगये।

जिन मुनिराजोंके तपःप्रभावसे नीरस अन्न हाथमें आनेपर भी वह सरस बन जाते हैं अब वह चक्रवर्तिके द्वारा दिये हुए सरस अन्न किस प्रकार हुए यह वर्णन करनेकेलिये अशक्य है।

स्वर्गके देवगण जिस अमृत आहारको खाते हैं उसके समान अपने लिये निर्मित आहारको अपने हाथसे षट्खण्डाधिपतिने मुनिराजोंको समर्पण किया सका क्या वर्णन करें।

भुक्तिसे उन चारण मुनियोंको तृप्त किया इतना ही नही भक्तिसे भी तृप्त किया। साथ भुक्ति और भक्तिसे मुक्तिपथ केलिये तैयारी की।

सप्त विध दातृ गुण व नवविध भक्तिसे युक्त होकर जब चक्रवर्तीने उन योगियोंको आहार दान दिया तब उन्हे तृप्ति होगई।

उन योगियोंने जिस समय भोजन समाप्ति की उस समय शायद उन लोगोने यह विचार किया होगा कि परमात्मा को स्वात्मानंद ही भोजन है। भोजन शरीर के लिये है। आहारादिक सेवन करना यह शरीर स्थितिके लिये कारण है। इसलिये शरीरको विशेषतया पुष्ट करना ठीक नही है इस प्रकार हसक्षीर नीरन्यायसे समझकर भोजन को अंत किया।

बद्ध पल्यंकासनमें विराजमान होकर चारण योगियोंने मुख शुद्धि की। तदनंतर हस्त प्रक्षालन कर सिद्ध भक्ति के अनंतर उन लोगोने आंख मीचकर आत्मदर्शन किया।

इतनेमें घंटाध्वनि रुक गई। चारों ओरसे राणिया आकर खडी होगई। योगियों की निश्चल ध्यानमुद्रा देखकर चक्रवर्ती मनमनमें खुश होने लगे।

अभी उन मुनियोंका देह जरा भी हिल नही रहा है। एक पत्थरसे बनी हुई मूर्तिके समान निश्चल है। वे सिद्धांतोक्त मंत्रोंके जप करते हुए आत्माको बहुत दृढताके साथ निरीक्षण कर रहे है।

आंखोंको खोलकर जब आनदसे राजाकी ओर देखा तब भरतने बहुत उत्साह व भक्ति से नमोस्तु किया।

" अक्षयं दानफलमस्तु ते " इस प्रकार चन्द्रगति मुनिने और " निर्मलात्म सिद्धिरस्तु " इस प्रकार आदित्य गतिने उनको आशिर्वाद दिया।

उन चारण योगियोंके पवित्र आशिर्वादको पाकर उस चक्रवर्तीको हृदयमें कितना आनंद होगया हो वह परमात्मा ही जानें। मुक्ति उसके हाथमें आगयी हो मानों उसी प्रकार वह उस समय नाचने लगा। ठीक ही है। सत्पात्रोंके हाथमें आनेपर किसे हर्ष नहीं होगा ?

उसी समय भरत चक्रवर्तीके राणियोंने भी मुनियोंको नमोस्तु किया। मुनियोंनेभी उन सबको गीर्वाण भपामें आशिर्वाद दिया।

भरतेशकी दानचर्यासे उस समय देव भी प्रसन्न हुए। उन्होंनें इस हर्षमे नर्तन किया। आश्चर्य की वात है कि उस समयपाच घटनाओंके द्वारा देवोंने भूलोकको चकित कर दिया।

१—एक दम किसी सुगधी फूलों के वगीचे में प्रवेश किये के समान शीत व सुगधयुक्त पवन वहने लगा।

२—दूसरी वात उसी समय अध्येशयो भरत के महल मे स्वर्ग से पुष्पवृष्टि होनेलगी।

३ स्वर्ग से देवगण भरत के महल पर रत्नवृष्टि व सुवर्णवृष्टि करने लगे।

४—देवगण हर्पसे अनेक प्रकार से वाद्यध्वनि करने लगे।

५—आकाशमे देव खडे होकर भरत चक्र वर्ती के प्रति जयजयाकार शब्द करते हुए उसकी प्रसशा करने लगे।

यह दान उत्तम है। दाता उत्तम है पात्र तो उत्तमोत्तम हैं।

हे भरत ! स्वर्गलोक मे उत्पन्न होकर स्वर्गीय सुखको अनुभव किया तो क्या हुआ तुम्हारे समान पात्र दान करने का भाग्य हमें कहा है ?

व्रतसे, तपसे, व दानसे यह स्वर्ग हमने प्राप्त किया यह सत्य है परतु खेद है कि यहा व्रत नही, तप नही व दान

देनेका अधिकार भी नहीं। हे भरत! तुम्हारा भाग्य हमें कहां?

अन्न देनेकी शक्ति हमें भी है परंतु कदाचित हम आहार दान करनेका विचार करें तो हम व्रती नहीं हैं। अव्रती होनेसे हम दान देवें तो जिन मुनि उसे ग्रहण नहीं करेंगे।

हे राजन्! हम जिनेंद्रकी पूजा करते हैं परन्तु वह केवल उपचार है क्यों कि उन को उपगाप्ति नहीं है। इन मुनियोंको उपशाप्ति है। उनकी उपशान्ति करनेका अधिकार हमें नहीं तुम्हे है. इसलिए तुम धन्य हो।

भूलोकमें आहार दान देनेवाले बहुतसे राजा मिल सकते हैं. परंतु उनमें दान देनेकी युक्ति नहीं. कदाचित युक्ति होवो भक्ति नहीं युक्ति व भक्तिसे युक्त मुनिस्नाधक दाता तुम ही हो।

जो सौभाग्य व संपत्ति मनुष्योंको मद उत्पन्न करता है उसने तुम्हें स्पर्श भी नहीं किया है। उस भोगकी मूर्छा तुम्हे नहीं आई है। इस प्रकार अनेक तरहसे देवोंने चक्रवर्ति भरत की महिमा गायी। ठीक बात है। धर्मात्माओंके धार्मिक गुणपर मुग्ध होकर उनकी प्रशंसा करना धार्मिक पुरुषोंकाजाति चिन्ह है।

" धर्म साम्राज्यको चिरकाल पालन करो "

इस प्रकार देववाणी करके देवगण अंतर्धान हुए।

आज चक्रवर्तीके दानकी महिमा अपार है। उपर्युक्त प्रकारसे पंच आश्चर्य घटना यें भरत के दान के प्रत्यक्ष प्रभावको सूचित करती हैं।

" जिनशरण " शब्द को उच्चारण करते हुए मुनिगण वहां से जानेको उठे. उसी समय भरत भी " हमें आप ही शरण हैं " ऐसा कहकर उनके पीछे ही उठकर चलने लगा।

भरत को उन मुनिराजोंने आज्ञा दी कि " तुम ठहर जावो, अब हम जाते हैं " परतु भरतने उनसे सविनय निवेदन किया

कि " आप पधारे " ऐसा कहकर एक दम अपने दो रूप बना लिया एवं दोनों रूपोंने दोनों मुनिराजों को हाथमें धरकर चलाते जाने लगा।

चार आठ गज जानेके बाद मुनियोने फिर कहा कि " अब तो ठहर जावो "

" स्वामिन्! थोडी सेवा और करने दीजियेगा। आप पधारिये " भरतने कहा।

थोडे दूर जानेके बाद फिर मुनियोंने कहा कि ' अब आगे नही आना, ठहर जावो '

' भगवन् आपको उचित है कि भक्तों को आगे बुलाकर उद्धार कर, परतु आप लोग हमारा तिरस्कार करके आगे न आनेका आदेश कर रहे है। क्या यह आपको उचित है " ? इस प्रकार भरतने वि नोदसे निवेदन किया।

भरतके विनयको देखकर मनमन में प्रसन्न होकर मुनिगण जारहे थे। यह भगवान्का पुत्र तो है न ! ऐसा समझकर मनमें विचार करते हुए जा रहे थे।

" राजन्! भोजनको देरी होती है। जावो, अब तो जावो " ऐसा कहकर मुनि ठहर गये।

परतु भरत वहासे भी जाने को तैयार नहीं हुआ। वह कहने लगा कि " भगवन्! चलिये, कुछ दूर और, " ऐसा कहकर भक्तिसे आगे बढा।

इस प्रकार उन मुनियोंके साथ वह चक्रवर्ति अतिम दरवाजे पर्यंत गया। वहासे भी उनको छेडकर आनेकी इच्छा नहीं थी।

ठीक बात है! जो सतत आत्मानुभव करते है ऐसे योगिरत्नोको छोडकर कौन मोक्षगामी जाना चाहेगा ?।

अब भी यह पीछे नहीं जाता है। ऐसा समझकर मुनियोंने

कहा कि " अव भगवान् आदिनाथ का शपथ है, ठहर जावो " ऐसा कहकर ठहराया भरतने भी भक्ति पूर्वक उन तपस्वियोंको नमस्कार किया। साथ ही अपने दोनों रूपोंको एक बना लिया।

वीतरागी तपस्वियोंने भी उनको आशिर्वाद दिया एव आकाश मार्ग से विहार कर गये। भरत भी उनकी ओर आंख लगाकर बरावैर देखने लगा।

दोनों मुनिवर आकाशमार्ग में जाते समय चद्र और सूर्य के समान मालुम होते थे। ठीक है! वे नामसे भी चद्रगति और आदित्यगति थे।

वे जवतक दृष्टि पथमें आरहे थे तवतक चक्रवर्ती खडे होकर वडी उत्सुकता के साथ उनको देखते रहे। तदनंतर निराश होकर वहां से महलकी ओर चले।

सेवकोने आकर सोनेके खडाऊ लाकर दिये। इधर उधर से चामरधारी आकर चामर डोलने लगे। चक्रवर्ति इस प्रकार राजवैभवसे महलके तरफ चले।

इति मुनिभुक्ति संधि

———

अथ राज भुक्ति संधि

पवित्र है मूर्ति जिनकी, उज्वल है कीर्ति जिनकी, त्रैलोक्यमे एक पवित्राकार तथा गभीर ऐसे जो सिद्ध भगवान हैं वे हम्में रक्षा करें।

राजाधिराज भरतचक्री मुनिदानानन्तर महल के प्रति आने लगे। उस समय रास्तेमें वे सुन्दर दुपट्टा धारण किये हुए ऐसे चलते थे जैसे कि मानो कोई हाथीके वच्चा चल रहा हो उस प्रकार दुपट्टा हिलाते हुए चलने लगे तथा पैरमें सोनेके खडाऊ पहने हुए अपनी चतुरताको दिखाते हुए धीरे २ लीलासे चलने लगे।

मेरे आज उत्कृष्ट पात्र दान हुआ है इस प्रकार मनमें आनन्द से सेवकों को आदर सत्कार करते हुए महल के अदर पैर रखने लगे। तदनन्तर एक नौकर को बुलाकर कहा कि " जाओ उस सोनेकी राशि मे सोना निकाल कर पुरवासी गरीवों को तथा भिक्षुओंको देदो " इस प्रकार आज्ञा देते हुए महलके अन्दर चले गये।

इधर इनकी रानिया मुनि के गुणों की स्तुति करती हुई तथा दान में हुए अतिशयों में हर्ष मनाती हुई वडे आनन्द से पति के आगमन की प्रतिक्षा करने लगीं।

इतने में अपने सामने पति के चमकती हुई मुख की काति को देख कर सभी चक्रवर्ती की स्त्रिया परस्पर वात चीत करने लगीं कि—

आज राजाधिराज भरतचक्री के (स्वामी के) मन वडे प्रफुल्लित है ऐसा मालुम होता है कि इनको कोई न कोई उत्तम वस्तु प्राप्त हुई है।

फिर आपसमे इस तरह कहने लगीं कि वहन! तुम उनके मुख को तो देखो या वहन तुम देखो मेरा कहना सच है या झूठ

इस प्रकार परस्पर पूछने लगीं।

कोई २ कहती है कि तुम्हारी बात सच है झूठ नहीं है इस प्रकार हम लोगों को भी देखने मे आता है ऐसा कहती हुई सब के मब आनंदित होती हैं। और कोई २ कहती हैं कि अपने आप परस्पर मे संदेहास्पद वात कर ने से कुछ प्रयोजन नही अतः स्वामीके पास जाकर अपने संदेहको दूर करें।

इतने में सभी स्त्रिया भरतचक्रीके पास जाकर पूछने लगीं हे नाथ! हम लोगोंको तुम्हारे मुखकी प्रसन्नता देखकर जो भाव हुआ है, वह सच है या झूठ। तव उन्होंने कहा कि सच है। मेरे हृदयके भावों को तुम लोगोके सिवाय और कौन जान सकता है। इतना कहकर कहने लगे कि चलो हम सब भोजन करेंगे।

तदनन्तर पाद प्रक्षालन करके जब भोजन करने गये तब उन्हें अकेलेकी ही भोजन की तयारी देखकर वहीं खडे होकर सोचने लगे कि बहुत देर होगई अतः सभी रानियों के साथ ही भोजन करना ठीक है इत्यादि सोचते हुए निम्न लिखित नामोंसे सबको प्रेमसे पुकारने लगे। कन्नाजी, कमलाजी, विमलाजी, सुमनाजी, होन्नाजी, मधुराजी, रन्नाजी, चेन्नाजी, चिन्नाजी, कांताजी, मुकुराजी, कुसुमाजी, सताजी, मधुमाधवाजी अन्तरगंजी, सुखाजी, सुखवती, शाताजी, भृङ्गलोचना, नीललोचना, कुरंगलोचना, सारंगलोचना, पुष्पमाला, शृङ्गारवती, गुणवती, चन्द्रमती, वीणादेवी, विद्यादेवी, सुरदेवी, वाणीदेवी, श्रीदेवी, वाणादेवी, भद्रादेवी, कल्याणीदेवी, अजनादेवी, कुंकुमदेवी, मल्लिकादेवी, सुदेवी उत्साहादेवी, चित्रावती, चित्रलेखा, पद्मलेखा, ललितांगी, विचित्रांगी, कनकलता, कुंदलता, कनकमाला, जिनमती, सिद्धमती, रत्नमाला, मणिमाला, कातिमाला आदि को बुलाकर

कहने लगे कि आज सब साथ ही बैठ कर भोजन करेंगे।

इतनेमें सभी स्त्रियां आकर कहने लगीं कि हम लोगोंको नियम है कि पति भोजनानन्तर हम लोग भोजन करेंगी अतः आप कृपाकर पहले भोजन कीजिये इस प्रकार हाथ जोड कर कहने लगीं।

तब भरतेश कहने लगे कि यह नियम कैसा है? आज मेरी बात सुनो आओ सभी एक पंक्ती में बैठ कर भोजन करें।

सभी अबला परस्पर मुख देख कर विचारने लगीं। सभी का विचार एक प्रकार नहीं होते हैं अतः वे भी आपसमें छोटी बहन बडी बहन से कहने लगीं। जीजी हम स्वामी की आज्ञा पालने वास्ते साथ बैठकर भोजन करेंगी तो दोष नहीं होगा। इस प्रकार की बात सुनकर एकने कहा कि जिस प्रकार स्वामी मुनि आहार दिये विना आहार नहीं करते, उसी प्रकार हम भी अपना धर्म क्यों छोडे? पति को भोजन कराकर बाद भोजन करनेवाली स्त्री स्वर्ग गामिनी होती है अतः एक साथ भोजन करना ठीक नहीं है।

और एक ने कहा कि हम अपने आप ही भोजन करेंगी तो दोष है किंतु यह तो वे स्वतः भोजन करनेके लिये कहते हैं इस लिये इसमें कोई दोष नहीं है।

इतने में फिर एक ने कहा कि इनको हमारे ही सबब से भोजन के लिये इतनी देर हो रही है।

कोई २ मनमें ही विचारने लगी कि कितनी देर से कह रहे हैं परंतु क्या किया जाय, पति को जबाव देना अधर्म है। इस लिये कुछ समझमें न आने के कारण कोई तो गूगोंके समान चुपचाप रही, कोई तो अपने ही मन में अनेक प्रकार से चिंता करने लगीं, कोई तो एक दो बातें भी करने लगीं।

इस प्रकार वे सब राजस्त्रियां किंकर्तव्य विमूढा होकर विचार कर रही हैं इतने में उनके अभिप्राय को समझकर श्री भरत बोलने लगे कि:—

'आर्याओं! आओ! आप लोगोंको यह व्रत किस गुरुने दिया है। मेरी इजाजत के बिना व्रत लिया जा सकता है क्या? यह व्रत मेरी आज्ञासे लिया गया हो या चाहे नहीं, परंतु मेरी बातको मानना तुम लोगोंका धर्म नहीं क्या?

प्राणनाथ! हम लोगोंनें गुरु साक्षि देवसाक्षि पूर्वक यह नियम नहीं लिया है। आपके शपथ पूर्वक हम यह बात कह रही हैं। केवल पहिले सात आठ रोज हम तो हमारी इच्छासे चलाती हुई आईं। अब भी उसे बराबर पालन करती हुई आरही हैं।

"जाने दो! ठीक है। गुरु देव साक्षीपूर्वक तो आप लोगोंने यह नियम नहीं लिया। क्योंकि नियम देनेवाले गुरु आप लोगोंमें अलग मौजूद हैं। फिर भी आप लोगोंनें यह व्रत है ऐसी कल्पनाकर इसे अवश्य पालन किया है क्या? क्या आप लोग इसे व्रतके रूपमें पालन कर रही हैं। इसका उत्तर भी दीजियेगा' भरतने कहा।

"स्वामिन! हम क्या जानें! इन पक्षनियोंको" इन सब बातों-को व्रतग्रहणके विशेष विधि आदिको आपही जानें। पतिभुक्त शेषान्नको भोजन करना हमको बहुत प्रिय मालुम होता है। जिस प्रकार लोग प्रीतिसे व्रत पालन करते हैं उसी प्रकार हम इसे प्रेमसे पालन करती आरही हैं। हमारे हृदयमें कोई व्रतकी कल्पना नहीं।

"अच्छीबात! गुरुने आपको व्रत दिया नहीं। आपलोगोंनें भी व्रत है ऐसी कल्पना की नहीं। केवल खेलखेलमें जो बात हुई है उसे अब व्रत कह कर क्यों हठ करती हैं समझमें नहीं आता।

आवो ! अपन भोजन करें आपलोगोंको ध्यानमें रहे कि मैं मेरे स्वार्थ व संतोषके लिये आपलोगोंके व्रतशीलको कभी भंग नही करूंगा । इसमें आपलोगोंको कभी संदेह न रहे यह बात मैं पितृसाक्षीपूर्वक कह रहा हूं । अब आप लोग सब आवें । आपको कोई दोष नही है " तरुणी रमणिया ! आवो । अपन सब लोग मिलकर मुनिभुक्त शेषान्नको भोजन करें । यह अमृतान्न है । आपलोग संकोचकर मेरे हृदयको क्यों दुखाती हैं, समझमें नही आता । अब आपलोगोंको मैं तरुणिया कहूं या निष्करुणिया कहूं यह भी मुझे समझमें नही आता । खैर ! अरी ! निष्करुणी तरुणिया ! अब तो आवो ! भोजन करें । बहुत देरी होचुकी है " भरतने उन लोगोंको जरा लज्जित कर कहा ।

इतने में सब स्त्रियोंने उनकी आज्ञा पालन करने के लिये स्वीकृति दी । हर्ष पूर्वक पतिके आदेशको शिरोधार्य किया । इसमें आश्चर्य क्या है ? जब षट्खंडके मनुष्य मात्र उसकी आज्ञा पालन में जरा भी देरी नही करते फिर कुछ स्त्रियोंकी बात क्या ? वे भी खास उसीके अतपुरकी राणिया ।

सुवर्णके जल पात्रको स्वयं अपने हाथमें भरतने उठाया । और सब स्त्रियोंको हाथ पाव धोकर भोजन को चलने के लिये कहा ।

इतनेमें वहा एक विनोदकी घटना हुई। भरतजी जिस समय उस सुवर्ण कलशको हाथ लगाकर जल्दी २ में एक राणीको दे रहे थे उस समय उस कलशका जरासा धक्का भरत को लगा । चोट वगैरह कुछ भी नही आई । केवल स्पर्श होनेसे किंचित् दबकर स्पर्श हुआ । इतनेमें उस राणीने भरत विशेष प्रसन्न होवे इसके लिये कहा कि जिन ! जिना ! सिद्ध ! हा ! आपको लगा ? ऐसा दुःख प्रदर्शित करने लगी । उसका मुख फुंद पड गया, वह

आंख उठाकर देख नहीं सकी। इसकी आंखें मुंद गईं। और दुःखी होकर कहने लगी स्वामिन्! आप कहते तो मानते नहीं, आप ही गड़बड़ी करते हैं। अब आपको रंग लगा इसमें मेरा क्या दोष है?

इतनेमें बाकी स्त्रियोंने भी दुःख प्रदर्शित करनेको आरंभ किया।

कोई खंभेके सहारे टिककर खड़ी होगई कोई दिवालके सहारे कोई शारीरिक और कोई मानसिक इस प्रकार कई तरहसे दुःख प्रदर्शित करने लगी।

भरतको इस दृश्यको देखकर हंसी आई, कहने लगा कि हा! कष्ट है। भरतका कैसा भाग्य है। इस समय यह क्या स्थिति है।

इस प्रकारसे वचनोंसे उन स्त्रियोंका चित्त जरा पिघलने लगा। वे अब विरस प्रसंगको सरसरूप देनेकी कोशिश करने लगी।

वे हंसकर आगे आने लगी। आकर "प्राणनाथ! आप जो कह रहे हैं सो बिलकुल सत्य है। हम लोग यदि जरा टिक-कर खड़ी होगईं तो क्या हुआ? हमारे मुखकी कांति कहीं चली गई क्या। आप इतनी चिंता क्यों कर रहे हैं। हम लोगोंने थोड़ी देर विनोद किया। इसमें ऐसी कोई बात नहीं।

स्वामिन! अपराधियोंको दण्ड देनेवाले राजा ही यदि अपराध करें तो फिर क्या कहें? इस प्रकार उन स्त्रियोंने हंसते हुए कहा और भरतके मन हरतरहसे प्रसन्न करने लगी।

बस! अब रहने दो विनोद! आप लोग सब थक गई हैं। अब अपन सब लोग भोजन करें ऐसा कहकर चक्रवर्ती भरतने उन सबको अपने साथ ही भोजनको बिठाल लिया।

मगलामन जो भरतके लिये पहिलेसे ही निश्चित था उसमे वह बैठ गया। बाकी इधर उधरसे पंक्तिबद्ध होकर वे स्त्रिया बैठ गई। भूकात भरतको बीचमे कर कातामणिया बैठ गई थी। उस समय सचमुचमे यह मालुम होरहा था कि शायद लताओंके बीच वसंतराजेंद्र ही हो। अथवा रत्नहारोंके बीचका मुख्य रत्न ही हो।

कुछ स्त्रिया तो भोजमको बैठी थी। और कुछ स्त्रिया बहुत प्रेमसे भोजनको परोसनेकी तैयारी करनेके लिये इधर उधर फिर रही थी।

रत्न, सुवर्ण व चादी आदिसे बने हुए बरतनोंको लेकर जब वे स्त्रिया इधर उधर जारही थी तब शायद बिजलीके चमकनेका आभास होरहा था।

भरतजी जिस समय भोजन करनेके लिये अपनी स्त्रियोंके साथ वहापर बैठे थे उस समय वहा एक बरातके पंक्तिभोजनके समान मालुम होता था।

परोसनेवाली राणिया बहुत चतुराईसे परोस रही थी। इस समयकी शोभा अत्यंत विचित्र ही थी।

क्या चद्रकी पंक्तिमें अमृत पान करनेके लिये तारागनायें तो नहीं बैठी थी। अथवा देवामृतको खानेके लिये देवेंद्रकी पक्तिमें देवागनायें तों नहीं है। अथवा कामदेवके पक्तिमें मोहनदेवी तो नहीं है। इस प्रकार देखनेवालोंको तरह तरहके विचार आरहे थे।

परोसनेवाली स्त्रिया भी ऐसी ही मालुम हो रही थी कि देवलोकसे ही उतरकर परोस तो नहीं रही है ?

अमृतान्न, भोज्यान्न, देवान्न, दिव्यान्न, व अमृत रसायन इस प्रकार पचामृतोंको क्रमसे उन्होंने परोसा।

अनेक प्रकारके शाक, श्रीखंड, पूरणपोळी, आदि भक्ष्य विशेषोंको बहुत सावधानपूर्वक सबको परोसने लगी।

इसी प्रकार और भी अनेक प्रकारके भक्ष्य विशेष जो थे उनको बहुत आनंदसे वे स्त्रिया परोस रही थी जैसा कोई उस दिन त्यौहार ही हो।

ये सब स्त्रिया अपने पतिके पंक्तिमे बैठकर भोजन कर रही हैं और हम इनको परोसनेके काममे लगी हुई इस प्रकार मनमे जरा भी सवत मत्सर उन स्त्रियोंके नहीं है। हम और इनमे कोई भेद नहीं ऐसा समझकर वे परोसनेके काममें लगी हैं।

लोकमें प्रायः स्त्रियोंमें सवत मत्सर विशेषतया पाया जाता है। परन्तु उन विवेकी स्त्रियोमे यह बात नहीं थी।

इस प्रकार बहुत भक्तिसे सब तरहके भोजनको परोसकर चक्रवर्ती भरतको उन स्त्रियोंने आरती उतारी और नमस्कार कर एक तरफ सरकर खडी होगई।

भरत भी इन स्त्रियोंकी नवीन भक्तिको देखकर जरा हंसे।

उस समय भरत भोजनके लिये शुद्धिमे विराजे थे। उस समय तिलक यज्ञोपवीत सुवर्णके कटी सूत्र, उत्तरीय व अंतरीय वस्त्रके सिवाय और कोई राजकीय ठीवी उसके शरीरमे नही थी।

हस्त प्रक्षालन आदि विधिमे निवृत होकर प्रशस्त पल्यंकासनमें बैठ गये। अर्थात दाहिने गुल्फको बायें गुल्फके ऊपर रखा और उसके ऊपर बांये हाथपर दाहिने हाथ रखकर बैठ गये।

तदनंतर शांतभावसे आंख मीचकर अपने उपयोगको लोकाग्र भागमें पहुचाकर श्री सिद्ध परमेष्ठियोंका स्मरण किया। और श्री सिद्ध परमेष्ठीको अपने अंतरंगमे लाकर स्थापित किया व उनकी भावपूजा की। और उन्हे यथास्थान पहुंचाकर आंखें खोल ली।

आंखोंसे अन्नपानीको अच्छी तरह देख रहे थे। और ज्ञान-चक्षुसे आत्माको देख रहे हैं।

इसके बाद सोनेके कलशसे पानी लेकर मंत्रजप करते हुए उन्होने थोडासा पान किया अर्थात् भोजन करनेको प्रारभ किया इतने घंटा वजने लगा।

भरत दिव्यामृतके समान दिव्य अन्नपानोंको अब भोजन करने लगे हैं।

ज्ञानान्नको आत्माको और बाकी अन्नपानको शरीरके लिये एक कालमें भरत अर्पण कर रहे हैं। ज्ञानियोंके सिवाय भरतेशके हृदयकी बात और कौन जान सकते हैं ?

भक्ष्यके सुखका अनुभव भरत शरीरको करा रहे हैं और आत्माको मोक्षके सुखका अनुभव कराते हैं। मोक्ष गामियोके सिवाय उस दक्षकी हृदय परीक्षा कौन कर सकता है ?

उस मीठे २ अन्नको उस शरीर को खिला रहे हैं। खिलाते हुए शरीरसे भरतजी कह रहे हैं कि "देखो ! तुम को मोटे ताजे वनाने के लिये मैं यह खिला नही रहा हूं, तुम मेरे आत्माकी अच्छीतरह सेवा करना"। सचमुचमें भरत के हृदयका विचार आसन्न भव्य ही जान सकते हैं।

तिक्त, कटु, कषाय, आम्ल व मधुर इन पाच रसोंका अनुभव जीभको कराते हुए जिस समय जारहे हैं उसी समय आत्माको दर्शन, ज्ञान, वीर्य व सुखका अनुभव करा रहे हैं।

शरीरको तण्डुलान्न खिला रहे हैं। आत्माको बोधपिंड देरहे हैं।

भोजन करते समय थाली कटोरी वगैरहमें हाथ पहुचकर मुहमे जैसे पहुचता था उसी प्रकार उनका हृदय सिद्ध लोकमें पहुंचकर आता था।

जिस प्रकार किसी मनुष्यको भूख तो न हो परंतु बधुओंके आग्रहसे भोजन कर रहा हो उसी प्रकार की गति चक्रवर्ती की होगई थी अर्थात् बहुत उदासीन भावसे भोजन कर रहे थे। क्यों कि असमपुण्योदय श्री भरत को मोक्षके सिवाय कोई विषयमें आनंद ही नहीं आता था।

जिस प्रकार किसी दुष्ट राजाके राज्यमें जब तक कोई सज्जन रहे तबतक तो उस दुष्टकी बात सुननी पडती है उसी प्रकार चक्रवर्ती भरत यह विचारकर भोजन कर रहे थे कि जबतक इस दुष्ट कर्मजन्य शरीरके साथमें हूं तबतक मुझे उसकी रक्षा करनी ही पडेगी। जैसे घर पर आये मेहमानको सत्कारकर पहुंचानेके बाद मनुष्य अपने घरमें आकर स्वस्थ बनजाता है उसी प्रकार भरतजी उस शरीरको मेहमान समझते थे। उसे खिलाकर वे अपने घर जो आत्मा है उसमें पहुंचकर सुखसे रहते थे।

इस प्रकार भरतजी अपने आत्म विचार करते हुए भोजन कर रहे हैं फिर भी उनकी राणियां चुपचाप बैठी हैं। उन्होंने अभी भोजन करनेको प्रारंभ नहीं किया है। तब चक्रवर्तीने जरा आगे फेर कर उनके तरफ देखा फिर पूछने लगे कि आप लोग क्यों बैठी है? भोजन क्यों नहीं करती हैं? तब किसी एकने भरतजीके कानमें कुछ कहा। भरतने सम्मतिके इशारा किया। तत्क्षण एक राणीने भरतकी थालीसे कुछ पकान्न लेकर सबको परोस दिया। तब कहीं सबको संतोष हुआ। उन पतिव्रता स्त्रियों को पतिभुक्तशेषान्नको खानेकी प्रतिज्ञा थी। इस प्रकारकी पतिभक्ति घरघरमें होसकती है?

जीवबल, देह बलकी वृद्धिके लिये भरतजीने ३२ ग्रास भोजन करके तृप्ति की। फिर उन राणियोंने भी हितमितमधुर

भोजनकर तृप्ति प्राप्त की। वे नग्न संतोषान्नको खाती रहती हैं। इसलिये उनको क्षुधाग्नि विशेष नहीं है।

भरत व उनके राणियोंने निर्मल जलमें हाथ धोलिया। और भरत कहने लगे कि अब हमें भोजनांतरकी क्रिया करनी है। आप लोग अब उन परोसी हुई राणियोंको भोजन करावे। ऐसा कहकर वे स्वयं आंख मींचकर बैठ गये और सिद्धांत मंत्रके ध्यान करने लगे।

राणियोंने भी 'बहिनो' आप लोग आईये। आप बहुत थक गई हैं। हम अब आप लोगोंको परोसेंगी' ऐसा कहकर बाकी बची राणियोंको बहुत आनंदसे भोजन कराया।

भरत चक्रवर्ती आंख खोलकर "जिन सिद्ध शरण" ऐसा उच्चारण कर वहांसे उठे एवं विश्रांतिके लिये चंद्रशालामें पहुंचे। वहांपर भी राणियां पहुंचकर पतिसेवा करने लगी। कोई पंखा करने लगी। कोई गुलाब जल छिडकने लगी कोई पैर दबाने लगी इसतरह तरह तरह की सेवा करने लगी।

हे परमात्मन्! तुम्हारा रूप बहुत विचित्र है। लिखनेको नहीं आता, सुधारनेको नही आता। मंथन करनेपर भी नही मिल सकता। तुम अभव हो। इसलिये मेरी कामना है कि मेरे हृदयमें सदा रहो यह भरतका नित्य विचार है।

इति राज भुक्ति पधि



अथ राजसौध संधि.

हे परमात्मन् ! तुम्हारा रूप विचित्र है। कोई कुशल चित्रकार तुम्हारे चित्रको चित्रित करना चाहे तो वह नही कर सकता है। बिगडजाय तो सुधारनेकी बात तो दूर ही रहे। समुद्रके मथन करनेपर जिस प्रकार अनेक प्रकारके पदार्थोंकी प्राप्ति हुई थी ऐसी लोकोक्ति है, दहींको मथन करनेपर जिस प्रकार लोणी निकल सकती है उस प्रकार किसीको मथन करनेपर तुम मिल सकते हो? नहीं ! क्यों कि तुम्हे रूप नहीं। आकार नही। कोई तुम्हे स्पर्श नही कर सकता। देख नही सकता। तुममें कोई आवाज नही। इसलिये सुन नही सकता। तुममें कोई गंध नही इसलिये कोई सूघ नही सकता। फिर भी हे आत्मन् ! मैं प्रार्थना करता हूं कि मेरे हृदय में तुम वैसे ही अंकित रहो जैसे किसीने तुम्हारे चित्रको लिख छिपाकर रखा हो।

हे सिद्धात्मन् ! तुम्हारी महिमा अपार है। अंतरहित अमृत संपत्तियोंको धारण करनेपर भी लोकको एक गरीबके समान दिखते हो। आभरणों के नही होनेपर भी अत्यन्त सुंदर— हो! तुम्हारी बातें दिखऊ नही हैं। असली हैं। क्योंकि तुम असलीपदको प्राप्त होचुके हो। भक्त अपने विचारोंके विकारसे कुछका कुछ समझें यह दुसरी बात है। हे भव्येश्वर ! मुझे तुम्हारे सच्चे रूपको देखनेका सामर्थ्य दोगे ? वैसी सद्बुद्धी मेरे अंदर उत्पन्न होगी? भगवन् ! मेरी आशा को पूर्ण कीजिये।

एक दिन की बात है भरतेश प्रातःकालकी नित्य क्रियावोंसे निवृत्त होकर अपने यहां ऊपरके महलमें नवरत्नमय मण्डपमें जाकर विराजे हैं।

सोनेके उस महलमें स्थित नवरत्नमय मण्डपमें लालकमलके समान सिंहासनपर आसीन राजेंद्र देवेंद्र के समान मालुम होते थे।

पीछेकी ओर झलरीदार मुलायम तकिया, इधर उधर शीतल हवा बहानेवाली देव दासिया, साक्षात् राजाके देहपर स्थित देवाग वस्त्र सचमुचमें अद्भुत शोभा दे रहे थे।

इतना क्यों? शरीरकी काति, आभूपण की काति, उस मण्डपकी काति आदि के फैल जानेसे उस समय जनपति भरत उस दिनपतिके उदय कालमे साक्षात् दिनपति (सूर्य) ही मालुम हो रहे थे।

इतनेमे अंतः दरबारके योग्य सर्व परिकर वह एकत्रित होने लगा। अनेक मगल द्रव्योंको लेकर दासिया सेवामे उपस्थित हुई, वीणा, किन्नरि, वेणु आदि वाद्योंको लेकर गायन करनेवाली स्त्रिया आई। फिर भरतको बहुत विनयके साथ नमस्कार करने लगी।

हाथमें वेतको रखनेवाली व्यवस्थापक स्त्रिया हटो, रास्ता छोडो, इन्हें बुलावो उन्हें बुलावो आदि शब्दोंको करते २ अपनी सेवा बजा रही थी।

भरतेशकी राणियोंको काव्यका अध्ययन जिसने कराया था वह पंडिता नामकी दासी भी वहा आकर उपस्थित हुई। राजेंद्रको प्रणाम कर अपने स्थान में बैठ गई।

इसी प्रकार सब राणिया श्रृंगार करके भरतेशके दर्शनके लिए अपने हाथमे उत्तमोत्तम भेटोंको हाथमें लेकर उस महलपर चढ रही थी।

कामदेवके दर्शन करनेके लिए उनकी प्रिय स्त्रिया मेरू पर्वत को चढ रही हो ऐसा मालूम होरहा था।

बहिन! देखकर आवो, हुशियारीसे आवो, जरा हमारे हाथको तो पकडो, इस प्रकार मुझे छोडकर क्यों दौडती हो? घबरावो मत आवो आवो बहिन इस प्रकार परस्पर कई तरहके

वार्तालाप करती हुई वे उस महलको चढ रही थी।

" तुम आगे क्यों भागी जारही हैं ?, भागो ! भागो ! तुम्हारे लिये राजा प्रसन्न होकर जरूर कुछ न कुछ देगा, जल्दी जावो इस प्रकार कोई आगे जानेवाली राणीसे कह रही थी।

वह लज्जित होकर ' अच्छा वहिन ! जिनके पैरसे चला नही जाता वे कुछ भी वोल सकती हैं। आपकी मर्जी ! बोलो ! ऐसा कहकर जारही थी।

कोई राणी सबसे कह रही थी जरा जल्दी चलो बहिन् ! इतना धीरे क्यों चल रही हो ! इतनेमें उसकी हंसी उडानेकी दृष्टि से दूसरी राणिया कहने लगी कि देखो इसे क्या जल्दी लगी है। न मालुम पतिके मुखको देखकर कितना दिन हो गया हो ! इस लिये जल्दी दौड रही है ! तब वह लज्जित होकर ' अच्छी बात ! आप लोगोंको हितकी बात कही यही गलती हुई। अब मौनमें रहूंगी " ऐसा कहकर चल रही थी।

एक राणी गर्भिणी थी। उसे देखकर दूसरी राणियां कहने लगी कि हा ! वहिन देखो ! यह ऊपर चढ नहीं सकती। स्वयं चढती है और पेटमें एक वजनको लेकर चढ रही है। इसे कितना कष्ट होरहा होगा। क्या भरतको दया नहीं है ? इसे क्यों बुलाया है। जरा हाथका सहारा लगावो बहिन ! "

तब वह स्त्री कहने लगी कि बस ! रहने दो तुम लोगों की बात ! मैं तुम लोगोंसे आगे जा सकती हूं। परन्तु आगे जानेपर आप लोग यह कहती हैं कि इसे पतिको देखने की गडबडी है। इसलिये मैं पीछेसे धीरे २ आरही हूं। "

इस प्रकार बहुतसे विनोद करती हुई वे राणियां महलको चढ रही है। उनमेंसे एक राणी मौनसे चढ रही थी। तब उसे देखकर दूसरी कहने लगी कि देखो कि यह मौन धारण करके

जा रही है। शायद मनमे पतिका ध्यान करती जा रही है। इसके मनमें क्या है ? समझमें नहीं आता ? बहिन ! तुमको ऐसा ध्यान किसने सिखाया है ?

तब वह राणी कहने लगी कि बहिनों ! ध्यान गान तो तुम और तुम्हारा पति जाने। हम सरीखी उसे क्या जानें। हा ! तुम लोगोंके वार्तालाप को सुनती हुई व मनमें प्रसन्न होती हुई मौनसे आरहीं हू। और कोई बात नहीं।

पीछे रहे, आगे जावे, बोले या मौनमें रहे तो हर हालतमें आपलोग कुछ न कुछ कल्पना करती है। तुमलोगोंको जीतनेकेलिये पतिदेव ही समर्थ हैं।

अब रहने दो विनोद! दरबार पास आगया है। अब बहुत गभीरतासे आईयेगा। अपनी बात उधर सुननेमें आयगी। इसलिय बहुत सावधानचित्तसे चलो।

इस प्रकार तरह के विनोद करती हुई वे राणियों महल चढकर आई। अब दरबार गृह बिलकुल पासमे है।

राणिया आनंदके साथ महलपर चढकर आ रही है यह समाचार व्यवस्थापक दासियोंसे राजाको पहिलेसे मिलगई।

सबकी सब राणियां उस दरबार गृहको प्रविष्ट होगई। और पंक्तिबद्ध खडी हुई, फिर एक २ राणी भेंट समर्पण करने लगी।

एक राणी निंबू लाकर भरतके चरणमें समर्पण कर अलग जाकर सुवर्ण बिंबके समान खडी होगई।

दूसरी नीलांगी नील कमलको समर्पणकर अलग जाकर इंद्रनील मणिके बिंबके समान खडी होगई।

एक राणी लाल कमलको समर्पण कर भरतके बाये तरफ माणिक की पुतलीके समान खडी रही।

एक राणी चपाके फूलको अर्पणकर स्त्रियोंके बीचमें सिर गई

एक कृष्ण वर्णकी राणी अपने करकुशलसे रचित पुष्पमालाको लाकर भरतको उपहारमें देने लगी। जैसे रतिदेवी ही काम देवको उपहार देरही हो।

जिस प्रकार रति देवी कामदेव को पुष्पके खड्ग व बाण भेंट में देती है उसी प्रकार कोई राणी श्री भरतको केवडेके फूल लाकर समर्पण करने लगी।

एक जवान राणी पहाडी कमलको भरतके चरणमें रखकर अलग जाकर बहुत विभवसे खडी होगई।

एक राणी लज्जित होकर सामने ही नहीं आरही थी। सब के पीछे २ जा रही थी। उसे दूसरी राणी हाथ धर कर लाई व उसके हाथसे भेंट दिलाई।

एक राणी डर डरकर आई। व जिस समय भेंट समर्पण करने लगी उस समय उसके हाथका जाईका फूल एकदम नीचे गिर गया। तब बहुत लज्जित होगई। दूसरी राणियां उस समय हंसकर कहने लगी कि यह भेंट नहीं। पुष्पांजलि है।

एक मुग्धा राणी लज्जित होकर आई। मल्लिका पुष्पको समर्पण करते समय वह पुष्प हाथसे सरककर पड गया। वह और भी लज्जित हुई। भरत कहने लगा कि इतना लज्जित होने की क्या जरूरत? पुष्प पडा तो क्या हुआ? हमारे ऊपर ही पडा न? लज्जित न होना।

एक राणीने पादरी पुष्पको लाकर भरतके चरणमे रखा। तब चक्रवर्तिने पैरसे उसको जरा सरका दिया।

तब पण्डिता कहने लगी कि राजन्! आपने ठीक किया। क्या परदार सोदर भरतके पास पादरी आसकता है क्या? आपने पैरसे लात मारा तो बहुत ठीक किया। ऐसा कहकर राजा को थोडा हंसादिया।

राजन्। तुम्हारी स्त्रिया अत्यधिक शीलवती हैं। उनके तरफ यदि पादरी आया तो उसको पकडकर तुम्हारे पास लाई। तुम्हने उसे लात मारकर दण्ड दिया यह उचित ही किया।

इतनेमें दूसरी राणी आकर आम्रफलको समर्पण कर एक और खडी होगई। एक राणी जो मोतीके हारको पहनी हुई थी वह अपनी भेंट समर्पण करने लगी।

एक राणी अपने हाथमे माणिक्य रत्नको ले आकर भरतके हाथमें देती हुई नमस्कार करने लगी।

दूसरी राणी मोतिके एक हारको बहुत भक्तिके साथ भरतके हाथमें रखकर प्रणाम करने लगी।

इतने में पण्डिता विनोदसे कहने लगी कि राजन्! लोकमें मुखसे मुख स्पर्शकर चुंबन देनेकी पद्धति तो है। परतु यह आश्चर्य-की बात है कि दोनों हाथ परस्पर स्पर्शकर चुंबन देते हैं।

इस प्रकार चादीके फूल, कई सोनेका फूल, आदि अर्पण कर अपने २ स्थानमें खडी हो गई।

पंक्तिबद्ध स्थित वे राणिया उस समय देवांगनाके समान मा-लुम होती थी।

राजा भरतने सबको एकदफे देख लिया। और कुछ देर बाद हाथके इशारेसे सबको बैठनेके लिये कहा। तब पतिकी आज्ञा पाकर सबकी सब वहां बैठ गई।

वहा मृदु गादी बिछी हुई थी। उसपर राणिया बैठ गई। पासमें ही पण्डिता भी बैठ गई। एवं गायकी जो आई हुई थी उनको भी इशारा किया तो वे भी अपने स्थानमें बैठ गई।

उस समय वह काम देवका दरबार मालुम होरहा था। भरतके सिवाय वहा कोई पुरुष नहीं था। चामर ढारनेवाली उन तरुणियों के बीच भरत अत्यन्त सुन्दर मालुम हो रहे थे।

इतनेमे भरतने गायकियों के तरफ अपनी दृष्टी दौडाई। इतनेमें गायनका आरंभ हुआ।

कमल रसको खींचनेवाला भ्रमर जिस प्रकार उसीमें गुंग होकर गूंजता है उसी प्रकार गायन कलामे प्रवीण गायकियां गाने लगी।

उनकी दृष्टि राजाकी तरफ, स्मरण रागकी तरफ, हाथ वीणा के तारपर इन बातोंमे एकाग्रताको पाकर गारही थी।

प्रातःकालमें बहुतसी पक्षियां सूर्यके सामने जिस प्रकार मधुर ध्वनि करती है उसी प्रकार राजा भरतके सामने वे दासिया उपस्थित थी।

सबसे पहिले उनलोगोनें उदय रागको गाया। इतने अच्छी तरहसे कि उस समय यदि देवेंद्र भी वहासे निकलता तो वहीं ठहर जाता। अर्थात् बहुत उत्तम रीतिसे गारही थी।

मालुम हो रहा था कि उस समय एक दफे वे गायन समुद्र को प्रवेश होकर फिर उसमें डुबकी लगाकर आरही हो।

नाभिसे उस स्वरको उठारही थी। फिर उसे हृदयमें लाकर फैलाती थी। फिर सुंदर कंठमें ध्वनित कर बाहर निकालती थी। सचमुचमें श्रीदेवी का मंगल गान मालुम हो रहा था।

उन गायकियोनें उदयरागमें गाकर फिर देवगांधारि, भूपाळि, धन्यासि, वेळावळि, सौराष्ट्र आदि शुद्ध रागोंके आश्रयकर वहापर गायन किया।

केवल गायन ही नही उसके साथ जो हाव, भाव, विलास, विभ्रम, आदि अनेक क्रियावोंको भी करती जाती थी। सुननेवाली दरबारकी सभी स्त्रियां सिर डुल रही थीं।

जिस समय वीणाके तारको वह उगलीसे ठोंक रही थी उस समय भरत मनमें विचार रहे थे कि यह कुशल गायकी इस -

ससारको नीरस समझकर उस वातको प्रकट करनेके लिए यह क्रिया कर रही है।

स्वर मंडलसे जव वे गायन कर रही थी उसे यदि सुरमंडल भी सुनता तो मुग्ध होजाता फिर परमण्डलको जीतनेमे समर्थ भरत उसपर संतुष्ट क्यों नहीं होगा । इतना ही नही। वह कर्मरूपी अरिमण्डलको जीतने के लिये भी सर्वथा समर्थ है।

सुननेवाले कहते थे कि इनके सामने, किन्नरी, विद्याधरी व अप्सरावोंकी किंमत क्या है? भिन्न व अभिन्न भक्ति युक्त कि-न्नरि वाद्यसे भी उन्होने सभाको मोहित कर दिया।

इसमे आश्चर्य भी क्या वात है? वे गायकिया सामान्य नहीं थी। भरत चक्रवर्तीके गायन तालीममे पली हुई थी। इस लिय सुननेवालोंको अत्यत मोहको उत्पन्न करनेके लिये उसमें किस वात भी कमी होगी।

सबसे पहिले अरहत भगवंत वादमें सिद्धपरमेष्ठी एवं मुनिगणोंको वहुत भक्तिसे स्मरण कर तदनंतर भोग व योग विचारको मिश्र-कर गाने लगी ।

क्यों कि वे अच्छीतरह जानती थी कि भरतके मनमे क्या है? वह भोग योग दोनोंको हृदयसे पसद करता है। उसीको प्रसन्न करनेकी दृष्टिसे भोग व योग विचारको उन्होंने निम्न लि-लिखित प्रकार गाये।

क्या सुखका अनुभव करना क्या सरल है? उसके लिये वडे भारी कुशलताकी जरूरत है। इह लोक और परलोककी चिंता रखनेवाला चतुर है। सामनेके सर्व परिस्थितियोंको भी जानना चाहिये । और अपनेको भी जानना चाहिये । वही कुशल है।

आत्मज्ञानी को तीन आंखे होती हैं अथवा जिसको तीन नेत्र हैं वह इस लोकमें विजयी होता है। दो आंखोंसे तो वह लोकको देख सकता है। परंतु आत्माको उन आखोंसे नहीं देख सकता है. उसके लिये तीसरा ही ज्ञानरूपी नेत्रकी जरूरत है। उस ज्ञानरूपी नेत्रसे वह आत्माको देखता है। इसलिए त्रिनेत्रीको ही सुख की सिद्धि होती है। सबको नहीं।

वह विवेकी तरुणी स्त्रियोंके बीचमे भी रहे। और आत्मरति रूपी क्षीर समुद्र में भी रहें। अनेक विषयवासनावोंके बीचमें रहनेपर भी आत्मानुभवकी प्राप्तिकेलिये उद्योग करना चाहिये। सुखकी सिद्धि उद्योगी पुरुष पुंगवोंको नसीब हो सकती है। आलसियोंको वह क्यों मिलेगी ?

एक दफे वह उत्तम स्त्रियोंसे वार्तालाप करें। उधर फिरकर सरस्वती (शास्त्र) से वार्तालाप करें। परसतियोंमें मौन धारण कर मुक्ति सतिके प्रति ध्यान रखें। इस प्रकार उस विवेकी को चतुर्मुख रहे।

कमलाक्षी स्त्रियोंके चित्त व अपने चित्तका अंतर जो समझनेमें समर्थ है उसीको आत्मसिद्धि है। उसे अर्ह कहते हैं। जिसमे इस प्रकारकी शक्ति है वही श्रीमंत है। वही प्रभु है। ऐसे श्रीमंतोंको ही सुखसिद्धि होती है। गरीबोंको नही होती।

जो लोग शरीर संबंधी सुखमें पागल होकर आत्मसुखके स्वादको नही लेते है और इन्द्रियके सुखको ही भोगते हैं सचमुच में वे बडे भारी भूल करते हैं। उनकी गति ठीक वैसी ही है जैसे कोई पागल भुसेको बचाकर रखकर चावलको फेंक रहा हो। उसी प्रकार यह अज्ञानी भी सार सुखको छोडकर असार इंद्रिय सुखको ग्रहण करता है।

लोकमें असमर्थ मनुष्य गुणोंकी प्राप्तिके लिये बहुत कोशिश

करता रहता है। मुझे अमुक गुण चाहिये। धन चाहिये। शक्ति चाहिये इस प्रकार लोग रात दिन खटपट किया करते हैं। परन्तु उनको प्राप्त नही होते। किंतु आत्मयोग धारण करनेवाले योगियोंके पास से यदि वे उन गुणों को धक्का देनेपर भी वे जाते नही। और वे महागुण उल्टा उस व्यक्तिको अपने आप आश्रय पानेको आते हैं।

जिसके हाथमे पारस या चिंतामणिरत्न है उसे संपत्तियोंको प्राप्त करने के लिये क्या कठिनता होगी? । इसी प्रकार जिसके हाथ आत्मानुभव रूपी रत्न आगया उनको ऐसे कौनसे पदार्थ हैं जो नही मिलसकेंगे। तीन लोक ही उसकी मुट्ठीमें है ऐसा समझना चाहिये।

जिसने आत्मानुभवको प्राप्त किया उसे भवभवमें भोग मिलेगा। तीन भव, चार भव, दस भव, जबतक भी वह संसारमें रहेगा बहुत सुखके साथ रहेगा। तदनतर उस भवका नाश कर कैवल्य सुखको प्राप्त करेगा। इस आत्मानुभवके बराबरी करनेवाला भाग्य क्या कोई और है? नहीं। वह सबसे बडा भाग्यशाली है।

वह आत्म विनोदी यदि स्वर्ग लोकमें जाकर जन्म लेता है तो देवोंको भी आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले सौंदर्यको प्राप्त करता है। यदि भूलोकमें आकर जन्म लेता है तो वह कामदेव सदृश सुन्दर होकर जन्म लेता है।

स्वयं वह कुछ चाहता है। परंतु सौभाग्य तो अहमहमिका रूपसे उसके आश्रयको पानेके लिये स्वयं आते हैं। वह सौभाग्यकी इच्छा नही करता । इसलिये वे भी आते हैं। आत्म रसिकके मनमे लोककी चिंता नही रहती है। फिर भी लोक सब उसकी चिंता करता है। लोकके तरफ उसका उप-

योग नही होता है। परंतु आश्चर्य है कि लोक के विचारमे उसी-का ध्यान रहता है।

जो आत्मविवेकी है वह अपने सामने कोई स्त्री एकदफे भी निकल जाय तो उसके हृदयकी बात समझ लेता है। जो स्त्रिया पुरुषोंको फांसनेमें प्रवीण हैं उनको हराकर अपने पीछे फिराता है। परंतु उनकी ओर उसकी उपेक्षा रहती है।

थोडासा मंद हास करने मात्रसे उन स्त्रियोंके हृदयमें अपार आनन्द उत्पन्न करता है। परन्तु उन स्त्रियोंको यह पता नहीं है कि आत्मरसिकका इन्द्रिय और आत्मा अलग २ है। वह इन्द्रिय से हंसता है। आत्मा से नहीं। उसकी आत्माको बाहरकी बातोंसे जाननेवाले कौन है?

कभी २ वह आत्मज्ञानी मुग्धा स्त्रीको मोहन कला सिखाकर उसे विदग्धा (चतुर) बनाता है। कभी २ उस चतुर स्त्री को भी अपने वचन चातुर्यसे मुग्धा बना देता है। जिस समय फिर उसे मौन रहना पडता है।

स्त्रियोंके साथ विशेषरूपसे वह सरस, हास्य वगैरह करनेको उद्यत नहीं होता। कदाचित् किसी समय वैसा करें तो उसमें वि-रसता को भी आने नहीं देता। उस हास्यालापसे उन स्त्रियों को अपने वंशमें कर लेता है। इतना सब होते हुए भी अपने आत्म-परिणतिमें वह प्रमाद नहीं करता है। उसमें बहुत सावधान रहता है। यह उसमें खूबी है।

वह किसी के प्रति क्रोधित नहीं होता। और न क्रोधित होना वह जानता ही है। न वैसी इच्छा कभी उसे होती है। यदि थोडासा क्रोधित हुआ तो उसी समय उस क्रोधको भूल जाता है। और ज्ञान प्राप्ति कर लेता है। जिस प्रकार पानीको तपाया जाय तो वह जैसे जल्दी ठण्डा होजाता है उसी प्रकार उसे मंदकषाय होजाय तो भी जल्दी शांत होजाता है।

स्त्रियोंके साथ प्रेमव्यवहार करे तो [नगहति दनहति आदि कर विशेष आसक्त नहीं होता। कदाचित करें तो दूसरों को वह है कि नहीं यह भी मालुम नहीं होपाता है।

स्त्रियोंके साथ वह प्रणय कलह कभी नहीं करता है। यदि कदाचित् करें तो भी क्षणभरमें उससे पलटकर गंभीरतामें रहता है। यह निष्पाप भोगियोंका लक्षण है।

स्वयं अपने अभिमान, गभीर आदि गुणोंका पूर्ण ध्यान रखकर वह आत्मविवेकी चलता है। उसी प्रकार उनकी स्त्रिया भी आचरण करती हैं। उसकी लीला ठीक वैसी ही है जैसे कोई हाथी जगलमे हथिनियोंके बीचमें रहकर खेल कूद कर रहा हो।

यदि किसी एक स्त्रीके प्रति उसका अगर विशेष प्रेम भी हो तो उसे बाहर किसीको बतलाता नहीं। एक पुरुष एक पत्नीके साथ जिस प्रकार रहता हो वह उसी प्रकार अनेक पत्नीयोंके साथ समदृष्टिसे रहता है।

स्त्रियोंको आकर्पण भी करता है। उनके प्रति प्रीति भी करता है। उन स्त्रियोंकी इच्छाको नित्य पूर्ति करता है। और उन्हें आनंद उत्पन्न करता है। एवं उन्हे हरतरहकी नीति, रीतिको सिखाता रहता है। एवं बीच बीचमें अपना अनुभव करता रहता है।

वह आत्मज्ञानी बहुतसे जालोमे फसा हुआ है ऐसा देखने वालोंको मालुम होता है परंतु वह किसीमे फंसा हुआ नही है। काम सेवनमें मदोन्मत्त होगया हो ऐसा मालुम तो होता है। परंतु कभी वैसा होता नही। ठगोंके समान उसका आचरण दिखता है परंतु सचमुचमे उसमे धोकेबाजी नही है। यह जिसने अपनी आत्माका अनुभव किया है उसकी लीला है। अदर एक और बाहर एक रहनेपर भी वह आत्म कल्याणका साधक है इस लिये मायाचार नही।

एकदफे वह किलेके समान बनता है। फिर कभी ग्रामके समान बनजाता है। कभी फूलके बगीचे के समान रहता है। जिस समय उन स्त्रियोंको संसर्ग सुखका अनुभव कराता है उस समय उनको ऐसा मालूम होता है कि शायद स्वर्ग ही पुरुषके रूपमें आया है।

जिस प्रकार कोई जवान मनुष्य बच्चों के साथ अनेक प्रकारसे सरस वार्तालाप विनोद आदि करता है परंतु वह कुछ ही समय के लिये हुआ करता है इसी प्रकार यह आत्मज्ञानी उन रमणियों के साथ विनोद परिहास आदि करता रहता है फिर भी इसके मनमे भिन्न ही विचार रहता है। वह अपने को नही भूल जाता है।

शहर के रहनेवाले चालाक लोग गांवडेके रहनेवालोंके साथ अनेक प्रकारसे विनोद करते हुए कहीं जा रहे हों उसी प्रकार मोक्षको जानेवाले इस पथिकका यह मार्ग में अनेक प्रकारसे मोह-लीला है।

बाहरसे जो लोग उसका वर्ताव देखते हैं उनको मालुम होता है यह नीति मार्ग नही है यह मार्गच्युत हुआ है। परंतु वस्तुतः वह सन्मार्ग में ही रहता है। आत्मज्ञानीकी चाल बहुत विचित्र है। उसके मनकी बात कौन जान सकता है। उसके हृदयको एक मात्र जिनेंद्र भगवंत ही जाननेको समर्थ हैं।

बडे २ साड, हाथी वगैरह जिस मार्गसे जाते हैं उनके पाद चिन्हको हरएक जान सकते हैं परंतु हवाके भी पाद चिन्ह को कोई पहिचान सकता है क्या? नहीं। इसी प्रकार सामान्य मनुष्योंकी चित्त प्रवृत्तिको जान सकने पर भी तत्वशील विवेकी के हृदयको जानना साधारण विषय नहीं।

वे गायकियां कहने लगी कि यह हमारे भरत चक्रवर्ती की

दिन चर्या है। और जगह यह विषय नहीं पाया जायगा। भरत में भी इस प्रकार की प्रवृत्ति की प्राप्ति क्यों हुई। यह उन्होंने पूर्वजन्ममें जो मनःपूर्वक आत्मभावना की उसका फल है। इसलिये आज आदर्श महापुरुष कहलाते हैं।

इतनेमें उपर्युक्त विषयको सुनकर भरतको बडा हर्ष हुआ। उन्होने उसी समय उनको पासमें बुलाकर अनेक प्रकारके दिव्य वस्त्र आभरण वगैरह देकर उनका सत्कार किया।

एवं कहा कि "शाहबास! तुम लोग बहुत अच्छी तरह गाई"। इस वचनको सुनकर वे स्त्रियां और भी अधिक प्रसन्न हुई। फिर सम्राट के पादकमलोंको बहुत भक्तिके साथ नमस्कार कर अपने अपने स्थानमें जाकर बैठ गई।

चारों तरफसे कमलोंके द्वारा घिरकर बीचमें बैठा हुआ ब्रह्मा जिस प्रकार शोभित होता है उसी प्रकार वह भरत उस समय उस स्त्रियोंके दरबारमे बैठे २ शोभाको प्राप्त हो रहे थे।

भरतको इस प्रकारका वैभव क्यों प्राप्त हुआ? वह इस प्रकारकी भावनामें निरत रहते हैं कि हे आत्मन्! तुम संसारके भयसे जो कोई भी प्राणी तुम्हारे पास शरणागत होकर आवे उनकी रक्षा करने के लिये वज्रके पींजडेके समान हो कोई उसे तोडमोड नहीं सकता। और तुम स्वाभाविक आभूषणोंसे युक्त हो अतएव सहज सुंदर हो। अनंत सुख तुममें है। उज्वल ज्ञान ज्योतिको धारण कर रहे हो। इस लिये मेरी रक्षा करनेमें तुम सर्वथा समर्थ हो। मेरी रक्षा करो। मेरे हृदयमें रहो। आत्मन्! सचमुचमें तुम संसार को नाश करनेवाले हो। मुझे भी सिद्धि की ओर लेजावो।

इस प्रकार सतत भावनामें रहनेसे सम्राट भरतने असाधारण वैभवको प्राप्त किया।

इति राजसौध संधि

अथ राजलावण्य संधि

जब भरत अंतः दरबार में बहुत वैभव के साथ विराज रहे थे तब एक गायकी ने पण्डिता के कानमें कुछ कहा।

तब वह पंडिता एकदम उठी और सम्राटको हाथ जोड कर कहने लगी कि स्वामिन्! मुझे आपसे एक प्रार्थना करनी है। आशा है आप आज्ञा देंगे।

" अच्छा ! कहो ! " भरतने कहा।

आपकी सेवा में मैं एक नवीन काव्यको उपस्थित करना चाहती हूं। कृपया आप उसे सुननेका कष्ट करें। ऐसा पंडिताने कहा।

तब विचार कुशल सम्राट भरत कहने लगे कि उस काव्यको किसने रचा है। उसमे किसका वर्णन है। उस नवीन कृतिके संशोधक कौन हैं ?

दूसरोंने उस काव्यकी रचना नहीं की ? दूसरोंका वर्णन उसमें है नहीं। दूसरे उसे संशोधन करनेके लिए पात्र नहीं। हे राजन्! वह रचना तुम्हारी महलमें ही रची गई है। और उसमें तुम्हारा ही वर्णन है। उसे तुम ही संशोधन करो यही दासीकी प्रार्थना है।

महलमें जो रचना नवीन रूपसे रची गई है उसको करने वाले कौन समझें। रचना करनेवालोंका नाम तो बतावो। इस प्रकार मंद हासके साथ राजा बोले।

राजन्! महलमें सौ० कुसुमाजी राणीने अपने मनकी बात को एक तोतेके साथ कही। उसे पडोसमें रहनेवाली सौ० सुमना जी राणीने सुनी व चरित्रके रूपमे रचना की।

सुमनाजी राणीके महलको कुछ लीला विनोद के लिये अम-नाजी आई हुई थी। उस समय कुसुमाजी अमृत वाचक नामक अपने तोतेके साथ बातचीत कर रही थी। तब दोनों राणियोंने उसको छोडकर चरित्रका रूप देदिया।

अमनाजि सुमनाजीसे यह कहने लगी कि कुसुमाजीने जो कहा सो बहुत अच्छा हुआ। तुम बहिन! इनकी रचना करो। मैं इसे अच्छी तरह लिखती जाती हूं।

फिर वैसा ही तैयार हुआ काव्य यह है। राजन्! आप इसे सुनें ऐसा पण्डिताने कहा।

तब भरत कहने लगे कि अच्छीबात! मैं इसे सुनूंगा। किसी से इसे बाचनेके लिये कहो। तुम बैठी रहो। ऐसा कहनेपर वह पण्डिता उस पुस्तकको किसी एक स्त्रीके हाथमें देकर उसे बांचने-को कहने लगी व स्वयं वहापर पासमें बैठगई।

इतने में उस सभामें कुसुमाजी राणी जो बैठी हुई थी एक-दम उठी व सम्राट से प्रार्थनाकर कहने लगी कि आज दिनमें मेरा एक व्रतविधान है। मुझे अभी मंदिरमें जानेका है, इसलिए मैं अब जाऊंगी ऐसा कहकर जाने लगी।

इतनेमें राजा हंसकर कुछ बोलने लगे। " अच्छीबात! तुम जा सकती है। परन्तु तुम्हारे व्रतविधान की निर्विघ्न परिपूर्ण-ताके लिये यह सुवर्ण कंकण को देता हूं। लेती जावो, चुपचाप क्यों जाती हो! इसे लेजावो। " ऐसा कहाकर यों ही हाथको आगे बढाया।

तब कुसुमाजी इस बातको सच्ची समझ कर पासमें आई। और कंकण लेनेके लिये उसने हाथको आगे बढाई। इतनेमें हाथी जिस प्रकार अपनी हथिनीके हाथ को धरता है उसी प्रकार भरत ने उसके हाथको धर लिया।

प्रिये ! तू किसे ठग रही है ? मुझे अज्ञात रखकर तुझे आज व्रत किसने दिया है ? रहने दो ! यहां बैठी रहो ! तुझे मेरा शपथ है। ऐसा कहकर भरतजीने उस कुसुमाजीको अपने पासमे बैठाल लिया।

तुमने जो चरित्र दिल बहलानेके लिये तोतेके साथ कहा उसको सुनकर तुह्मारी वहिनोंको हर्ष हुआ। इसीलिये उन्होंने उसकी रचना की। अब मैं उसे सुनकर अपना दिल नहीं बहलाऊं क्या ? ऐसे आनंदके समयमें क्यों उठकर जाती हैं ? विचार तो करो।

हां ! मै तुम्हारे उठकर जानेका कारण समझ गया हूं। तुमने जो एकातमें तोतेके साथ बातचीत की थी वह बाहर पडगई है इस शर्मसे उठकर जारही है न ? अपने हृदयकी बात दूसरोंको मालुम न होने देना यह कुल स्त्रियोंका धर्म है। परंतु यह तो सो-चो कि यहापर दूसरे कौन हैं ? यहा तो सब अपने ही लोग हैं। फिर तुझे इतना संकोच क्यों ? चुप चापके यहा बैठी रहो। और इस काव्यको सुना।

पुनः भरतजी पंडितामे कहने लगे कि पण्डिता ! देखलीं तुमने ? कुसुमाजी कुसुमके गेंदके समान किस प्रकार उछलकर जारही थी ? " राजन् ! देखली ! स्त्रियोंके हृदय की बात आप सरीखे और कौन देख सकता है। स्वामिन् ! उसे अप ना गुप्त वार्तालाप दूसरोंके सामने आया इस बातकी लज्जा हुई। यह सज्जन स्त्रियोंका धर्म है। आपने जो उसे समझाया सो बहु-त अच्छा हुआ। " पण्डिताने कहा।

तब सम्राट् कहने लगे कि यह तो जानेदो ! पर यह तो देखो कि एक व्रतके बहानेसे मुझे किस प्रकार ठगरही थी ?

तब पण्डिता कहने लगी कि स्वामिन् ! वह तुम्हे जीतने का

स्पर्श न करके जो निराधार खडे हैं ऐसे आदिनाथ स्वामीके पाद-कमलोंको नमस्कार हो।

जिनको शरीरका भार नहीं, ज्ञान ही जिनका शरीर है और जो तनुवातवलय के बीचमे स्थित सिद्ध शिलामें विराजमान हैं ऐसे सिद्ध परमेष्ठीयोंके पादकमलोंको मैं अन्तरंग से स्मरण करती हूं।

तीन कम नव करोड मुनीश्वरोंको भावशुद्धिपूर्वक मैं नमस्कार करती हूं। तथैव शारदादेवीको प्रणाम करती हू। और भेदाभेद रत्नत्रयकी मैं सदा भावना करती हूं।

सम्राट् भरतके हृदयमें जो प्रकाश रूपमे रहनेवाला परमात्मा है उसे मैं शुभचित्तसे नमस्कार करती हूं।

कमलको स्पर्श न कर आकाश प्रदेश में खडे हुए हमारे मामाजी (श्वसुर) को नमस्कार कर भावाजी (पतिदेव) को वहिन अमराजी की आज्ञासे इस चरित्रको वाचकर सुनावूंगी।

कुसुमाजी राणीने जो अमृत वाचक तोतेके साथ विनोद-वार्ता की थी उसे एक चरित्रके रूप देकर यहां वर्णन किया जायगा।

कुसुमाजी कहती है कि हे अमृतवाचक! सुनो! भरत-चक्रेश्वरने सबको मोहित करनेवाले इस सुंदर रूपको किस पुण्यसे प्राप्त किया। पूर्वमें इसके लिये उन्होने कौनसे व्रतका आचरण किया होगा? इस जवानीमें इस सौंदर्यको पाकर स्त्रियोंके वीचमें रहनेपर भी अपने हृदयको न बताकर चलनेवाली गंभीरता वह उनको किससे प्राप्त हुई। लोकमें यौवन, संपत्तिको पाना कठिन नही है। परंतु उसके साथ विनयादिक सद्गुणों को प्राप्त करना यह कठिन है।

आकाशमें रहनेवाला एक ही सूर्य जल भरे हुए अनेक घडेमें

जिस प्रकार प्रतिबिंबित होता है उसी प्रकार यह एक ही भरत अनेक स्त्रियोंके हृदयमे प्रतिबिंबित होता है ।

उत्तम तपोधन जिस जंगलमें रहते हैं वहा क्रूर मृग जो रहते हैं वे अपने परस्पर वैर विरोध छोडकर रहते है उसी प्रकार राजर्षि भारत जहां रहते हैं वहापर रहनेवाली स्त्रिया सवत मत्स-रको छोडकर रहती हैं । यह आश्चर्य की वात है ।

हम लोगोंके मायके को भुलाकर रात दिन अनेक प्रकारके मिष्ट व्यवहारोंसे हम लोगों को आनद उत्पन्न करनेवाला साहस उसमें कहासे आया ?

लोकमें एक व्यक्ति को एक दफे देखकर पुनः देखनेपर पहिले के समान नही रहता है । वह पुराना हो जाता है । परंतु आश्चर्य है कि यह भारत प्रतिनित्य नये नयेके समान ही मालूम होता है

अमृत वाचक ! पट्खण्डके राज्यको पालन करने वाले हमारे पतिदेवको मैं मकुटसे लेकर पादतक वर्णन करूंगी तुम सुनो ।

इस प्रकार कहकर उस कुसुमाजीने सम्राट् भरतके प्रत्येक अंग प्रत्यंगोंका वर्णन बहुत खूबीके साथमे किया । वह जिस समय चक्रवर्तीका वर्णन कर रही थी उस समय उसके हृदयसे पतिदेवके प्रति भक्तिरस टपक रहा था ।

प्रत्येक अंग प्रत्यंगोंका वर्णन करनेके वाद कहने लगी कि अमृत वाचक ! ऐसा मत कहो कि भरतजी मेरे पति हैं इसलिये मैने उसकी प्रसंसा की है । परन्तु तुम ही विचार करो कि जिस-के शरीरमे मल मूत्र नहीं ऐसे पवित्र शरीरवाले चक्रवर्तीका सौंद-र्य किस प्रकार होगा ?

सम्राटको देखकर यह हक्का बक्का हो गई इसलिय इसने इस प्रकार चक्रवर्तीका वर्णन किया है ऐसा मत कहो । वह तो प्रथम तीर्थंकरका प्रथम पुत्र है । उसका वर्णन पूर्णरूपसे

वर्णन करनेके लिये क्या मैं समर्थ हूं ?

वह सब मनुष्योंका स्वामी है । व्यंतरोंका अधिपति है । विद्वानोंका राजा है । उसका वर्णन कौन कर सकता है ।

सब राजाओंका वह राजा है । बुद्धिमानोंके समूहका वह स्वामी है । तीन लोक मे प्रसंशाके योग्य हमारे पति वही एक है ।

उनके अन्दर जो गुण है उनके अंतको पाकर वर्णन करनेके लिये मैं सर्वथा असमर्थ हूं । तथापि अमृत वाचक ! यह तो केवल उनके गुणोंकी सूचना तुम्हे दी है । ऐसा तुम समझो ।

परन्तु ध्यान रखो, कि मैंने जो २ बातें कहीं हैं उनको अपने मनमे रखो । दूसरे किसीको कहना नहीं । तुमको मेरे प्रिय समझ कर तुम्हारे साथमे कहा है और किसीको मैं कहनेवाली नहीं ।

अमृतवाचक ! तुम अभी तक चुप चापके सुन रहे हो ! परन्तु कुछ भी उत्तर नहीं देरहे हो । मैं जो कुछ भी कहरही हूं सच है या झूंठ ? तुम्हारे मनमें ये सब बातें पटती हैं कि नहीं ? बोलो तो सही इस प्रकार आग्रहसे पूछने लगी ।

तब वह अमृतवाचक बोलने लगा कि बहिन ! तुमने जो कुछ भी रहस्य कहा वह मेरे चित्तमें आता ही नहीं । आया तो भी मैं उसे कह नही सकता । पक्षियोंकी जातिमें जिसने जन्म लिया मुझे वह चातुर्य कहांसे आयगा बहिन !

लोकमें मैं सबकी बोल व चालको देख सुनकर उसे सीख-सकता हूं परन्तु बहिन् ! तुम व तुम्हारे पुरुप की चाल व बोल कुछ विचित्र ही है । वह किसी दूसरेको आ नही सकती है । इस लिये मैं चुपचाप के सुनता जा रहा था । अब तुम बहुत आग्रह कर रही है इस लिये मुझे जो कुछ भी समझमें आया उसे कहता हूं । सुनो !

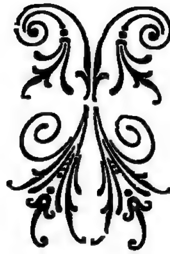
पाठकोंको आश्चर्य होगा कि भरतने उस प्रकारके अंगलावण्यको

या अलौकिक सौंदर्यको किस प्रकार प्राप्त किया ? उसके लिये कैसे उद्योग किया था ?

वह इस जन्मके उद्योगका फल नहीं है । पूर्व जन्मसे ही उन्होने इसके लिये बडी तैयारी की थी। वह निरंतर भावना करते थे कि परमात्मन् ! तुम भयंकर संसाररूपी जगलको जलानेकेलिये अग्निके समान हो ! उत्तम केवलज्ञानको धारण करनेवाले हो ! मंगलस्वरूप हो ! तुम्हारा धैर्य मेरुके समान अचल है। इसलिये संसार के नाश करने के लिये मेरे अन्तरंगमें तुम्हारा निवास रहें। मुझे उसके लिये सामर्थ्य प्रदान करो।

इसका यह फल है।

इति राजलावण्य संधि.



अथ शुकसल्लाप संधि

(सिद्धपरमात्मन् ! भव्योंके हृदयको आप संतोष उत्पन्न करनेवाले हैं और तपोधन मुनिराज आपकी सेवामें सदा निरत रहते हैं. इसलिए हमें भी आपकी सेवाके योग्य सुबुद्धि दीजियेगा.)

बहिन् ! कुसुमाजी ! सुनो ! तुम्हारे सामने मैं कहनेकेलिए समर्थ तो नहीं हूं फिर भी तुमने आग्रह किया है। तुम्हारी आज्ञाको उल्लंघन करना मेरा काम नहीं है। इसलिये मेरे दिलमें जो बात आई है तुम्हें कहूंगा।

बहिन ! तुम जितनी भी बात तुम्हारे पतिके बारेमें कह चुकी हो वह बिलकुल सत्य है। उसमें जरा भी असत्य नहीं है। तीन छत्राधिपति भगवान आदिनाथके ज्येष्ठ पुत्रकी बराबरी करनेवाले इन दश दिशाओंमें कौन है ?

राजाओंमें उनके बराबरी करनेवाले राजा लोकमें कोई नहीं है और तुम राणियोंकी बराबरी करने वाली स्त्रियां भी लोकमें नहीं है। इतना ही नहीं तुम्हारे साथ बातचीत करते रहनेवाले मेरे समान भी कोई नहीं ऐसा कहाजाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

जिसने उस षट्खण्डाधिपतिको जन्म दिया है वह यशस्वती भी जगन्माता है। एवं तुमलोग उनकी राणियां होकर उत्पन्न हुई हैं इसके लिये भी पूर्वमें अतुल पुण्यका संपादन किया होगा।

उत्तम सतियोंके साथ उत्तम पुरुषोंका मिलाप उत्तम सुवर्ण के आभारणके बीचमें उत्तम रत्नकी जडावके समान मालुम होता है।

बहिन् ! जवान स्त्री व जवान पुरुषका मिलाप सचमुचमें आम्रवृक्षपर लगी हुई मल्लिकाके समान है।

सुंदर भरतके साथ सुंदरी आपलोगोंका मिलाप अशोक वृक्षके साथ लगी हुई जाईकी लताके समान मालुम होता है।

भरत चंदनके समान सुगंध है आपलोग कपूरके समान हैं।

चंदन वृक्षपर लपटी हुई सुगन्धी लताके समान आंपकी दशा है। पुरुषोमें भरत रत्न है। स्त्रियोमें आप लोग रत्न है। इसलिये आप लोगों की जोडी रत्न रत्न को मिलाकर बनाये हुए रत्न हारके समान मालुम होजाती है।

लोकमें अनेक प्रकारके अनमेलपना पाये जाते हैं। यदि पति धार्मिक हो तो पत्नी नही रहती है। पत्नि धार्मिक हो तो पति नही, पति बुद्धिमान् हो तो पत्नी मूर्खा, पत्नी बुद्धिमती हो तो पति बुद्धू, पति वीर हो तो पत्नी डरपोक, पत्नी शूर हो तो पति कायर, पति व्यवहार कुशल हो तो पत्नी भोली, पत्नी कार्य चतुर हो तो पति डब्बू इस प्रकारकी विलक्षणतासे संसार भरा पडा है। परतु बहिन्! पतिपत्नियों की समानतामे तुम सरीखे प्रसशा पानेवाले लोक में कौन हैं? तुम लोगो में पतिके अनुकूल पत्नी, पत्नीके अनुकूल पति के गुण मौजूद है। सब लोग तुम्हारे पुरुषकी भी प्रसंशा करते हैं। और तुमलोगोंकी भी प्रसंशा करते है।

सर्वकलाविशारद पुरुषको पाना यह स्त्रियोंका पूर्वजन्म में किया हुआ पुण्य समझना चाहिये। एवंच उन कलावोंमें प्रवृत्ति करनेकेलिये अनुकूल ऐसी स्त्रीका पाना उस पुरुषका भी महत्पुण्य समझना चाहिये लोकमें स्त्रीपुरुषोंमें परस्पर अनुकूल प्रवृत्ति मिलना कठिन ही नहीं, दुर्लभ है। इसके लिये अनेक जन्मोंका सस्कार भावना, व पुण्यकी आवश्यकता होती है। कुसुमाजी! बहिन्! मुझे यह कहनेमें हर्ष होता है कि तुम लोगोमें व भरतमें जो अनुकूल प्रवृत्ति है वह लोकमे आदर्शरूप है। अन्यत्र इस प्रकारका दृश्य देखनेको नही मिलेगा। बहिन्! तुम लोगोने कितना पुण्य किया है। क्या व्रत पालन किया है। किस प्रकारकी शुभ भावना की है? कह सकती है?

बहिन्! विद्वान् पति व विदुषी पत्नीका मिलाप सचमुचमें बहुत मीठा मालूम होता है। जिस प्रकार कि बीन का तार मिल कर मीठा स्वर निकलता हो। उनका उस प्रकारका योग हाथीपर सवार होनेके समान है। मूर्खोंका योग बैलपरकी सवारी है। विशेष क्या? उन लोगोंकी जोडी साक्षात् कामदेव व रति देविकी जोडी है।

बहिन्! समयको जानना चाहिये, योग्यायोग्य विचार जानना चाहिये। अपने पतिके चित्तको देखना चाहिये। समय समय पर नूतन शृंगार करना चाहिये। यह उत्तम सुस्त्रियोंका लक्षण है।

पतिका शृंगार पत्नीको प्रिय, पत्नीका शृंगार पतिको प्रिय, इस प्रकार के आचरण रखना यह स्त्रियोंका धर्म है।

स्त्रियोंको प्रत्येक विषयकी चिंता की आवश्यकता है। गंभीरता । वे प्राप्त करें। उग्रता को दूर करें। बहिन्! धीरता की है। आचार शीलोंका पालन करना उनका परमधर्म उत्तम भोगियोंका यह लक्षण है।

। कामसुखको अत्यासक्त होकर नहीं भोगना चाहिये। अग्निकी तीव्र मंद आदिको जानकर जितने जरूरत हो भोजन करें तो हितकर होता है। नहीं तो अनेक प्र- की संभावना हैं। कामसुखको भी इसी प्रकार हिये। अतिकामसे दुःख होगा। यही उत्तम भोगियोंका

का मद चढे उतना ही उसे भोगकर ठण्डा री आदि तत्रोंसे उस का-

यदि ठीक

तोरमे पचकर शरीरके अवयवोमें पहुंच जाय तो ठीक है। द्रावण स्तंभन आदि प्रयोगकर उन आहारोंको पचानेका उद्योग करना यह सुख नही है दुःख है।

नवयौवन शक्तिसे उत्पन्न काम सुख स्वर्गीय गंगाके जलके समान मीठा रहता है। धातु पौष्टिक अनेक औषधियोंसे उत्पन्न मदमे भोगा हुआ भोग यह लवण समुद्रके जलके समान है।

स्वाभाविक शक्तिसे भोग न कर जो लोग औषधि आदिके बलसे भोगते हैं उनको आखेरको जाकर अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं। इंद्रिय वगैरह नष्ट होते हैं।

बहिन्! यदि किसीको भूख न हो वह भोजन करें तो उसे जिस प्रकार अजीर्ण रोग जरूर होगा उसी प्रकार अपनी शक्ति व इच्छको नही जानकर काम भोग करें तो अनेक रोग जरूर उत्पन्न होंगे।

अपनी विवशताको देखकर जितनेमें वह मद उतर जाय वहा तक भोगने में शोभा है। अत्युत्कट भोग भोगनेपर महान अहित करेगा। उससे प्यास लगेगा, बुद्धि भ्रष्ट होगी। विशेष क्या? वह सुख अपनेको शत्रु बनकर बैठता है।

स्त्रियोंके साथ हास्य विलास विनोद वगैरह करते हुए समय व्यतीत करना चाहिये।

संसर्ग सुख तो कुछ ही समयके लिये होना चाहिए। यदि पच गया तो वह सुख है नहीं तो महा दुःख है।

बहिन्! अपने अंतरंगको जानकर, इच्छाको देखकर व शक्तिको पहिचान कर जो कुशल पति पत्नी भोग करते हैं उनकी जय होती है। उन्हे आनंद मिलता हैं। उनके चेहरेमें तेज रहता है।

इंद्रियोंके वश स्वयं न बनकर उन मदोन्मत्त इंद्रियोंको तावे

में लाकर भोगनेमें बडी शोभा है। वह सरस कविता है। शृङ्गार है।

रतिक्रीडासे थककर बनाई गई रचना कविता आदि वेश्याके शृंगारके समान है। सशक्त मस्तकसे उत्पन्न शब्दमाधुर्य, अर्थ गांभीर्य आदि गुणोंसे युक्त रचना ब्राह्मणीके शृंगारके समान हैं।

बहिन्! पति व पत्नी परस्पर एक दूसरेके चित्तको अपहरण कर भोगें तो उसमें बडी शोभा है। एक तरफा भोग सुख नहीं है वह कंठका खड्ग है ऐसा समझो।

स्त्री पुरुष अंतरंग हृदयसे मिले तो मधुर फलको चखनेका आनंद आता है। नहीं तो कडुवा रस आता है।

कुसुमाजी! एक दूसरेके गुणपर मुग्ध होकर जो पतिपत्नी भोग विलासमें रहते हैं उन लोगोंका सुख मार्ग इतना सरल रहता है जैसे कि जलके अंदर रहने वाले बडे भारी पत्थरको उठानेमें कोई कठिनता नहीं होती। परंतु केवल धन, कनक आदिके कारणसे उत्पन्न प्रेम है उसमें कोई शोभा नही है। जमीनपर पडे हुए पत्थरको उठानेके समान उनका मार्ग भी कठिन है।

कुसुमाजी बहिन्! तुम्हारे पति व तुमलोगोंका रूप समान है। उमर भी योग्य है गुणगण भी समान है। इन सब बातोंकी जोडी तुम लोगोंके अंदर प्राप्त हो गई है। इसीलिये तुम पतिपत्नियोमें इतना प्रेम है। दांपत्य जीवनकी सर्व सामग्री अविकल रूपसे तुमलोगोंको प्राप्त है।

सम्राटने रूपसे तुमलोगोंको जीत लिया। सरस कलालापोंसे तुम लोगोंके मनको प्रसन्न किया, वह राजाके रूपमें कामदेव है। इसलिये उसने तुम लोगोंका सर्वापहरण किया है।

बहिन्! मुझे मालुम होता है कि सभी राणियोमें तुमपर सम्राट्को अधिक प्रेम होगा या तुम्हारा प्रेम उसपर अधिक होगा।

अन्यथा इस प्रकार चक्रवर्ति की सुंदरता या अग प्रत्यंगोंके वर्णन करनेकी चतुरता तुममे कहासे आसकती है ।

जिस जगहपर मन प्रसन्न होजाता है वहीं कार्य की भी प्रसन्नता जाहिर होती है । और फिर तदनुकूल वचनकी प्रवृत्ति होजाती है । इसलिये हे सत्सतिकुलमणि ! तुमने अपने पसंदके पतिकी प्रशंसा की यह उचित हुआ ।

तुम क्या वोली । तुम्हारे पतिका प्रेम ही ऐसा है वह तुमसे बुलाये विना नही रहसकता । ऐसा कौन स्त्री होगी जो पतिसे प्राप्त आनद रसका वर्णन नही करेगी? अपने पतिके कृत्यपर किसे हर्ष न होगा ?

कुसुमाजी ! लोकमें कष्ट पुरुषोंकी कष्ट स्त्रियों, निष्ठुर पुरुषों की निष्ठुर स्त्रियोंके बारेमें कितने ही वार सुना है वैसे उदाहरण रात्रिंदिन हमारे सामने आते रहते हैं । परंतु शिष्ट पुरुषोंकी शिष्ट स्त्रियोंका वृत्त सुनने को ही दुर्लभ है । वैसे स्त्री पुरुष हमें देखनेको ही नहीं मिलते ।

बहिन् ! तुह्मारे रग रगमें भरतेश का प्रेम भरा हुआ है । इसलिये तुह्मारा हृदय उसकेलिये समर्पित है । यह सच है कि नहीं यह तुमसे मैं पूछना नहीं चाहता, तुह्मारे वचन ही इस बातको स्पष्ट कह रहे थे ।

अपने पतिके कृत्यके प्रति सतुष्ट होनेवाली शीलवती स्त्रियोंको लोकमें कौन वर्णन नहीं करेंगे । बहिन ! मैं तुह्मारे शपथ पूर्वक कहता हूं कि मुझे सज्जन सतियोंके चरित्रमें बडा आनंद आता है । उसको सुनकर मेरा हृदय भर जाता है ।

इस प्रकार वह अमृत वाचक तोता कुसुमाजीको दांपत्य जीवनके रहस्य कहने लगा ।

कुसुमाजी बैठी२ उस तोतेके रहस्य पूर्ण वचन व वाक्चातुर्यको

सुन रही थी। अपने मनमे ही विचार करने लगी कि इसने जो भी बात कहीं नवीन व रहस्य पूर्ण हैं। इससे मालुम होता है कि यह तोता नही है। पक्षियोंको जितना सिखावें उतना ही बोल सकती है। परंतु यह तो मुझे ही सिखाने लगगया है। और कलाको सिखा रहा है। यह तोता कभी नही है। या तो कोई व्यंतर इस शरीरपर प्रविष्ट होकर बोल रहा है या कोई देव। बाकी तोतेका चातुर्य यह नहीं।

हा! इसमें पुरुषके शब्द नहीं है। स्त्री शब्दके समान है उसमें भी जवान स्त्रीके यह शब्द है। अब यह युवती कौन है इस बातका पता लगाना चाहिये ऐसा विचार कर कहने लगी कि पक्षी! तुह्मारे वचन सबके सब सत्य हैं परंतु तुह्मारा वेष सत्य मालुम नहीं होता है। इसलिये तुम अपने छोटे वेषको छोडकर बडे वेष को धारण कर मेरे साथ बोलो।

बहिन्! आपने मुझसे छोटे वेषको छोडकर बडे वेष धारण करनेके लिए कहा है। परंतु यह मेरा वेष सत्य ही है। मेरा छोटा वेष तो बचपनमें ही चला गया है।

देखो! मेरे साथ इस प्रकार चालाकी करना ठीक नहीं है। तुम मेरी प्रिय सखी है। इसलिए अपने निजरूपको दिखलावो - इस प्रकार कुसुमाजीने जोर देकर कहा।

इतनेमें उस तोतेके नीचे अनेक रत्नाभरणोंसे भूषित एक जवान स्त्री उठकर खडी हो गई। अपने छुपे हुवे रूपको अपने बुद्धिचातुर्यसे जाननेवाली राणीके कौशलपर वह देवी हंसने लगी.

सुंदरी! तुम कौन है? और यहा क्यों आई? बोलो। राणी ने पूछा।

देवी! मैं एक व्यंतर कन्या हूं, इधर उधर पर्वत जंगल वगैरह में रहती हूं। लीला विनोदसे आकाश मार्गसे जारही थी।

तब बहिन ! तुम इस तोतेके साथ जो बोल रही थी उन मन मोहक वचनोंसे आकृष्ट होकर यहा सुननेकेलिये आई हू । अलग खडी रहकर सुनती तो शायद तुम अपने मनकी बात मुझ से नहीं कहती इसलिये इस पक्षीके शरीरमे प्रविष्ट होकर मैं तुमसे बोलरही थी । तुम मेरे रहस्य को समझगई । बहुत अच्छा हुआ ! सचमुचमें तुम विवेकी भरतकी अर्धांगिनी है ।

बहिन् ! रूप, यौवन, संपत्ति व बुद्धिचातुर्य आदिको प्राप्त करना कठिन नहीं है । परंतु इस प्रकारकी पतिभक्तिको पाना अत्यत कठिन है । पुराणपुरुप सम्राटकी अर्धांगिनि होकर तुम ही लोगोनें उसे प्राप्त किया है। दूसरोंको वह पतिभक्ति कहासे मिलेगी ?

वह भरत जिनेंद्र भगवतके पुत्र है । तुमलोग जिनेंद्र भगवंत के पुत्रवधू हैं। इसलिये तुमलोगोंका आचरण पुण्यमय है । यह सब किसी के लिये नसीब कैसे होसकता है ?

वह सम्राट मेरे लिये और कोई नहीं । वह लोकमें परनारी सहोदरके नामसे प्रसिद्ध है । इसलिये मुझे भी वह सहोदर भाई हैं । अब मैं उसे भाई के नामसे ही कहूगी । देवी ! अभीतक तोतेके शरीरमे प्रविष्ट होकर मैं तुम्हे बहिन् के नामसे सम्बोधन कर रही थी परन्तु अब मैं तुम्हे बहिन न कहकर भावीके नामसे कहूगी ।

भावी ! मेरे भाईके प्रति तुमने जो असली प्रेम रखा है उसे देखकर मुझे चित्तमे अत्यंत हर्ष होता है । इसके उपलक्ष्यमें मैं तुम्हारी सेवामें क्या भेंट समर्पण करूं समझमे नहीं आता ।

हमारे भाई नवनिधिके स्वामी हैं । उसने तुम्हारे लिये इच्छित रत्नमय आभरणोंको दे ही रखा है । ऐसी अवस्थामे मैं तुम्हारे लिये क्या दूं ? यदि दूं तो भी तुम लेनेवाली नही हैं इस बातको मैं जानती हूं । अब तुम्हारे लिये वस्त्राभूषणोंको देनेकी

बात जाने दो। तुम्हारे लिये जिससमय मेरी जरूरत हो स्मरण कर लेना मैं तुम्हारी सेवामें उपस्थित हो जाऊंगी। इस प्रकार कहकर वह व्यन्तरकन्या अदृश्य होगई।

कुसुमाजी हका बका होकर इधर उधर देखने लगी। परंतु व्यन्तर कन्या वहा नहीं।

वह बीती हुई घटनाको मनमें विचार करती २ जरा हसने लगी। व 'जिनसिद्ध' ऐसा उच्चारणकर आश्चर्य करने लगी कि मैं कोई स्वप्न तो नहीं देख रही हू ?

इतनेमें वहा बहुतसी स्त्रिया कुसुमाजीके साथ खेलनेके लिये आई। कुसुमाजी बीती हुई आश्चर्य घटनाओंको किसीसे नहीं बोलती हुई सदाकी भांति खेलमें लगगई।

इस प्रकार कुसुमाजीके चरित्रको सुमनाजीने रचकर तैयार किया और अमराजीने उसे लिखा। यह सामान्य नहीं है। चक्रवर्तीकी पुण्यसंपत्तिका यह वैभव है।

इसमें कोई प्रकार दोष हो तो आप श्रीमान सशोधन कर देवें।

भरतने कहा कि इसमें कोई दोष नहीं है। यह काव्य जिन शरण होकर सर्वकाल इस भूमण्डलको सुशोभित करें।

इस प्रकार उपर्युक्त चरित्रको वाचकर उस सुन्दरीने ग्रंथ को बाध दिया।

सम्राट भी चरित्रको सुनकर मनमनमें ही आनंदित हो रहे थे। विचार करने लगे कि कुसुमाजी बहुत चतुर है किस कुशलतासे वह तोतेके साथ बात चीत कर रही थी ? उसको सुनकर कविता बद्ध रचना करनेवाली ये राणिया भी कम चतुर नहीं हैं।

तोतेके साथ बातचीत करती हुई उसने स्वरसे ही तोतेके शरीरमें प्रविष्ट व्यंतर कन्याको पहिचान ली यह आश्चर्य की बात है

अच्छा हुआ कि तोतेके शरीरमें व्यंतर कन्या थी, इस निश्चयसे ही कुसुमाजी वहां बैठी रही। यदि उसके शरीरमें कदाचित् पुरुष होता तो यह कभी वहां नहीं बैठ सकती थी। पहिलेसे घबराकर इधर उधर भाग जाती। यह एक खैरियत हुई।

इस प्रकार भरत अपने मनमें अनेक प्रकारके विचारोंमें प्रसन्न होकर जिसने काव्यको वाचा उसे अनेक वस्त्र आभूषणोंसे सत्कार किया। एवं इस काव्यकी रचयित्री दोनों राणियों व कुसुमाजीको फिर अच्छी तरह सन्मान करूंगा यह विचारकर वहांसे महलकी ओर जानेके लिये उठे। इतनेमें वह दरबार जय-जयकार शब्दसे गूंज उठा।

पाठकोंको आश्चर्य होगा कि सम्राट भरतकी इस प्रकार प्रशंसा क्यों होती थी? उसको ऐसी अद्भुत विवेक जागृति क्यों हुई थी? इसका सीधा साधा उत्तर यह है कि भरत महाराज सदा अपनी आत्मासे गुणों की प्राप्तिके लिये इस प्रकार प्रार्थना करते थे कि हे आत्मन्! तुम बोलनेमें चतुर हो, चलनेमें चतुर हो, व्यक्त होनेमें व अव्यय होनेमें चतुर हो, इसलिये सुचतुर हो। लोकमें सबसे अधिक तुम विवेकी हो। इसलिये हे विवेकियोंके स्वामी! तुम सदा मुझपर कृपाकर मेरे हृदयमें रहो जिससे कि मैं भी तुम्हारे समान ही लौकिक पारमार्थिक मार्गमें कुशल बनजाऊं।

इसीका यह फल है।

इति शुकसंल्लाप संधि.



अथ उपहार संधि

सम्राट भरत उस काव्यको रचनाके संबन्ध में अपने हृदयमें खुश हुए। साथ ही प्रकटमें बोले कि इसमें कुछ विचारणीय विषय है। यह सुमनाजी राणीकी कविता नहीं है। यह अमराजी-की ही रचना है। इसको सुनकर दोनों राणिया एक दूसरेके मुख-को देखती हुई हसने लगी। सुमनाजी कहने लगी कि बहिन्! मैंने उसी समय कहा था कि यह भार मेरे ऊपर नहीं लादना। देख लिया! अब वह रहस्य बाहर पड ही गया है।

नाथ! आप जो कुछ फरमा रहे हैं वह बिलकुल ठीक है। बहिनने मुझसे इस काव्यकी रचनाके लिये कहा था, परन्तु मैंने कहा कि इसकी कविता करना कठिन काम है इसलिये मुझसे यह नहीं हो सकेगा तब अमराजीने इसकी रचनाकी। मैंने केवल उसको लिखा है और कोई बात नहीं।

मैंने वहींपर बहिन से कही थी कि इस बातको छिपाना नही। पतिके सामने जिसने रचना की हो उसी के नाम प्रकट करना। परन्तु बहिनने मेरी बात सुनी नही। मैं इस बातको जानती ही थी कि हमारे पति देवके सामने कोई भी बातको छिपावें तो भी वह छिप नही सकती है, वे तो हर एक के चित्तके स्वभावको जानते ही हैं। इसलिये बहिन् से व्यर्थ विवाद करने से क्या प्रयोजन? ऐसा मनमें विचार कर लिखती गई। परन्तु स्वामिन्! विवेकियोंको लोकमें कौन ठग सकता है। इस बातकी सत्यता यहीं पर प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हुई। अब अच्छा हुआ! मेरे ऊपर जो झूठा भार लदा हुआ था उसे आपने उतार डाला। इस प्रकार सुमनाजी बहुत संतोषके साथ बोलने लगी।

तब सम्राट् कहने लगे कि पहिले आधे भागमें सुमनाजी की रचना है। उत्तरार्ध भागमें तुम्हारी रचना है। तब अमराजी बहुत खुशीके साथ बोली कि यह बिलकुल ठीक बात है।

सुमनाजी बोली कि बहिन्! मैंने पहिले से कहा था कि तुम ही इसकी पूर्ण रचना करो, उसे न सुनकर तुम चुपचाप बैठ गई फिर मैंने थोडीसी रचना कर उपाय से आगेके काव्यको रचना करनेके लिये तुम्हे प्रवृत्त किया।

स्वामिन्! आदि मंगल तो मेरी ही रचना है। परन्तु मध्य मंगल व अंत्य मंगल यह सब कुछ अमराजीकी रचना है। आप इन सब बातोंका भेद स्पष्ट रूपसे समझ गये। क्या भगवान् आदिनाथने तो आकर आपको नही कहा न? बहिन्! देखो तो सही! हमारे पतिराजको हम लोग कैसे जीत सकती हैं? हमारे अन्तरङ्गको वे किस खूबीके साथ जानते हैं इस प्रकार कहती हुई सभी स्त्रिया परस्पर हर्ष मनाने लगी।

सम्राट् बोलने लगे कि आपलोगोंका काव्य सुनकर मुझे हर्ष हुआ। तुम लोगोंको कविता करनेका अभ्यास भी अच्छा है। मैं इस काव्यकी रचनासे प्रसन्न होगया हूं। तुम लोगोंको इस प्रसन्नतासे इस समय मैं क्या दू। आपलोग जो चाहे पदार्थको मागना। मैं उसे देनेकी आज्ञा करूंगा।

स्वामिन्! आपको प्रसन्नकर आपसे कोई धन दौलतके इनामको पानेकी इच्छासे हम लोगोंने इसकी रचना नहीं की है। हम लोगोंके मनमें कोई लोभ नहीं है। आपके मनमें जो खुशी हुई है वह आपके ही खजानेमें जमा रहे। ऐसा उन दोनों राणियो ने कहा।

" अच्छी बात! इस प्रसन्नताके प्रतिफलको आप लोग जब चाहेगी तब हम देंगे। अभी मैंने जिन आभूषणों को पहन रखे हैं

उनमें से तुम लोगोंको मैं दूंगा " इस प्रकार सम्राट् बोले ।

" स्वामिन् ! हमें अभी आपकी दयासे कोई आभरणों की कमी नही है । इतना ही नही आवश्यकतासे अधिक आभरण हमारे पास हैं । इसलिये आभरण देनेकी घोषणा भी आपके ही खजानेमें जमा रहे । हमें अभी उसकी आवश्यकता नही है । " इस प्रकार बहुत संतोषके साथ बोली ।

सम्राट् बोले कि पहिलेके यदि आभरण हों तो क्या हुआ ? अभी मैं इस प्रसन्नताके प्रसंगमें मेरे आभरणमेंसे तुमको देना चाहता हूं । आवो ! लेवो ! इस प्रकार कहकर उनको अपने पासमें बुलाने लगे ।

हा ! हम लोग तो कितने ही बार मना करती हैं तो भी पति देव मानते ही नहीं । हम क्या करें । ऐसा कहकर सभी राणियोंको इशारा करती हुई, उनको भी साथमे लेकर आई व भरतके चरणमें साष्टाग नमस्कार करने लगी, उस समय ठीक उस प्रकारका दृश्य दृष्टिगोचर हुआ जैसे कि एक बडे भारी आंधीसे किसी वृक्षसे कोई लता जाकर जमीन पर पडती हो ।

यह क्या हुआ ? मैने तो इनाम देनेके लिये इन दोनों राणियोंको बुलाया था। परंतु ये सबकी सब आकार क्यों साष्टांग नमस्कार कर रही हैं ? इस प्रकार विचार करते हुए पण्डिताके मुखकी ओर देखने लगे । पण्डिता सम्राटके मनकी बातको समझकर बोलने लगी ।

स्वामिन् ! आपने इन राणियोंसे जो अपने पहने हुए आभरणोंको देनेकी बात कही वह बात उन लोगोंको पसंद नही आई । उत्तम सतियोंका यह लक्षण है कि वह कभी अपने पतिके अलंकारको बिगाडकर अपने शृङ्गार करना नहीं चाहेगी । वे अच्छी तरह जानती है कि तुम्हारा जो शृङ्गार वही उन लोगोंका भी

आखका शृङ्गार है। ऐसी अवस्थामें तुम्हारें आभरणोंको निकल-वाकर अपना शृङ्गार वे करना नहीं चाहती हैं । उनके हृदयमें सच्ची पतिभक्ति है । इसलिये ऐसा करनेकी इच्छा न होनेसे सबकी सब आकर आपके चरणो में नमस्कार कर रही हैं। यही उन लोगोंका अभिप्राय है और कुछ नही। उन लोगोने कई तरहसे नकाररूपसे अपना अभिप्राय प्रकट किया फिर भी आपने माना नही । आग्रह ही किया। ऐसी अवस्थामें पतिराजको कोई उत्तर देना हमारा धर्म नहीं ऐसा समझकर मौनसे आकर आपको साष्टाग प्रणाम कर रही हैं।

तब सम्राट कहने लगे कि:—

अच्छी बात ! फिर हमने तो दोनों राणियोंको आभरण देने के लिये बुलाया था। ये सबकी सब आकर क्यों नमस्कार कर रही हैं। इसका भी तो कुछ कारण होना चाहिये।

स्वामिन् ! क्या आप इस बातको नहीं जानते हैं ? आप हंसी करते हैं। मालुम होते भी नहीं के समान करते हैं। उसको छिपा रहे हैं। मैं जानती हूं कि आप बडे चतुर हैं । आप इस बातको जानते हुए भी अनजान बनकर मुझसे पूछ रहे हैं। क्या आप यह नहीं जानते हैं कि आपकी राणियोंमें परस्परमें कोई भेद भाव नहीं है। एक दूसरे पर आई हुई आपत्तियोंको वे सब की सब अपने ही ऊपर आई हुई समझती हैं। उन लोगोंका स्नेह ही इस प्रकार है।

- स्वामिन् ! देवियोंको आपके चरणमें पडकर बहुत देरी हो चुकी है अब विशेष विनोद की जरूरत नही है। उनको आप उठने के लिये आज्ञा दी जियेगा। तब सम्राट् हंसकर बोले कि आप लोग बहुत थक गई होंगी। अब आप लोग उठकर खडी हो जावो। इस बातको सुनकर सब राणिया उठकर खडी होगई।

तब भरतजी कहने लगे कि अच्छीबात ! यदि तुम लोगोंको मेरे पहने हुए आभरण पसंद नहीं हों तो और नवीन आभरणको दूंगा। इस बातके लिये आप लोगोंको इतना संकोच क्यों ? स्पष्ट क्यों नहीं कहती है । तब वे स्त्रियां स्पष्ट बोली कि आजके दिन आप कुछ भी कहें हम लेनेको तैयार नहीं हैं। हमारा यह व्रत है ।

इस प्रकार दृढतासे बोलनेपर भरत बहुत पशोपेशमें पड गये. अब क्या करना ? इन लोगोंके ऊपर मुझे आनंद हुआ । उसके फल रूपमें मैं इनको कुछ देना चाहता हूं। परंतु ये लेनेमे राजी नहीं हैं । इन लोगोंको कुछ न कुछ दिये विना मेरा उमडता हुआ आनंद रुक नहीं सकता । अब इसकेलिये क्या उपाय है ? ठीक है। ये लोग सोना (सुवर्ण) नही चाहती हैं तो नहीं सही । परतु इनको एक दफे आलिंगन तो देदेना चाहिये। परंतु ये लोग मेरे पास में आनेमें भी शर्मती हैं। ऐसी अवस्थामे क्या करना ? इस प्रकार विचार करते हुए उपायके साथ उनको पासमे बुलाने का तंत्र किया।

अरी सुमना ! अमरा ! तुम दोनों इधर आवो । तुम लोगोंके काव्यको सुनकर कुसुमाजी को चित्तविभ्रम होरहा है । उसके मनकी वात बाहर पडनेका उसको परम दुःख है । इस लिये उसके मनको शात करनेका जो उपाय है उसे तुम लोगोंके कानमें गुप्त रूपसे मैं कहना चाहता हूं । इस लिये मेरे पास आवो ! ऐसा कह कर उनको पासमें बुला लिये । दोनों राणियां हसती २ पासमें आई, आनेके बाद दोनोंको अपने दाहिने व बांये तरफ खडी कर पहिले उन दोनोंके कानमें कुछ कहनेके समान उनके कानकी ओर मुख लेजाकर बादमें दोनोंको जोरसे आलिंगन दिया। उस समय ऐसा मालुम हो रहा कि कल्प वृक्षकी दोनों ओरसे दो फलपलतायें ही हों। या कामदेव विनोद

विहारमें दोनों ओरसे पांचालिकावोंको आलिंगन जिस प्रकार देता हो वैसा ही मालुम होरहा था ।

दोनों राणियां घवराई। इधर उधरसे वचनेका प्रयत्न किया, भरतने भी अपने मनकी वात पूर्ण होनेके वाद उनको छोड दिया।

इतनेमें सवकी सव राणिया हंसगई । भरतजी भी जरा हंसे । परन्तु कुसुमाजी सवसे ज्यादा हंसी और कहने लगी कि अच्छा हुआ ! ऐसा ही होना चाहिये मैं जो कुछ भी अपनी महल में गुप्त रूपसे वोली थी उसे तुम लोगोंने आकर यहापर पति देवको कह दिया । क्या तुम लोगोंको भी देखनेवाला कोई दैव नही है? उसका फल प्रत्यक्ष रूपसे तुम लोगोने देख लिया। लोकमें यह वात प्रसिद्ध है कि किसी के गुप्त विपय को कोई प्रकट कर दूसरों के सामने हंसी करते हैं, उन लोगोंके सम्वन्धमें दैव स्वयं जागृत रहता है। उनको लोकमें किसी न किसी प्रकार वह हसीका भाजन वना देता है । इस वातका अनुभव वहिनो ! तुम लोगोंनें प्रत्यक्ष रूपसे किया।

अब कुसुमाजी बहुत शर्मिंदा न हो रही थी । पहिले के समान अब खंभेके पीछे नही जारही है। हा ! पतिके सामने कुछ लज्जासे युक्त होकर उन दोनों राणियों के प्रति जोर २ से कहने लगी कि मेरी हंसी उडाने के लिये तुम लोगोने प्रयत्न किया । परतु दैवको यह नामजूर होनेसे तुम ही लोगोंकी हसी उडगई । सम्राट् भी अभीतक मुख नीचेकर बैठी हुई कुसुमाजी को फूल फूलकर बोलती हुई देखकर खुष हुए ।

अमराजी व सुमनाजी कुछ आगे आई। और कुछ नीचे मुखकर कहने लगी कि स्वामिन् ! सब लोगोंके सामने इस प्रकार का व्यवहार करना आपको उचित है क्या ? आप ही विचार करें।

तब भरतजी बोले कि इनमें दूसरे कौन हैं? ये सबकी सब राणियां मेरी ही तो हैं ? और सबकी सब तुह्मारी बहिनें हैं । पुरुषोंमें मैं अकेला ही हूं । ऐसी अवस्थामें तुम लोगोंको लज्जा क्यों होती है? मुझे तुम लोगोंकी काव्य रचनामें हर्ष हुआ तब मैंने आप लोगोंको आलिंगन दिया, इसमें क्या दोष है । मेरी स्त्रियोंको मैं आलिंगन दूं इसमें अनुचित क्या है ?

स्वामिन ! उस विषयपर हमारा कुछ भी कहना नहीं है । परंतु कुसुमाजीके संबंधमे हम कुछ उपाय कहेंगे ऐसा कहकर आपने चालाकीसे व झूठे तंत्रसे हमें क्यों पासमे बुलाया । इस प्रकार वे कहने लगी ।

इस संबंधमे मेरा तंत्र झूंठ क्यों हुआ । इस उपायसे कुसुमाजी हंसी नहीं क्या ? यही तो मैं चाहता था । इसीके लिये उपाय कहना था सो करके दिखाया इसमे क्या बिगडा ? विचार तो करो । इस प्रकार उन्हे सम्राटने उत्तर दिया ।

तब दोनोंकी दोनों परस्पर कहने लगी कि बहिन् ! अपन लोग पतिदेवको जीत नही सकती हैं । ऐसी अवस्थामें उनसे अधिक बातपर व्यर्थ अपनी फजीती कर लेना है । इसलिये यहांसे अपनी बहिनोंके पास जाना अच्छा है ऐसा कहकर उधर जाने लगी ।

तब कुसुमाजीको सामने देखकर कहने लगी कि बहिन् ! तुम जो कुछ बोली वह सत्य हुआ । हम दोनोंने तुम्हारी स्तुति की उसका फल हम लोगोंको इस प्रकार मिला । क्या विचित्रता है ?

ठीक बात है । बहिनो ! तुम लोगोने मेरी झूठीं प्रशंसा क्यों की? मेरे अदर ऐसे कौनसे गुण हैं । विशेष गुणी लोग हीन गुणियोंकी प्रससा कभी न करें । अन्यथा इसका परिणाम ऐसा ही होता है । कदाचित् मैं छोटी हूं । आप लोगों की प्रशंसा करूं तो कोई हर्ज नही । ऐसी अवस्थामें तुम लोग मेरी प्रसंशा करें यह

अच्छी बात है क्या ? छोटी बडी में कोई भेद ही नहीं क्या ? बहिन ! क्या आप लोग इसे नहीं जानती हैं ?

तब वे दोनों कहने लगी कि बहिन ! तुम इतना रुष्ट क्यों होती हैं ? हम लोगोंने विनोद के लिये तुम्हारी प्रशंसा की है। और कोई बात नहीं।

तब तो मैं भी विनोदके लिये ही रुष्ट होगई हूं, और कोई बात नहीं। कुसुमाजी ने कहा।

भरतजी इन बहिनोंके विनोद व्यवहारको देखकर अंदर ही अंदर हँस रहे थे।

इतनेमें कुछ रानियां कहने लगी कि बहिनों! इसमें क्या बिगडा? आप लोग इस प्रकार चर्चा क्यों कर रही हैं? विशेष वाचाल बनना भी स्त्रियोंका धर्म नहीं है। सूईके साथ रहनेवाले डोरेके समान अपने पतिकी आज्ञा पालन करती हुई रहना यह कुलस्त्रियोंका धर्म है। स्वामीके मनको जो बात पसंद है वही बात हम लोगोंकेलिये भी पसंद होनी चाहिये। हमारे पतिके समान वैभव अन्यत्र अपन लोगोंको कहा देखनेको मिलेगा ? कभी भी हमारे पति देवने सभामें मुंह खोलकर अपनी प्रसन्नता जाहिर नहीं की। आज उन्होने जो प्रसन्नता को प्रकट किया है यह बडे भाग्यकी बात है। इस प्रकार सब स्त्रियोंने हर्ष मनाया।

विनोद घटना हुई। नवीन काव्यको अपन लोगोंने सुनलिया पतिदेवको भी हर्ष हुआ। अब चलो ! अपन सब चलकर स्वामी की सेवामें भेंट रखकर आनंदसे उनको नमस्कार करें। इस प्रकार कहकर सब स्त्रियां सम्राटके पासमें गई।

तदनंतर हर एक स्त्रीने एक २ आभरणको भरतके चरणमें भेंट रखकर बहुभक्तिसे भरतको नमस्कार किया। बातों ही बातमें वहांपर आभरणका पहाड खडा होगया।

सम्राट भी राणियोंकी विचित्र भक्तिको देखकर प्रसन्न हुए और पण्डितासे कहने लगे कि पण्डिता ! देखो तो सही ! अमराजी, सुमनाजी व कुसुमाजी का विवाद किधर चलागया। अब तो वे लोग प्रसन्न दिखती हैं। अभीतक वे तीनों आपसमे झगडा कर रही थी। अब शांत हैं, इसका कारण क्या है ?

स्वामिन् ! ठीक है। क्या सुमनाजी व कुसुमाजीमे कभी मनोवैषम्य हो सकता है ?

आजी का अर्थ युद्ध है। खड्गके युद्धमें अपाय हो सकता है। फूल (कुसुम–सुमन) के युद्ध मे वह क्यों संभव हो सकता है ? दूसरी बात असुरों के युद्धमे कठोरता भले ही हो परंतु देवोंके युद्धमें [अमराजी] वह कठोरता क्यों हो सकती है ?

पण्डिता के इस चातुर्यवचनको सुनकर सम्राट अत्यंत प्रसन्न हुए। कहने लगे कि तुमने बहुत अच्छा कहा। लो ! तुम्हारे लिये यह सोनेके आभरण भेंटमें देता हूं ऐसा कहकर पण्डिताको इनाम दिया।

स्वामिन् ! इन गुणनिधिस्वरूप नारीमणियों के बीचमे चिरकालतक रहकर आप भोग साम्राज्यका पालन करे इस प्रकार पण्डिता कहकर अलग जाकर खडी होगई।

फिर न मालुम भरतजीके मनमें क्या आया हो पण्डिताको बुलाकर कहने लगे कि पण्डिता ! हम आज हमारे महल में भोजन करें यह ठीक है या हमारी किसी एक राणीके महलमें जाकर भोजन करें तो ठीक होगा ? बोलो तो सही।

पण्डिता समझगई कि सम्राट् कुसुमाजी के प्रति प्रसन्न होगये हैं। उसके महलमें जाकर भोजन करनेकी इनकी इच्छा है। कहने लगी कि स्वामिन् ! किसी एक राणीके महल में जाकर भोजन करना यह आपके लिये श्रेयस्कर है।

तो फिर कहो किस राणीके महलमें जाऊं ?

पण्डिता—स्वामिन ! इसका उत्तर जरा विचार करके दूंगी ऐसा कहकर मौनसे खडी होगई। फिर आख मीचकर जरा विचार करके कहने लगी कि स्वामिन ! आज कुसुमाजी राणीके महलमें भोजनको जाना यह उत्तम होगा। तब सम्राट् ने प्रश्न किया कि यह क्यों ?

तब पंडिता बोली कि स्वामिन ! नवीन काव्यकी रचना के उपलक्ष्य मे आपने दो राणियोंका सन्मान इस दरबारमें ही किया परतु तीसरी राणीका सन्मान नहीं किया है। वस्तुत· देखा जाय तो यह कुसुमाजी ही उस काव्य की जननी है। इसका सन्मान अवश्य होना चाहिये। इसलिये आप उसके घरमें जाकर भोजन करें यही उसका सन्मान है।

पडिता की सूझको देखकर सब राणिया खुश होगई। कहने लगी कि ठीक है ! ठीक है ! ऐसा ही होना चाहिये।

पण्डिताने कुसुमाजीसे भी कहा कि बहिन आज तुम्हारे महलमें पतिदेवका भोजन होगा। जावो ! भोजनकी सब तैयारी करो।

इस प्रकार कहनेपर कुसुमाजी और भी अधिक लज्जित हुई। तब अन्य स्त्रियोंने मालुम किया कि यह हमारे सामने लज्जित हो रही है। इस लिये इसकी लज्जा दूर करदेनी चाहिये ऐसा विचारकर वे चतुर राणिया कहने लगी कि बहिन् ! जावो ! जावो ! आज पतिदेवको भोजन करानेका भाग्य तुम्हे मिला है। यह तुमको मिला हुआ भाग्य हम सबको मिला है ऐसा हम समझती है। जावो सब तैयारी करो ऐसा कहकर सबने उसे भेज दिया।

कुसुमाजीके महलमें आज भरतका भोजन होगा। सचमुचमें वह भाग्यवती है यही बात नहीं वह गुणवती भी है। व्यतरकन्या

ने जिमकी मुक्तकंठसे प्रसंशा की, जिसने अपने मनोगत विचारसे भरत चक्रवर्तिके हृदयको भी हिला दिया ऐसी कुसुमाजी सचमुच में प्रसंशनीय है। इसलिये भरतके चित्तने उसके महलमें भोजन करनेकी स्वीकृति देदी।

अब सभा बरखास्त हुई। सभी स्त्रियां एक २ कर भरतको नमस्कार कर वहांसे जानेलगी। वेत्रधारिणी दासियां भी सबकी प्रशंसा करती हुई उनको भेजने लगी।

अमराजी कुमनाजीको भी वे दासिया कहने लगी कि माता ! आप लोगोंके मुखमें आज हर्ष रेखा है। इसका क्या कारण है। हा ! हम समझगई। चक्रवर्तीने आज सभामें आप लोगोंका सन्मान किया, इसीका हर्ष होगा।

इस प्रकार कई तरह से विनोद करती हुई वे राणियां सबकी सब वहांसे चलीगई।

सबके जाने के बाद भरतने विचार किया कि अभीतक मेरा समय स्त्रियोंके बीचमें व्यतीत हुआ है, इसलिये आत्म विचारके लिये कुछ भी समय नहीं मिला। विनोदलीला में ही सब काल व्यतीत हुआ। इसलिये थोडी देरके लिये आत्मविचार करना चाहिये।

तदनंतर सर्व प्रकार के शल्योंका त्यागकर भरतजी पल्यंकासनमें आख मीचकर बैठ गये। एवं अन्दर नैर्मल्य योगको धारण करने लगे।

अभीतक स्त्रियोंके बीचमे रहकर उन लोगोंसे विनोद कर रहे थे। वह विचार किधर गया। उसका तो लेश भी उनके हृदय मे अब नही है। दस हजार वर्षोंसे तपश्चर्या करनेवाले मुनिके समान इनके चित्तकी अब निर्मलता है। आश्चर्य की बात है।

हा। वह चक्रवर्ति है। उसकी आज्ञा को कौन उल्लंघन कर सकता है? इंद्रियों को वह आज्ञा देवें कि तुम अब अपना काम करो तो वे इन्द्रिया नौकरों के समान उसके उपयोग मे आते हैं। यदि वह आज्ञा देवे कि जावो! अब हमें तुह्मारी जरूरत नही है। तो वे अपने आप भागते हैं। इसलिये अब भी सम्राटने उन्हे आज्ञा दी होगी। अतएव उनका कुछ उपयोग नही होरहा है।

बालकगण पतंगसे जब खेलते हैं तब उनकी जब इच्छा होती है तब पतंगको खोलते हैं यदि उनको इच्छा न हो तो पतंगके डोरेको लपेटकर रखते हैं इसी प्रकार भरतके चित्तकी परिणति है। विषयाभिलाषामें उनकी इच्छा है तो वे अपने मन व इंद्रियों को उधर जाने देते हैं नहीं तो उसे अपनी इच्छानुसार रोक लेते हैं। कभी अपने इंद्रियोंसे बाहरका काम लेते हैं कभी उन्ही इन्द्रियोंसे आत्मकार्य कराते हैं।

अपनी आखके उपयोगको बाहर लगाकर सेवकोंसे इच्छित कार्यको कराते हैं उन्ही आखों को मीचकर अंदरसे उन इन्द्रिय सेवकोंसे अपनी आत्माकी सेवा कराते हैं।

बाहरसे इन्द्रिय भोगोंको भोग रहे है। अंदरसे अतींद्रिय सुखका अनुभव करते हैं। इसीका नाम जितेंद्रियता है। इंद्रियोंके भोगको भोगते हुए भी अतींद्रिय सुखका अनुभव होना यह सामान्य बात नही है।

लोकमें बहुतसे तपस्वी है। जो अपने शिर मुण्डाते हैं, शरीर को सुखाते है। अनेक प्रकारके कष्टों को सहन करते है परन्तु यह सब बाह्य तप है। भरतने मन के ऊपर आधिपत्य जमा लिया है। शिर मूंडने के बजाय मनको मूण्डने मे ज्यादा महत्व उनकी दृष्टिमें हैं। शरीर को सुखाने के बजाय कर्मको सुखाने मे उनको

ज्यादा मजा आता है। बाह्य द्रव्यों को देखकर किये जानेवाले तपोंकी अपेक्षा अपनेको देखकर करनेवाली तपश्चर्या उन्हे अधिक प्रिय है।

शास्त्रकी गडबडी में पडकर केवल वस्त्रको परिग्रह समझ कर त्याग किया हुआ यह मुनि नहीं है। अपितु वस्त्रके समान ही स्व-शरीर आदि तीन लोक व तीन शरीर यह सब परिग्रह है। ऐसा समझकर वह केवल आत्मा में तृप्त होनेवाला राजयोगी है। परि-ग्रहोंके बीचमें बैठे रहनेपर भी यह परिग्रहोंसे अलग है। शरीरके अंदर रहनेपर भी वह शरीर से भिन्न है सचमुच में उसमें अलौ-किक शक्ति है।

लोककी सर्व स्त्रियोंको छोडकर अपनी स्त्रीमें रत होनेवाला क्या वह जड ब्रह्मचारी है? नहीं! नहीं! केवल आत्मामें रत होनेवाला वह दृढ ब्रह्मचारी है।

विचार करनेपर आत्माका ही नाम ब्रह्म है। अपनी आत्मा रूपी आकाशमें अपने मनका संचार कराना यही तो ब्रह्मचर्य है। और यही मुक्तिका बीज है।

स्त्रियोंका त्याग करना यह व्यवहार ब्रह्मचर्य है। अपने चित्त को आत्मामें लगाना यह निश्चय ब्रह्मचर्य है।

बाहरके सर्व परिग्रहोंको छोडकर अंदरके परिग्रहोंसे भरे हुए लोकमें ढंगाचारी मुनि बहुत होते हैं। क्या भरत वैसा है? नहीं! नहीं! देखा जाय तो भरतमें बाहर सब कुछ है। अंदर कुछ नहीं। अंदरके सब परिग्रहोंको उन्होंने खण्डन किया है। इसलिए बडे आचार्य के समान है।

उसकी कितनी प्रशंसा करें। भोजन कर वह उपवासी है। भोगते हुए वह ब्रह्मचारी है। भूमण्डल उसके हाथमें होनेपर भी वह निष्परिग्रही है। शिरमें बालोंकी वृद्धि होने पर भी

उसके मन मुण्डित है। ऐसे अद्भुत तपस्वी सामान्य नहीं है।

जिन ! जिना ! आश्चर्य की बात है। भरतने आज सीखकर अपने शरीरमें अपने आपको देखा। वहीं पर सिद्ध परमेष्ठियोंका दर्शन किया व आत्म सुखका अनुभव किया।

भरतजीको इस समय सर्वांगमे आत्मा चमकते हुए दिख रहा है। जैसे २ आत्मा दिखता है वैसे २ कर्म ढीला होकर निर्जरा होती है। जैसे २ कर्म निकलकर जारहा है वैसे ही प्रकाश शरीरके अंदर बढरहा है एवं भरतजीको अपूर्व सुखका अनुभव हो रहा है।

कभी पुरुषाकारके रूपमें वह दिखता है। कभी केवल प्रकाश के रूपमें दिखरहा है। कभी बीचमें चंचलता आजाय तो एकदम अंधकार हो जाता है। वह प्रकाश मलिन हो जाता है।

इस प्रकार कभी अंधकार और कभी प्रकाश और कभी मलिन प्रकाश इस प्रकार कई तरहसे वह आत्मस्वरूप भरत को प्रत्यक्ष हो रहा है।

जब बिलकुल प्रकाशित होकर वह रूप दिखता था तब आनंदसे भरतजी को रोमांच भी होता था। अंदरसे सुखकी भी वृद्धि होती थी। भरत जी आनन्द व आश्चर्यमें मग्न होते थे।

अन्दरसे आत्माका प्रकाश स्पष्ट दीख रहा है। उसी प्रकाशमें उन्हे यह भी दिखता है कि बालू रेतके समान कर्म रेणु भी सरक २ कर पड रहे हैं। साथ ही आत्मसुख नदीके बाढके समान बढता ही जा रहा है।

इस प्रकार भरतके चित्त की दशा होरही है। इस बातको सब लोग माननेको तैयार न होंगे। क्यों कि यह आत्मतत्वका अनुभव स्वसंवेदन ज्ञानके गोचर है। भव्योंको ही उसका अनुभव हो सकता है। अभव्योंको नहीं। यह जैन शास्त्र का कथन

है। सिद्धांत का यह सिद्ध रहस्य है। अभव्यों के चित्त के लिये यह विषय परम विरुद्धके रूपमें मालुम होता है।

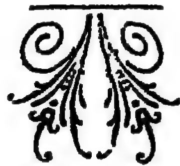
इस प्रकार श्रीभरतजी अपने आत्मयोगामृतमें डुबकी लगाते हुए अपने मनके लोभादिक दोषोंको धो रहे हैं। जैसे २ दोष धुलते जाते हैं वैसे २ वे अधिक सुखी हो रहे हैं।

उन्हें सुख समुद्रमें डुबकी लगाने दीजियेगा। अपन लोग संसारमें गोता ग्वारहे हैं। भरतजी संसार में रहते हुए भी आत्म सुखमें मग्न है। क्या ही विचित्रता है

पाठकों को आश्चर्य होगा कि इस प्रकारका सामर्थ्य भरतजी में क्यों आया? उन्होने इसके लिये कौनसे साधनका अवलंबन लिया था। जिससे उन्हें इंद्रियों के होते हुए भी अतीन्द्रिय सुखका अनुभव होरहा था। पाठकों को स्मरणमें रहे कि भरतजी सदा परमात्मासे प्रार्थना करते थे कि "हे! आत्मन्! लोकको देखनेके लिये मुझे इन जड नेत्रोंकी जरूरत नही है। तुम्हारे सारे शरीरमें नेत्र है। पदार्थों के विचार करने के लिये मुझे मनकी आवश्यकता नही। तुम्हारे सारे शरीरमें मन ही मन है। आत्मांगमें सर्वत्र विचार शक्ति है। अत्यंत सुख व वीर्य है। इसलिये तुम अपने प्रकाशके साथ मेरे हृदयमें सदा निवास करते रहो"॥

इसी भावनाका यह संस्कार है

इति उपहार संधि



अथ सरससंधि

मैं आत्मा हूं। मेरा स्वभाव ज्ञान है। ज्ञान ही मेरा शरीर है। इस प्रकार भरतजी अपने ज्ञाननेत्रके द्वारा परमात्माका दर्शन कर रहे हैं।

सबसे पहिले वे आत्मा भिन्न है, शरीरभिन्न है इस प्रकार के मंत्रको अनुभव करने लगे, तदनतर वह विचार तो गया केवल आत्मापर ही आरूढ होने लगे।

उनके हृदयमें अब कोई संकल्प नहीं। विकल्प नहीं। और कोई इधर उधरका विचार नहीं। केवल आनंद रसमें मग्न होकर डोल रहे हैं।

कर्मोंकी निर्जरा बराबर होरही है। प्रकाश बढता जारहा है ज्ञान व सुख की वृद्धि होरही है।

अब भरत अपने राज्यको भूल गये हैं। स्त्रियोंका उन्होंने त्याग किया है। शरीर की भी स्मृति अब उनको न रही है। वह राज्याधिपति उस समय सिद्धोंके समान निर्मल आत्मसाम्राज्यमें मग्न थे।

उस समय जरा भी हिल डुल नहीं रहे हैं। देखने वालोंको मालुम होरहा था कि कोई सोनेकी पुतली को लाकर उस सिंहासनमें कीलित तो नही किया है?

लोग कोई पूछें कि सम्राट् कहा है। उत्तर मिलेगा कि महल में है? महल में किस जगह है? अतःपुरके दरबार में है। वहा किस जगह हैं।? क्या कर रहे हैं? सिंहासनपर बैठे हैं। सिंहासनपर भी बैठे हुए अपने शरीर के अन्दर है। परन्तु यह सब असत्य है। उस समय भरतजी न महलमें और न सिंहासनपर थे। और न देहमें ही थे उस समय तो अपनी आत्मा में थे।

उस समय भरतजी को ऐसा अनुभव होरहा था कि आकाश स्वयं पुरुषके आकारमे होकर ज्ञान व प्रकाशके रूपमे उस शरीरमें आगया है। इस प्रकार परमात्माका अनुभव कर रहे थे।

इस प्रकार बाहरकी सर्व बातों को भूलकर अपने आपमें अत्यधिक लीन होते हुए भरतने आत्मानंदका पूर्ण स्वाद लिया। इतने में जोरसे शंखध्वनि सुननेमे आई भरतके कानतक भी उसका शब्द आया। उसी समय सम्राटने बहुत भक्तिके साथ परमात्माकी अष्ट विधार्चनाके साथ पूजा की व आखोंको खोलली।

इतनेमें दासियोंनें आकर प्रार्थना की कि स्वामिन! मुनिभुक्ति का समय होगया है। आप पधारें।

चक्रवर्ति "जिनशरण" "निरंजन सिद्ध" शब्दको उच्चारण करते हुए वहां से उठे। उस सुवर्ण मय महलसे नीचे उतर कर सबने पहिले उन्होने मुनियोंका प्रतिग्रहण किया। तदनंतर उन सत्पात्रोंको भाव भक्तिमे दान देकर उनको आदरके साथ भेज दिया।

भरतजी महलमे बैठे हुए हैं। इतने में कुसुमाजी राणी की छोटी बहिन् मकरंदाजी आई। मकरंदाजी देखनेमें बडी सुन्दर है अभी छोटी है। विवाह होनेके योग्य उमरके लिये और डेढ वर्ष बाकी है। फिर भी चतुर है। अपनी सखियोंके साथ चक्रवर्तीके पास आई और सुगंध अक्षतोंको देकर कहने लगी कि भावाजी! भोजनकी सब तैयारी होगई है। हमारे महलमें आप पधारें।

इतनेमे भरतजी हंसकर बोलने लगे कि कुमारी! आज मैं तुह्मारे घरमें भोजन के लिये नहीं आसकता। डेढ वर्षके बाद आकर यदि मुझे बुलाया तो मैं आवूंगा अभी तुम जावो।

भावाजी! हमारी बहिन् के घरको मैंने बुलाया, सो आप हंसी मजाककी बात कर रहे हैं, क्या यह आपको उचित है?

कुमारी ! तुमने वहिन के घरका नाम कब लिया ? तुमने यही तो कहा था कि हमारे घरमें भोजन के लिये चलिये, यदि मैं उसमें ऐसा समझा तो अनुचित क्या है ?

अच्छा रहने दीजिये आपका यह विनोद । अव वहुत समय हो चुका है । आप भोजनकेलिये चलियेगा । वहिन् कुसुमाजी आपकी प्रतीक्षा कररही है ।

अच्छी वात ! चलो ! ऐसा कहकर सम्राट कुसुमाजी के घरके लिये रवाना हुए । उस समय ठीक वैसा ही मालुम हो रहा था जैसे कुसुम को चूसने के लिये भ्रमर जारहा हो । सम्राट पधार रहे हैं यह समाचार पहिले से सेवकियोनें कुसुमाजी को सुनाया । उसी समय कुसुमाजी अपनी सखियों के साथ भरत का स्वागत करनेके लिये आई ।

उसके वाद कुसुमाजीने भरतके पासमें जाकर रत्नकी आरतियों से भरतकी आरती उतारी और वहुत भक्ति के साथ भरतके चरणमें अपने मस्तक को रखा । भरतने अपने हाथ के सहारेसे उसे उठाते हुए कहा कि कुसुमी । रहने दो । इसप्रकारकी भक्तिकी क्या जरूरत ?

फिर सात आठ हाथ आगे जानेपर उसने हाथोंसे भरतके चरणोंको धोया व वहुत भक्तिके साथ अपनी पदरसे उनके पादको पोंछ लिया । भरतजी कुसुमाजी के महलमें प्रवेश कर गये ।

सम्राटके अंदर प्रवेश करनेपर वहापर उन्होने पींजडेमें टंगे हुए एक तोतेको देखा । चक्रवर्तीको देखकर तोता कहने लगा कि वहिन्! हमारे महलमें भावाजी भरत आगये हैं । उनको विराजने के लिये सिंहासन तो मगावो । उनका सत्कार करो ।

वहा एक सिंहासन तैयार पडा हुआ था । भरतजी क्या इसीका नाम अमृतवाचक है ? ऐसा पूछकर उस सिंहासनपर वैठ गये ।

यह तोता कहने लगा कि भावाजी ! आप पधारे ? आप अच्छे गुणवान् है। आप यहां आयें सो बहुत अच्छा हुआ भावाजी ! आप कुशल तो हैं ? आप बार २ क्यों नहि आते हैं. क्या आपको राजा होनेका घमंड है ? नहीं तो हमारी बहिन के महलमे क्यों नहीं आते? हर्जे नहीं. आज आगयें। मेरे फन्दे में पागये। अब देखता हूं कि आप किस प्रकार निकल जाते हैं।

तोते की बात सुनकर भरतजीको हंसी आई।

तब तोता बोलने लगा कि भावाजी आपको हंसी आरही है। आप अभी तक दूर थे अब आप पासमे आगयें है अब देखिये कि मेरी बहिन आपको हंसी से कैसे फंसा लेती है. मेरी बहिन के दोनों हाथ फासे के समान है अब मैं देखता हूं कि उस फांसे में फंसे बच करके जावोगे. प्रेम से कुसुमाजी बहिन के साथ रहना हो तो रहो। वैसा न कर निकल कर जाना चाहोगे तो बहिन के नेत्र कटाक्ष रूपी चांदी के सांकलों मे बन्धवा डालूंगा. मैं तो पींजडे मे बन्द हूं यदि जानेकी कोशिस की तो बहिन के दन्त पंक्तियोंके प्रकाश रूपी सोने के पिंजडे में तुमको भी बन्द करके रखवा दूंगा जान लिया ?

अमृतयाचक ! तुम और तुमारी बहिनको मैंने कोनसा कष्ट पोंहोंचाया है नहीं तो इतना क्रोध क्यों ? तुम लोगों को मैं शिष्ट समझ कर यहा आया हूं. परन्तु तुम दोनों दुष्ट मालुम होते हो. इस प्रकार भरतने कहा

राजन् ! आपको मेरी बातोंमे दुःख हुआ ? अच्छा कोई बात नहीं। अब तुम हमारी महलमे बहिनके अधर संजीवन अमृत को पीते हुये जीव सिद्धिको पावो अब तो मेरी बात अच्छी लगती है न ? मेरे लिये जामुन का फल जंगल मे है तुम्हारे लिये जामुन बहिन के मुख मे है. मैं जंगलमे जाकरके खाता हू तुम यहीं पर

खाकर सुखी रहो बहिन की बीच सिंहळ देश है. केशबन्धन कुन्तल देश है. कर्ण कर्णाटक देश है कुच काश्मीर देश है इस लिये वहिन के शरीर रूपी राज्य को पालन करो यहा से क्यों जाते हो. और भी सुनो ! उसका यौवन वन के समान है सौन्दर्य सुन्दर जल भरें तालाव नदियोंके समान है. भावाजी ! अब खूब वन क्रीडा व जल क्रीडा से अपने सन्तापको ठंडा करो. यह सब वचन आपको अच्छे लगते होंगे. परतु एक बात और है। मेरी बहिन के मुखमे एक मधुक घडा भरा हुआ है व अत्यंत मीठा है. परन्तु भावाजी उसका स्वाद आप कैसे ले सकते हैं आप तो जैन है न ?

भरतजी तोतेकी बात सुनकर जरा हंसे जरूर। परतु उन्होने यह जान लिया कि यह इस तोतेकी चतुरता नहीं है। इसको किसीने इसे सिखाया है। सिखानेवाला कौन है ? कुसुमाजी की बहिन मकरदाजी का ही यह कार्य है। उसीने यह तत्र रचा है ऐसा मनमें ही विचार कर उसपर प्रसन्न हुए।

मकरंदाजीको आलिंगन देकर अपने संतोषको जाहिर करूं यह इच्छा भरतजी को उत्पन्न हुई। परतु वह पासमें कैसे आवे ? इसके लिये उपाय सोचकर भरतजी उससे कहने लगे कि देवी ! तोतेके वाक्चातुर्यसे मैं प्रसन्न होगया हू। जरा उसे मेरे पासमें ले आवो तो सही !

इस वातको सुनकर मकरंदाजी तोतेको लेकर भरतजीके पास गई और जिस समय उनके हाथमें वह तोतेको देरही थी उस समय भरतजीने एकदम उसे पकड लिया व आलिंगन दिया।

मकरदाजी लज्जाके मारे मुह छिपाकर इधर उधर भागने की कोशिस करने लगी, परन्तु भरतजीने उसे जोरसे पकड रखा था। उन्होने एक चुम्बन देकर उसे छोडदिया और कहा कि देवी ! मैं तुमसे प्रसन्न होगया हूं।

तब राणी कुसुमाजी पूछने लगी कि स्वामिन् ! आप बहिन के ऊपर इस प्रकार इतने शीघ्र प्रसन्न क्यों होगये ?

कुसुमाजी ! रहने दो ! तुम लोगोंका सब कुछ तन्त्र मैं जानता हूं। क्या तुम नहीं जानती हो ? आज इस तोते ने जो नई बात बोली है उस में मकरंदाजीका हाथ है। क्या उसने उसे नहीं सिखाया है। बोलो तो सही। इसलिये मैं उस की बुद्धिमत्तापर प्रसन्न होगया हूं। अतएव उस प्रसन्नतामें उसे आलिंगन देकर छोडा है। और कोई बात नहीं।

तब कुसुमाजी राणी बहिन् मकरन्दाजीसे कहनेलगी कि बहिन् देखलिया न ? मैंने उसी समय तुम्हे कहा था कि यह काम तुम मत करो। हमारे पति देव हवा की चालको भी पहिचाननेवाले हैं। उनके सामने तुम अपने चातुर्य को क्यों दिखाती हो। फिर भी तुम्हे समझमें नहीं आया।

पति देवके आनेके समाचार सुनकर व मेरी तैयारी देखकर तुम बैठकर तोतेको कुछ सिखाने ही लगी थी। मैंने पूछा कि बहिन् ! क्या कर रही हो ? ऐसे कार्य मत करो।

तब तुमने जवाब दिया कि बहिन् ! आज भावाजी अपने घर भोजन करने के लिये आनेवाले हैं। जब आकर वे इस महलमें प्रवेश करेंगे तब इस तोतेसे कुछ सरस व्यवहार कराउंगी।

मैंने जवाब दिया कि बहिन् तुम पति देव के साथ अपनी बुद्धिमत्ता को बतलानेकी कोशिस मत करो। वो तो कोरे आकाशमें रूप लिखकर रखनेतक सामर्थ्य रखते हैं। इसलिये इसकार्य में व्यर्थ प्रयास मत करो ऐसा कहनेपर भी तुमने माना नहीं। मैंने फिर भी बहुत विरोध किया। फिर भी सिखाती गई ! तोतेको मुझे देनेकेलिये कहा, परन्तु उसे भी लेकर उठी, फिर सखियोंसे इसे पकडनेको

कहा एकदम उनलोगोंके भी हाथ न आकर वगीचेके तरफ भाग गई। इसके साथ खेलने के लिये यह समय नहीं ऐसा विचार कर मैं अपने घरू कार्यमें लगी रही। यह वगीचेमें जाकर सब कुछ सिखाकर हसती हंसती आई।

देव! मैंने इन वचनोंको कभी नही सुने थे। आज ही इस तोतेके मुखसे ऐसे वचनको सुन रही हूं यह बात आपके शपथ पूर्वक मैं कहती हूं इसकी वृत्तिको देखकर इसे अब कन्या कहना या कुटिल कामिनी कहना? समझमें नहीं आता। इस प्रकार कुसुमाजी अपनी वहिन के संबधमें भरतजी से कहने लगी।

मकरंदाजी-वहिन! मैंने तुम व तुम्हारे राजाके साथ क्या कुटिलता की, जरा वतला सकती हो, "देवी जरा तोतेको इधर लावो' यह कहकर मुझे पास में बुलाकर जोरसे पकडे रखने वाले तुम्हारे राजा ही कुटिल है।

कुसुमाजी कहने लगी कि धूर्तों! अपनी मुहको ज्यादा मत चलावो। मुंह वद करो, तुमसे प्रसन्न होकर राजाने तुम्हारा सन्मान किया। तब तुम उसकी कुटिलता कह रही है।

कुसुमाजी वहिन! यह सन्मान तुम्हारे लिये मुवरिक रहे। मुझे जरूरत नही। मैं क्या इसकी राणी हूं जो उसने इतने जोरसे मुझे पकडकर आलिंगन दिया। यह कुटिलता नहीं तो और क्या है। मैं तो मेरी वडी वहिनको देख लू इस अभिलापासे यहा इस महलमे आई। परंतु मुझे उसका फल मिला। अब मैं चुपचाप अपने गावको जावूंगी। अब तुम्हारे गावका नाम लिया तो मैं कन्या नहीं हूं। समझी! देखो तो सही। मानियोंके सामने आने पर जिस प्रकार मानभंग किया जाता है उसी प्रकार इसने हमारा अपमान किया है। हाथीके समान खींचकर मुझे लेगया। क्या इसे मैं राजा हूं इस वातका अभिमान है?

इन वार्तोको करती हुई मकरंदाजी वीच वीच मे अपने मुखके आकारको रोनेके समान कर रही है । कभी आखो को मलती है । अंदर संतोप है, केवल बाहर से वह इस प्रकार बोल रही है । कभी भरतकी ओर ठेढी आखोंसे देखरही है । और फिर लंबी सास लेकर मुंह छिपाकर फिर जरा हंसती भी है ।

भरत भी इस प्रकारकी उसकी वृत्ति देखकर मन मनमे ही हंस रहे हैं । कुसुमाजी की ओर इशारा कर रहे है कि इस की ठगवाजी देखो तो सही ।

कुसुमाजी वहिन से कहने लगी कि वहिन् ! इस प्रकार क्यों दुखी हो रही हैं । तुम्हे क्या हुआ ? तब मकरन्दाजी कहने लगी कि वहिन् ! रहने दो तुम्हारी वकालात ! तुम्हारे वजहसे मेरा सर्व नाश होगया । सर्वस्व हरण होगया ।

तब उसे सुनकर कुसुमाजी व्यंग्य भावमे कहने लगी कि हा ! मेरी वहिनका वहुत नुकसान हुआ । वहुत खराव हुआ ।

तव मकरन्दाजी कहने लगी कि क्या तुम वैश्य या शूद्र जातिमें उत्पन्न है ? क्या जाति क्षत्रियोंकी कन्यायें इस प्रकार कभी बोल सकती है ? तुम इस प्रकार क्यों बोलती है । कुमारी कन्याको दूसरे पुरुप आलिंगन देवे यह मरण के समान है । और क्या खराव होनेमें बाकी रहा है ?

तव कुसुमाजी कहने लगी कि वहिन् । विवेकी हमारे पति देवके सामने तुह्मारी कृत्रिम बातें चल नही सकती हैं । वे तो हर-एकके भावको अच्छीतरह जानते हैं । तुह्मारी आखों से निकलने-वाली आसुवोंकी धाराको देखकर उनको वडा दुःख होरहा है । अब तो रोना वंद करो ! वस ! वहुत होगया ।

मकरदाजी को मालुम हुआ कि मेरा रोना झूठा है यह वात

इन्हे मालुम होगई, आंखोंमे आंसू ही नहीं निकलती । इसलिये यह इस प्रकार कहती है। इसलिये वह अब आंखोंको मल मलकर उसस पानी निकालनेकी कोशिस करने लगी। इतने में उसकी आखोंसे पानी निकलने लगा ।

चक्रवर्ती भरत इस दृश्यको देखकर जोरसे हंसे। इस समय कुसुमाजी कहने लगी कि वहिन! हमारे पतिदेवके सामने किसी भी स्त्रीको दुःखकी आसू निकल ही नहीं सकती है। अब तुह्मारे नेत्रमें आनदाश्रु निकलने लगा सो वहुत अच्छा हुआ ।

मकरदंाजी बहिन्! तुम अपने पतिकी ही प्रसंशा करती है। परंतु मैं तो उसके मुखको देखना भी पसंद नहीं करती। तुह्मारे पतिकी वृत्तिको तुमने देखा नही? किस प्रकार वह शिष्ट है?

कुसुमाजी—रहने दो तुह्मारी माया! तोतेसे जो कुछ भी तुमने छिपकर बुलवाया वसी को तो उन्होने प्रकट किया है और क्या किया। फिर तुम इतनी खिसियाती क्यों है?

इस बातको सुनकर मकरदंाजीने कुछ भी जवाब नहीं दिया सिर झुकाकर हंसने लगी!

भरतने अपनी थूक उस मकरदाजी को दी। परंतु मकरं-दाजीने थू, थू कहकर उसका तिरस्कार किया। कुसुमाजी कहने लगी कि मूखा! यह क्या करती है। हमारे पतिदेवकी थूक अमृतके समान है। उस अमृतको देते हुए तिरस्कार क्यों करती है?

मकरदाजी—बहिन्! तुम्हारे लिये अमृत होगा मेरे लिये नहीं। ऐसा कहकर वहापर रखे हुए सोने के कलश से जल लेकर कुल्ला करनेलगी व कहनेलगी की जिन! जिना! बडा अनर्थ हुआ। फिर जप करने लगी, आख भी मीचकर ध्यान करने लगी जैसे कोई वडे भारी पापकी निवृत्ति कर रही हो। फिर आख खोलकर भरतकी ओर देखरही है। फिर लज्जित होकर शिर झुका लेती है।

फिर कुसुमाजी उसे चिढानेके लिये कहने लगी कि बहिन् ! इतनी ढोंग क्यों करती है ? हमारे पति देवकी थूकके स्पर्श होने मात्रसे तुम्हारे कोटिकुल पवित्र हुए। इसमे रंजकी क्या बात है ?

मकरदाजी—बहिन् ! क्या बोल रही है ? इस भरतके साथ मे विवाह होनेसे तुम अपने माता पितावोंके देशको नीची दृष्टिसे देखती है भले ही इसके समान संपत्ति हमारे मातावोंको न हो परंतु वंशमे तो वे लोग इन से क्या कम है ?

पति के गुणों को मुग्ध होकर स्वयं मैं सुखी होगई हूं ऐसा तुम कहसकती हो परंतु सबको नीचे देखना क्या बुद्धिमत्ता है ? क्या यह क्षत्रिय कन्यावोंका धर्म है ?

इस बातको कहते हुए भरतके कुलशील व गुणों के प्रति मकरंदाजीके हृदय भी प्रसन्न तो होरहा था परंतु उसे छिपाकर अपनी मायके के, घरकी प्रसंशा कर कहने लगी।

बहिन् ! क्या हीन भाग्य की राज कुमारी यदि कोई बडे भाग्यवान् राजा की राणी हो जाय तो वह अपने चातुर्य व प्रेमसे अपनी मायके को उसको बराबरीके रूपमें नहीं बतायगी ? यदि उस पुरुषको प्रसन्न कर अपने माता पितावोंकी प्रतिष्ठा वह नही कराती है तो उसे राजपुत्री क्यों कहना चाहिये ?

उत्तम क्षत्रिय कुलमे उत्पन्न कन्यावों का यह कार्य होना चाहिये कि वह चाहे जितने संपत्ति शाली राजावोंके घरमें यहातक कि चक्रवर्ति के घरमे ही क्यों न पहुंचे वहापर अपने घर माता-पितावोंका, घर अपने धन मातापितावोंके धन, पतिके मन, पिताके मन व अपने मन आदिमे अपनी कुशलतासे बराबरीकी प्रतिष्ठा लानी चाहिये।

बहिन् ! बडे घरमे प्रवेश करनेसे जिस घरमें जन्म हुआ है उस घरको भूल जाना यह कोई बुद्धिमत्ता नहीं है।

यह राजकन्यावोंका लक्षण है ? ऐसी अवस्था मे बहिन् ! तुम अब अपने घरकी प्रसशा करना छोडकर इस राजा की ही प्रसंशा कर रही न ! क्या यह तुम्हे उचित है ?

इन बातोंको सुनकर कुसुमाजी बोलने लगी कि बहिन् ! यह सब बुद्धिमत्ता तुमारे पास ही रहने दो। तुम्हारा जिस समय विवाह किमी राजाके साथ होगा उस समय राजकन्यावोंके चातुर्य को वहा बतलाना। मैं कोरा घमण्ड करना नही जानती। लोकके अन्य राजावों को अन्य राजावोंके साथ बराबरीके रूपमें वर्णन कर सकते है। परंतु लोकके सब राजावोंको एक छत्रके अदर पालन करनेवाले पतिदेवको बाकीके लोगोंके साथ बरावरी करना असभव है।

बहिन ! तुम ही बोलो। प्रथम तीर्थंकरके जो प्रथम पुत्र है प्रथम चक्रवर्ति है और सोलहवा मनु है उस की बराबरी करनेवाले लोकमे कोई मिल सकते हैं ? दुर्गंध शरीरको दुर्गंध शरीरकी जोडी मिल सकती है। मल मूत्र रहित निर्मल शरीरको कोई जोडी मिल सकती है ? बाहरके विषयोंसे प्रसन्न होनेवाले मूर्खोंको मूर्खोंकी जोडी मिल सकती है। परमात्मा योगके अनुभव करनेवाले आत्म सुखी पति देवकी बराबरी कौन कर सकता है ?

मैं ने जो कुछ भी देखा सो कहा, इसमे जरा भी असत्य नहीं। दुनियामे जितने भर भी राजा है, माडलीक हैं यदि वे हमारे राजाको राजी करते है तब तो वे राजा है नहीं तो पाजी हैं तुम जानती है ?

इसलिये मकरंदा ! व्यर्थकी बात मत करो, यहापर तुह्मारा अभिमान चल नहीं सकता है। अभिमान करनेके लिये और कोई जगह हो तो देखो। यहापर उसके लिए जगह नहीं। तुम जो कोरा अभिमान पूर्ण वचन बोल रही है उससे तुह्मारा व तुमारी मायके का सबका अहित है। मेरे पति देवके सामने इस प्रकार क्यों

बोल रही है ? मुंह बंद कर !

मकरंदाजी—बहिन ! क्या ही विचित्रता है। इस राजाने तुम्हारे ऊपर खूब वश्यमंत्र चलाया है। इसलिये तुम्हें उसके सिवाय और कोई दीखता ही नहीं। तुमने अपने मनको इसे वेच दिया है। पांच इंद्रियोंका अनुराग इस पर स्पष्ट दिख रहे हैं शरीरको सर्व तरहसे उसे समर्पण कर दिया है। सुखमें मग्न होकर तुम अपनी मायके के घरको भूल गई इसमें आश्चर्य क्या है ?

बहिन ! क्या तुम्हारे पतिके तांबूलमें कोई औषधि तो नहीं है ? या उसके बाहुवोंमें कोई वश्यमंत्र तो नहीं है ? नहीं तो तुम इस प्रकार क्यों फस सकती थी। मैं झूठ नहीं बोल रही हूं। उसने मुझे जरासा जब आलिंगन दिया मेरे सारे शरीर में रोमांच होगया। और जब मुझे चुंबन दिया उस समय मैं मूर्च्छित होकर गिरना ही चाहती थी परंतु साहसकर सम्हल गई। मैं अपनी मानहानि के मारे इतने क्षुब्ध होगई कि उसके मारे आखोंमें आंसू ही नहीं निकला। तुम्हारे पतिकी मायाको क्या कहूं ? ऐसी अवस्थामें तुम उसके वशमें होगई इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं।

सम्राट भरत मकरंदाजी की बातोंको बडे ध्यानसे सुन रहे थे। एवं उनके मनमें विचार कर रहे थे कि इन चातुर्योंको इस कन्याने कहां सीख लिया है। अभी तो यह अविवाहित है। अभी ही इसकी यह हालत है तो विवाह होनेके बाद फिर यह कैसी होगी। तदनन्तर सम्राट प्रकट में बोले कि कुसुमाजी ! यह तुम्हारी बहिन खूब खिसिया गई है। उसे बहुत कष्ट हुआ है। उसे इधर बुलाओ। और भी उसे जरा सत्कार करूं जिससे उसका दुःख दूर हो जाय।

कुसुमाजी—बहिन्! इधर आवो! जरा हमारे पतिदेवके पास।

मकरंदाजी—रहने दो, जावो, मैं नहीं आती हूं। पहिले एक दफे तुम्हारे पतिके पाससे आनेका फल मुझे मिल चुका है। खूब मेरा सत्कार होचुका है। क्या अब भी मुझे ज्ञान नहीं? जावो! मैं नहीं आती।

सम्राट्—देवी! पहिलेके सत्कारसे तुम्हे दुःख हुआ! अबकी वार उससे भी बढिया भेंट तुम्हे दूंगा। तुम घबरावो मत।

मकरंदाजी—व्यर्थकी वातोंसे मेरे चित्तमें क्रोधकी उत्पत्ति नहीं करना, मुझे आश्चर्य होता है कि दुनियामें जन्म लेकर तुमने क्या मायाचार फैला रखा है। स्त्रियोंको देखते ही उनको आलिंगन देते हो। क्या यही तुम्हारा ध्यान रहता है? क्या तुम्हारे पास स्त्रियोंकी कमी है? सैकडों स्त्रियोंके रहनेपर भी इस प्रकार की वृत्ति तुम्हारी उचित है? जो तुमसे प्रसन्न है उसके साथ में यह व्यवहार ठीक है। परंतु जो तुमसे वचकर दूर जाना चाहती है उसे जबर्दस्ती पकड रखने व मुखको हटालेनेपर भी जबर्दस्ती चुंबन देनेकी तुम्हारी वात देखकर हंसी आती है।

इस प्रकार मकरंदाजी कहती हुई अंदर अंदर ही हस रही थी और बीचबीचमें वोलती भी जारही थी।

कुसुमाजी राणी जानगई कि भरतजीको अपनी वहिनपर प्रीति उत्पन्न हो गई है। इसलिये दोनोंकी वात चुपचापके देखरही थी। तब भरतजी फिर मकरंदाजीसे बोले कि:—

अरी धूर्ता! मैं तुम्हे इनाम देकर तुम्हारा सत्कार करना चाहता हूं। परंतु तुम मुझे तिरस्कृत कर रही है। यह क्यों?

मकरंदाजी—राजन्! तुम महाधूर्त हो। वह इनाम तुम्हारे पास ही रहे। मुझे उसकी जरूरत नहीं।

भरतजी इस बातको सुनकर हंसे व कहने लगे कि अच्छा ! मैं धूर्त हूं। मेरी धूर्तता अब बतलाऊं क्या ?

इसको सुनकर मकरंदाजी एकदम सहम गई और कहने लगी कि आज आपकी गंभीरता किधर चलीगई ? खेलनेकी इच्छा होरही है। दरबारमें बैठनेपर तुह्मारे मुखसे दो चार शब्दोंका निकलना भी दुर्लभ होजाता है परंतु आज इस प्रकार वचनोंकी वर्षा क्यों होरही है ?

भरतजी—तुम दुःखी हुई इसलिये मैं तुम्हे इनाम देकर संतुष्ट करना चाहता था। परंतु तुम कुछ और ही समझ रही हैं।

मकरंदाजी—देखो ! फिर वही बात ! आप अपना हठ फिर भी छोडना नहीं चाहते। आपने मुझे पहिले जो इनाम दिया है वह भी मुझे भार होगया है। इसलिये लीजिये यह रत्न-हार आपके सामने ही उतार डालती हूं कहकर अपने कंठके रत्न-हारपर उसे उतारनेके लिये हाथ लगाने लगी। आश्चर्यकी बात है कि वह कंठसे बाहर निकालनेको नहीं आया। मकरंदाजी समझ गई कि सम्राट्ने रत्नहारको कंठमे स्तंभित कर दिया है। इसलिये वह विस्मित होकर राजाकी ओर देखने लगी एवं कहने लगी कि राजन् ! यह तुम्हारा हार मेरे गलेको क्यों नहीं छोडता है। यह भी तुम सरीखा ही हठग्राही मालुम होता है। देखो तो सही, उसे मैं छोडो छोडो कहती हूं, परन्तु वह मुझे नहीं छोडता है। भरतजी बोलने लगे कि मकरंदाजी ! मैंने तुझे देते समय तीन आभूषणों को दिये थे। एक कंठके लिये, दूसरे हृदय के लिये व तीसरे मुखके लिये, परंतु उनमेसे दो रखकर एक ही तुम वापिस देरही हैं। इसलिये वह कंठहार तुह्मारे गलेसे नहीं निकलता है दूसरी बात हम दिये हुए पदार्थको वापिस लेनेवाले नहीं है। इसलिये अब उस रत्नहारको स्पर्श मत करो। वह तुम्हारा ही है। परंतु

ध्यान रहे। आज हमारे साथ सनमानें उसने उन्मत्तासे बोल चुकी है। इसलिये उसका बदला लिये विना नहीं छोड़ूंगा। मकरन्दाजी! छह महीना और ठहरो। बादमें तुम्हारी मन इच्छा पूरको बेर कर दूंगा। तबतक सबर करो।

मकरंदाजी—भावाजी! क्या? आपने क्या विचार किया है मुझे बोलिये तो सही।

भरतजी— क्या! बोलूं? सुनो! तुम्हारी बड़ी बहिन कुसुमाजीके समान बना डालूंगा। समझी?

इस बातको सुनकर वह लज्जाके मारे खंभे के पीछे दौड गई, साथमें उसको कुछ हर्ष भी हुआ।

तब उस वचनको सुनकर कुसुमाजी को हर्ष हुआ। वह मकरंदाजीसे कहने लगी कि बहिन! हमारे पतिदेवकी बात असत्य कभी नहीं हो सकती। इसलिये कल ही पिताजीको बुलवाकर तुम्हारे लिये नये आनंदकी व्यवस्था करूंगी। विशेष क्या? सम्राट् के हाथमें तुम्हारा हाथ मिलाकर पिताजीके हाथसे जलधारा डल-वावूंगी जिससे तुम दोनोंका परस्परका विवाद धुल जाय। इस प्रकार कहकर वह कुसुमाजी अपनी बहिन के पास जाकर कहने लगी कि बहिन्! अब तो मंगलोत्सव हो गया ऐसा समझ लो। परंतु पुरुषोंको जवाब देना यह स्त्रियोंका धर्म नहीं है। इसलिये वह जो दोष तुमसे हुआ है उसे अब किसी प्रकार दूर करो। इतने देरतक तुम मेरे लिये उपदेश देरही थी। परंतु स्वयं तुम बुद्धिमती होकर भी नहीं जानती है। आश्चर्य है। आवो! पति-देव को नमस्कार करो! तुम्हारा सब दोष दूर होजायगा। ऐसा कहती हुई उसके हाथ धरकर बुलाने लगी।

मकरंदाजी लज्जा के मारे सामने नहीं आती कुसमाजीके बहुत आग्रह करनेपर फिर सामने आई।

इस प्रकार बोलती हुई कुसुमाजी हृदयमें इस बातसे प्रसन्न भी हो रही थी कि आज हमारे ऊपरके प्रेमसे सम्राट्‌ने हमारे माता पिता भाईयोंका भी बडे आदरसे नाम लिया है। दुनियाके सभी राजावोंको एक वचनसे बुलानेवाला राजा आज मेरे जन्मदातावों को बहुवचनसे स्मरण कर रहे हैं, सचमुचमें मैं भाग्यशालिनी हूं। राजाओंको यह प्रभु सेवकोंके समान बुलाते हैं। परंतु हमारे मातापितावोंको सासू व श्वसुर कहा, सचमुचमें यह भाग्य और किसे मिल सकता है।

विचार किया जाय तो यहा एकात होनेसे इस प्रकार सम्राट बोलगये हैं। नहीं तो दरबारमें कभी इस प्रकार सन्मानके साथ नहीं बोलते दरबारमे तोलकर बात करते हैं। भरतजीने इस समय विचार किया कि कुसुमाजी मेरे अत्यत प्रेम पात्र राणी है। इसलिये उसके साथ एकातमे तो कमसे कम समयोचित व्यवहार करना चाहिये। इसी विचारसे बोले। यदि किसी मूर्ख स्त्रीके साथ राजा भरतने इस प्रकार बोला होता तो वह अभिमानके साथ भरतके सिरपर ही चढती। परतु वह कुसुमाजी बुद्धिमती थी। इसलिये उसके बोलनेसे उसका कोई बुरा परिणाम नहीं होसकता है। इसलिये कहते हैं कि लोकमें विवेकी स्त्री पुरुषोंकी जोडी ही सर्व तरहसे सुख प्रद है।

कुसुमाजी कहने लगी कि स्वामिन्। घरकी सजावटकी बात क्या है। यह सब आपकी ही कृपा है। अब आप मंगल आसनपर विराजमान हो जाईये।

भरतजी जाकर नवरत्नमय आसनपर विराजे, इधर उधरसे नवरत्नमय उपकरण जलकलश वगैरह रखे हुए थे।

अब कुसुमाजीने सब लोगोंको बाहर जानेकेलिये कहा। केवल एक दासीको घंटा वजानेके लिये दरवाजे के बाहर खडी रहनेको

पड़ा। फिर स्वतः जाकर दरवाजे को बंदकर आई। भरतने कहा कि कुसुमाजी! दरवाजा क्यों बंद कर दिया? तब कुसुमाजी कहने लगी कि स्वामिन! इसका कारण बादमें कहूंगी। अभी आपको भोजनमें देरी होती है।

परंतु भरतजी अपने मनमें यह समझ गये कि यह देवी पहिले लोगोंके साथ बोली हुई बात बेन स्त्र प्रकारेण बाहर पडगई है यह जानकर डरगई है। इसलिये अब मैं इसके साथ जो कुछ भी बोलूं वह किसी को भी मालुम न हो, सभी बातें गुप्त रहें। यही इसके दरवाजा बंद करनेका अभिप्राय है।

इस प्रकार सब लोगोंका बाहर कर कुसुमाजी एकांतमें अपने पतिदेवको उत्तमोत्तम भक्ष्य पायस शाक पाक आदि ला लाकर परोसने लगी। स्वर्गके देवोंको भी जो भक्ष्य दुर्लभ हैं वैसे दिव्य पदार्थोंको भरतके सामने उसने उपस्थित किया।

तदनंतर अपने पतिदेवको भक्तिसे आरति उतार कर पुष्पांजलि क्षेपण करती हुई हाथ जोडकर प्रार्थना करने लगी कि स्वामिन! अब भोजन कीजिये!

उस समय भरतजीके शरीरमें तिलक, कुण्डल यज्ञोपवीत, उत्तरीय व अंतरीय वस्त्रके सिवाय और कोई अलंकार नहीं थे।

भरतजीने हस्त प्रक्षालन आदि भोजनाद्य क्रियावोंको की।

सिद्धोंकी स्तुति व पूजा कर उन्होंने उन्हे सिद्ध लोक मे भेज दिया। पूर्वोक्त क्रमसे परमात्माके स्मरण रखते हुए सिद्धांत प्रतिपादित क्रम से आहार लेने के लिये प्रारंभ किया।

सबसे पहिले सम्राट्ने एक घूंट जलका पानकर जलशुद्धि की इसी समय बाहर से मंगल घंटाध्वनि होने लगी। उसी समय सम्राटने भी अपने कर कमलको उस दिव्य वस्तुवोंसे युक्त थाली पर रखा। तदनंतर परमात्मा की साक्षीपूर्वक उस शरीरको अन्न पान समर्पण करने लगे।

सम्राटने भेद विज्ञानके बलसे आत्माको उस शरीरके मध्यमे रखकर उनसे पूछा कि हे चिन्मय परमात्मा! मैं इस शरीरको यह पौद्गलिक अन्नको खिलाऊ ? तुम्हारी क्या आज्ञा है ? तुम तो कार्माण वर्गणारूपी आहारको भी भार समझते हो ! ऐसी अवस्थामें हे स्वर्मोक्षपति ! तुमको इन कवलाहारोंसे क्या होगा ? इनसे पुद्गलको ही लाभ है। आहार लेनेकी इच्छा करनेवाले मन, इंद्रिय, शरीर, वचन आदि सबके सब पुद्गल है। इस लिये इस पुद्गल शरीरको उपयोगी यह आहार है। तुम्हारा उससे क्या संबंध है ?

हे आत्मन् ! तुमने पूर्व जन्ममें जो पुण्य किया है उसके फल स्वरूप सुखको अब भोगकर छोडो। इस पुण्यको व्यय करनेके लिये मैं यह भोजन कर रहा हूं। आज इस अन्नके सुखको अनुभव करो। कल तुम्हे आत्माके अनंत सुखका अनुभव होगा। इस प्रकार अनेक तरहसे आत्माको समझाते हुए भरत भोजन कर रहे थे।

सम्राटके पास ही कुसुमाजी इस प्रकारकी हुशियारीके साथ खडी थी कि उसकी छाया भरत या उसकी थालीपर न पडे। बीच २ में वह पंखेसे हवाकर गरम चीजोंको ठण्डी कर रही थी। कभी चक्रवर्तिके ऊपर गुलाबजल छिडककर उनके शरीर को भी शात कर रही थी। बीचमें ही हाथ धोकर फिर थालीके अन्न व शाक मिलाकर देती थी और बांये हाथसे शरीर सवरती भी जाती थी। और फिर भरतके मुंहपर भी एकाध ग्रास देरही थी पुनः हाथ धोकर जरूरतके भक्ष्योंको परोस रही है। भरत यदि भोजनके बीचमें पानी पीनेकी इच्छा करें, उनके कहने के पहिले ही जलकलश को उठाकर देती है। मालुम होता है कि भरतके हृदयमें ही वह प्रवेश कर चुकी है। अच्छे २ मधुर द्रव्यों को चुन २

कर वह भरतके हाथमें रखती है। भरतजी आनंदके साथ उसे खाते जाते हैं यदि मिठास अधिक होगई तो खट्टी चटनी वगैरे चाटने को देती है, यदि खटाई अधिक होजाय तो नमक देती है इस प्रकार पतिदेवकी रूचिको ध्यानमें रखती हुई उनको तरह तरहके रसोंका आस्वादन कराती जारही है।

भरतजी अपने मनमें जिस पदार्थ की चाह करते हैं उसे इशारेसें मांगनेके पहिले ही कुसुमाजी उसे उनकी थालीमें अर्पण करती थी। राजा भी इस बातमे सतुष्ट होरहे थे, प्रेमकी पराकाष्ठामें शरीर दो होनेपर भी आत्मा एक ही है इस वाक्यकी सत्यता सचमुचमें वहा दिखती थी।

जिन पदार्थोंसे सम्राटकी तृप्ति हुई हो उन पदार्थोंको थालीकी एक ओर सरका कर और विशिष्ट पदार्थोंको परोसती है। भरतजी आखोंसे इशारा करते हैं कि बस! अब मत परोसो! कुसुमाजी हाथ जोडकर प्रार्थना करती है कि स्वामिन्! थोडा और लीजिये! इस प्रकार कहकर तरह २ के पकान्न पानको बडी भक्तिसे परोसती जाती है। इतनेमें भरतजी पुनः अपने सिर हिलाने लगे। तब कुसुमाजी स्वामिन्! अब दो ग्रास ओर लीजिये! कह कर आग्रह करने लगी। दो ग्रासके वजाय कई ग्रास हो गये। पुनः यह प्रार्थना करने लगी कि पतिदेव! आपके लिये जिन २ पदार्थोंको मैंने बनाया हैं उनका स्वाद आपको जरूर लेना होगा। भरतजी भी उसकी विचित्र भक्तिपर हंसते हुए उनको जरा मुह लगाकर छोडते थे।

इस प्रकार बहुत विनय व भक्तिके साथ कुसुमाजीने अपने पतिदेवको भोजन कराया, भरतजी भी तृप्त हो गये। उन्होंने हस्त प्रक्षालन कर भोजनात्यकी क्रिया की।

आखोंको बंद कर अंत्य मंगल करते हुए परमात्माका स्मरण

किया। तदनंतर आंख खोल ली। कुसुमाजीने भी बहुत भक्तिसे नमस्कार किया बाहरकी घटाध्वनि भी अब बंद हो गई।

तदनंतर 'जिनशरण' शब्द को उच्चारण करते हुए सम्राट वहांसे उठे व ऊपरके महलकी ओर चले गये। महलकी सीढियों को चढनेमें भोजनके बाद पतिदेवको कष्ट होगा इस विचार से कुसुमाजी उसे अपने हाथके सहारा देकर चढाने लगी। ऊपर पहुंचकर वहांपर पहिलेसे ही सजी हुई एक सुंदर कोठरी में सुसज्जित पलंगपर बैठ गये। कुसुमाजीने तांबूल, गुलाबजल, व सुगंध द्रव्य आदि देकर सत्कार किया। भरतजी वहींपर जरा लेटे। कुसुमाजी उनके पैर दाबनेके लिये बैठी। परंतु भरतजीने कहा कि प्रिये! जावो। बहुत समय हो चुका है। भोजन करके आवो। इस प्रकारकी आज्ञा पाकर वह सती अत्यंत आनंदसे भोजन करनेके लिये चली गई।

भरतजी वहां पडे २ ही आंख मींचकर विचार करने लगे कि मेरी आत्मा भिन्न है, शरीर भिन्न है। यह भोजनादिक बाह्य उपचार शरीरके लिये है। आत्माके लिये नहीं। मेरी आत्मा क्षुधा से पीडित नहीं अपितु यह सब कुछ मुझे शरीरके लिये करना पडता है इस प्रकार विचार करते २ उनको अन्नके मदसे जरा निद्रा लगी। तकियाके ऊपर अपने बायें हाथको रखकर उसपर अपने मस्तक उन्होंने रखाथा और दाहिने हाथको अपनी जंघाके ऊपर रखकर उस समय वे नींद ले रहे थे।

उस समय भी उनकी शोभा अपार थी। नींदके बीचमें कभी २ ओंठको हिला रहे हैं। कंठको हिला रहे हैं। कंठ व मुखमें थोडासा पसीना दिख रहा है। और कोई प्रकारका विकार नहीं है।

वीणाके तारसे जिस प्रकार सुस्वर निकलता हो उस प्रकारका

स्वर उनके श्वासोच्छ्वासमें निकलते थे। दूरसे देखने वालोंको उस समय वे सुलाई हुई सोनेकी पुतलीके समान मालुम होते थे।

कुसुमाजी भोजनको जाते समय पतिकी निद्रामें कोई बाधा न हो इस विचारसे बिलकुल निस्तब्ध पासमे गई। परंतु फिर भी चक्रवर्तीके शरीरके सुगंधपर मुग्ध होकर अनेक भ्रमर आकर वहा गुंजार कर रहे थे। उनको कौन रोके? रोकें तो वे सुनते कहा? भ्रमरोंके सुस्वर गायनोंके वश होकर भरतजी हल्की नींद ले रहे थे। इधर कुसुमाजी और उत्साहमें मग्न थी।

पति देवको वह सुलाकर सबसे पहिले रसोई घरमे पहुंची थी। वहा जाकर हाथ पेर धोकर उसने भोजन किया। आज अपने घरमें पति देव भोजनके लिये आये है इस हर्षसे ही उसका अर्ध पेट तो भरगया था। फिर बाकी कुछ २ अन्न पानोंमे भरकर उसने तृप्ति प्राप्त की, भोजनानंतर वह आराम मदिर में गई। वहापर आदोलन मंचपर जरा लेट गई। इधर उधरसे दासियोने आकर उसकी सेवा करना प्रारभ किया। उसे भी अन्नके मदसे जरा नींद लगी परतु उसने जल्दी आख खोलली। मनकी आकुलता में सुखनिद्रा भी नही आसकती है।

ऊपर महलमें अकेले पतिको छोडकर आई है फिर उसे निद्रा किस प्रकार आसकती है? उसे तो हृदयमें ऐसा अनुभव होरहा है कि मंने कोई बडे भारी अपराध किया है। इसलिये जल्दी ही ऊपर जानेके विचारसे उस शय्यासे उठी।

इतने में नाटक में पार्ट करनेवाली दो स्त्रिया उस के पास आई और कहने लगी कि देवी! आज हम कोई नाटकका अभिनय करके बतायगी। उसको देखनेके लिये आप राजासे प्रार्थना कीजियेगा। कुसुमाजीने जवाब दिया कि अच्छी बात! मैं पति-देव को कहूंगी! आप लोग तैयार रहना।

इस प्रकार कहकर उन दोनोंको भेजकर अपने अंतपुरकी उसने दरवाजे बंद कर लिये और अपने शृंगार मंदिर में जाकर वहां अपना उसने शृगार करलिया।

दर्पण में देखती हुई अपने तिलकको सुधारती हुई वह अपने आप एक दफे हंसी। अच्छी तरह अपनी सजावट कर अनेक सुगंध द्रव्योंको साथमें भी लेकर ऊपर महलके लिये रवाना होगई। आभरणकटिसूत्रके झंझण शब्दको करती हुई वह महलकी सीढियोंपर चढ रही थी। ऊपर चढनेके बाद इस ख्यालसे कि पतिदेवकी निद्रामें कोई बाधा न हो अत्यंत निस्तब्धताके साथ जाने लगी। दूरसे झाककर देखने लगी कि पतिदेव अभीतक जगे या नहीं। इस प्रकार जरा भी शब्द न करके वह पतिकी ओर जारही थी। क्या उस प्रकारकी पतिभक्ति घर घरमें हो सकती है?

इधर वह कुसुमाजी भरतकी ओर आरही थी। उधर चक्रवर्ति थोडी सी निद्राकर फिर जाग उठे थे एव आत्मध्यानमें लीन हो गये थे। जिस प्रकार कि सूर्य को घेरनेवाला मेघ बहुत देरतक टिक नही सकता उसी प्रकार उस पुण्य पुरुपको घेरनेवाली निद्रा भी अधिक समय तक घेर नही सकी। कुछ ही देर बाद वे जागृत होकर उसी शय्यामें आत्मयोगमें मग्न होगयें। बाहरसे देखनेवालोंको यह मालुम होरहा था कि भरतजी निद्रामें मग्न हैं। परंतु वे अपनी आत्मामें मग्न थे। आंखोंको बंदकरके मनको अपनी आत्मामें लगा सुज्ञान समुद्रमें गोते लगा रहे थे। धन्य है!

उस समय ज्ञानज्योतिमय आत्मा आपूर्ण शरीर उन्हे दर्शन देरहा था। जैसे २ आत्माका दर्शन अधिकाधिक होरहा है वैसे २ कर्मोंका अंश उतरता हुआ जारहा है। जैसे २ कर्मोंका अंश कम होता जारहा है वैसे २ ज्ञानका अंश बढता जारहा है। ज्ञानके अंश जिस प्रकार बढरहा है उसी प्रकार सुखकी मात्रा भी वृद्धि-

भरतजी कहने लगे कि उसके मुखको देखते वक्त तो ऐसा मालुम होता है कि वह हमसे आज झगडा करनेके लिये आई है। क्या यह सच है ? उससे पूछकर बोलो तो सही !

तब गडबडी से कुछ कहने लगी कि स्वामिन् ! मैं झगडा करनेके लिये नहीं आई हूं। अपि तु इसमें कोई गूढ प्रयोजन है। उसे मैं पतिदेवके साथ विचार करनेके लिये आई हू ।

गूढ प्रयोजन क्या है ? बोलो तो सही ऐसा फिर भरतने कहा।

तब वह कहने लगी कि स्वामिन्! उसे मूर्खोंको कहना चाहिये आप सरीखे बुद्धिमानोंको उसे समझाने की जरूरत नही है। इस प्रकार वह बहुत गंभीरतासे कहती हुई भरतके पादकमलको बहुत भक्तिसे दाबने लगी। पादको दाबती हुई उसे चक्रवर्तीने पैर दबानेकी तुह्मारी कुशलता बहुत अच्छी है ऐसा कहकर दोनों पैरों से उसे दबाया।

स्वामिन् ! क्या आप मुझसे प्रसन्न हुए, इसलिये मुझे पैरसे लात मारा ? हर्ज नहीं ! प्रसन्न होकर ठुकराया इसमें भी मुझे हर्ष ही है।

उसी समय हसते २ सम्राट् उठे, उसके बाद आगे क्या हुआ ? इसका वर्णन करनेकी आवश्यकता नहीं है। उसकी शोभा का वर्णन करने जायेंगे तो जरा हल्की बात हो जायगी।

वह बुद्धिमान् था, वह बुद्धिमती थी, दोनोंने मिलकर इस प्रकारका विनोद किया जिसे मुह खोलकर कहना उचित नहीं।

ऐसे विषयोंको खोलकर कहनेकी आवश्यकता नहीं । रसिक दंपति मिलगये इतना कहना ही पर्याप्त है। उन्होने क्या रसीला व्यवहार किया इसे कहना ठीक नहीं है।

कलावान् व कलावती दोनों मिलगये इतना कहना पर्याप्त है।

अलिप्त रहने की युक्ति रत्नाकरसिद्धमें नहीं होती ? अवश्य होती। परंतु वह गुप्त पर्देका है। पर्देमें रहनेमें ही उसकी शोभा है। इसलिये उसे पर्देमें ही रखा है।

कुत्ता, घोडा व पशुओं का संसर्ग जिस प्रकार देखनेमें आता है उसी प्रकार हाथी व हाथिनी का संयोग कहीं देख-नेमें आसकता है ? हीन स्त्रीपुरुषोंके संसर्गके वर्णनके समान महापुरुषोंके संसर्ग सुखका वर्णन किया जासकता है ?

सामान्य पक्षियोंकी रति देखी जासकती है, राजहंसकी रति देखनेमें आसकती है ? इसी प्रकार तुच्छोंके संयोग के समान गुणशीलयुक्त सज्जनों के संयोग का वर्णन करना उचित है ? कभी नहीं।

लोकके अन्य ग्रामीण व नगरवासी पुरुषोंकी कामक्रीडाको जिस ढंगसे वर्णन किया जासकता है उस प्रकार भरत चक्रेश्वर के कामक्रीडा सौभाग्यका वर्णन किया जासकता है ?

लोककी अन्य स्त्रियोंके रतिसुखको जिस प्रकार कहा जास-कता है उस प्रकार महाशीलवती पतिव्रता कुसुमाजीका वर्णन करना उचित है ? नहीं।

सम्राट् भरतने उस अकेली कुसुमाजीको खुश किया इसमें आश्चर्य क्या है ? एक साथ ९६ हजार रानियोंको तृप्त करनेकी शक्ति उसमें मौजूद है। क्या वह कोई सामान्य राजा है ?

कामरूपी घोडेका लगाम भरतके हाथमें है। वह चाहे जैसे उसे ढीला कर सकता है। कस करके रख सकता है। उसकी चालको तेज व धीमी करनेमें वह अत्यंत चतुर है।

सम्राट् का ख्याल है कि वे जिस सुखको भोग रहे हैं वह पापरहित सुख है। क्योंकि उसे भोगते हुए भी वे अपनेको भूल नहीं रहे हैं। वे उस सुखको बाह्य व हेय सुख समझ रहे हैं,

इसलिये भोगते हुए भी कर्मोंकी निर्जरा हो रही है। भरतजी अपने मनमें समझ रहे हैं कि यह मात्र परमात्मा सुख शाश्वत व उपादेय है। उसका अतिरिक्त सर्व आत्माके साथ पक्षसंगके समान है।

जिस प्रकार शिकार होनेपर शरीरशोधन कर चित्तशांति की जाती है एवं उस हालतमें वह मनुष्य स्नान करता है उसी प्रकार भरतजी भी कामरूपी शिकार पूर्ण होनेपर स्त्रियोंके साथ क्रीडाकर उसे ज्ञान करते थे एवं आत्म स्नान अर्थात् अपनी आत्मामें लीन होते थे।

उत्तम स्त्रियोंके साथ भोग करनेसे भरतजीको कर्मोंका संवर तो होना ही था साथमें वे पुरातनीय कर्मोंको भी इस प्रकार उनसे लाकर गिराते थे सचमुचमें भरतजी एक वीतरागी भोगी हैं।

अन्य भोगियोंके भोगमें उदासीनता, उपेक्षा व मनमें अप्रसन्नता आदि बातें भी रहा करती हैं। परन्तु भरत व कुसुमाजीका संयोग पुष्प व भ्रमरके संयोगके समान है। आनंद समुद्रमें डुबकी लगा रहे हैं। लीलानन्दीमें मग्न हैं। या उन दोनोंकी क्रीडा झूले पर चढ़े हुए मोर मोरनीके समान है।

पांचों इन्द्रियोंकी तृप्ति हुई। भरत व कुसुमाजी को किंचित् तंद्रा आई। दोनोंने आलिंगन करके भुजबन्धमें थोड़ीसी निद्रा ली। दोनों अत्यन्त प्रसन्न चित्तसे सो रहे थे। निद्रावस्थामें स्वप्न पड़ने लगा। स्वप्नमें भरतजीको चिद्रूप परमात्मा दिख रहा है। कुसुमाजीको भरतका रूप दिख रहा है।

कुछ देरके बाद वह मूर्च्छा दूर होगई। " निरंजनसिद्ध " शब्दको उच्चारण करते हुए भरतजी वहांसे उठे। उसी समय कुसुमाजी भी उठी।

उसी समय इधर उधरसे बहुतसे दासदासी आये। उन लोगोंने

गुलाबजल, कपूर, तांबूल आदि आवश्यक पदार्थोंको लाकर सम्राट्
की सेवामें उपस्थित किये। उनको सम्राट्ने ग्रहण किया।

तदनंतर मनोरंजनके लिये वीणावादन कराया गया। वीणा
कलामें कुसुमाजी अत्यंत प्रवीण थी। उन्होंने अनेक प्रकारके
कौशल्यको बतलाते हुए वीणावादन किया जिससे चक्रवर्तीका
मन अत्यंत प्रसन्न होगया। पुनः इस प्रसन्नताके उपलक्ष्यमें भरत-
जीने उसके साथ अनेक मधुर व्यवहार किये।

तदनंतर कुसुमाजीने पतिदेवसे प्रार्थना की कि स्वामिन्!
आपके भोजनका समय होगया है। उठ चलिये। भरतजी उठे
व वहांसे जाकर शुद्धिविधान किया एवं पूर्ववत् आनंदके साथ
भोजन किया। तदनंतर तांबूल वगैरहके द्वारा उनका सत्कार
किया गया।

कुसुमाजी सम्राट्से प्रार्थना करने लगी कि स्वामिन्! आप
दुपहरको जब इधर आये तब दो स्त्रियां मेरे पास आई थी।

सम्राट् कहने लगे कि क्या हुआ।

स्वामिन्! उन्होंने प्रार्थना की है कि आप रानीको व नृत्य
कला प्रदर्शित करना चाहती हैं। वे इसकेलिये आपसे प्रार्थना
कर गई है। इसलिये कृपया इसे स्वीकृति दीजिये ताकि उनका
उत्साह भंग न हो।

भरतजीने उसे सहर्ष स्वीकार किया। साथमें कुसुमाजीके
व्यवहारसे अत्यंत संतुष्ट होकर उसे अनेक रत्ननिर्मित आभूषणों
से सन्मानित किया।

कुसुमाजी कहने लगी कि स्वामिन्! आप यहां पधारे यही
मुझे स्वर्गसंपत्तिके आगमनके समान होगया है। मैं आपकी दासी
हूं। इसप्रकार के बाह्योपचारकी क्या आवश्यकता है?

तब भरतजी कहने लगे कि देवी! वहींपर सभामें मैं तुम्हे

देना चाहता था। परन्तु वहांपर सबके सामने तुम लेनेको तैयार नहीं होती। इसलिये यहांपर एकांतमें दे रहा हूं। अब इन्कार मत करो। मेरी इच्छा की पूर्ति करनी ही पडेगी।

कुसुमाजी—स्वामिन्! मेरे पास आभूषणोंकी अभी कमी नहीं है। बहुत ज्यादा है। इसलिये क्षमा कीजिये।

भरतजीने उसी समय कुसुमाजीके हाथ धर लिये व कहने लगे कि तुम्हे मेरा शपथ है! अब कुछ भी मत बोलो। यह लेना ही पडेगा। बादमें उन्होंने आभूषणोंकी एक बडे भारी गठडी कुसुमाजी के हाथमें रखा। कुसुमाजीने भी उसे मुसुकराते हुए स्वीकार किया

उसके बाद कुसुमाजीकी बहिन व और भी जो परिवार स्त्रिया दासिया वगैरह थीं उन सबको उत्तमोत्तम आभूषणोंसे सन्मानित किया इतने में सूर्य अस्ताचलकी ओर चला गया।

तदनंतर भरतजी शुद्ध होकर ऊपरकी महलमें चले गये। वहांपर जिनेंद्र व सिद्ध परमेष्ठियोंकी उचित रूपसे पूजाकर अचलित पद्मासनमें विराजमान होगये। आख मीचकर परमात्माके योगमें मग्न होगये।

उस समय थोडी देर पहिले अपनी रानीके साथ जो सरस व्यवहार किया था उसे एकदम भूलगये इतना ही नहीं उस प्रिय रानीका भी उन्हे अब कोई स्मरण नहीं है।

उस समय भरतजी केवल अपनी आत्माको जान रहे है। इसके सिवाय और किसीका वहा पता नही है।

भोगोंको खूब भोगकर जब योगमें रत होते थे तब उनको भोगोंकी वासना बिलकुल नही रहती थी यही विशेषता है। एक कपडा छोडकर दूसरे कपडे को पहनने वालेके समान उसकी दशा उस समयमें थी।

दोनों दृष्टियोंको उन्होने बंद करली व एकमात्र भावदृष्टिको

खोलली। उस समय उनका शरीर भी पौद्गलिक नहीं था। अष्ट गुणात्मक शरीर से उस इष्ट परमात्माका दर्शन अच्छीतरह करने लगे।

शरीर जिनमंदिर था, मन सिंहासन था, उसके ऊपर निर्मल आत्मा जिनेंद्र भगवंत था।

इस प्रकार उस समय सर्व प्रकारकी बाह्य चिंताओंको छोड कर अपने शरीरमें जिनेंद्र भगवंत का अनुभव कर रहे थे।

इसीसमय कर्म बराबर खिरता जाता है। जैसे २ कर्म खिरता जारहा है वैसे ही आत्मामें उल्हास बढता जाता है। उल्हासके साथ २ प्रकाशकी भी वृद्धि होरही है। कभी प्रकाश व कभी अंधकार इसप्रकार तरह तरहसे आत्माके सुखका दर्शन उन्हे हो रहा है।

अपनी बुद्धिके विकल्पसे ही उन्होने एक सिद्ध बिंबकी रचना की व उसकी पूजा करने लगे। तदनंतर उसको भी गौण-कर "सिद्धोऽहं" इस प्रकारके अनुभव में थे। सचमुचमें उस समय उनका सुख जिन व सिद्धोंके समान ही था।

इस प्रकार सब बाह्य विकल्पोंको हटाकर अपने आत्मयोगमें उन्होंने चार घटिका समयको व्यतीत किया। चार घडीके बाद आख खोलली। सामने ही कुसुमाजी खडी है। कहने लगी कि स्वामिन्! समय होगया है। अब नाटकशालामें पधारना चाहिये. उसी समय सम्राट् 'जिनशरण' शब्दके उच्चारण करते हुए वहा से उठे। और योग्य शृङ्गार कर नाटकशालाकी ओर गये। वहां पर पहिलेसे सब तैयारी थी। नाटक शाला तो स्वर्ग विमानके समान थी।

रात्रीके बारह बजे तक वहापर उन्होंने नाट्यकला देखी, नेत्रमोहिनी, चित्तमोहिनी आदि स्त्री पात्रोंने अपना अभिनय

उसी समय उठकर सर्व प्रथम उन्होंने जल लेकर कुरला किया। फिर पल्यकासनमें बैठकर आत्मानुभव करने लगे।

वह ब्राम्ह मुहूर्त था। एवच किसीका भी हल्ला गुल्ला नहीं था। इसलिये अत्यंत तन्मयताके साथ आत्मयोगमें लगे रहे। मस्तकसे लेकर पादपर्यंत उस समय उन्हे अपना अनुभव होरहा था।

उस मुहूर्तका नाम ब्राम्ह तो था ही, क्यों कि ब्रम्ह नाम आत्माका है। वह समय उस ब्रम्ह के दर्शन के लिये अनुकूल था। इसलिये सबसे पहिले उन्होने शरीर के वायुवोंको ब्रम्ह रंध्रको दौडाया। और शरीरके अदर ब्रम्हको देखने लगे।

सम्राट् उस समय हंसतूल तल्प मे विराजमान थे, हसके समान ही इनकी महती वृत्ति थी, जिस प्रकार पानी को छोडकर हंस दूध ही ग्रहण करता है उसी प्रकार सम्राट् भी शरीरको छोडकर आत्माको ही ग्रहण करने लगे।

आत्मा वचन से अगोचर है, आखोंसे देखने मे नहीं आसकता है। क्यों कि उसे कोई रूप नहीं है। हाथसे पकडनेको नही आसकता है, क्योंकि वह जडस्कंध नही है। परंतु भरतजी बडे चतुर थे उन्होने उसे देख लिया, उस संबंधमें बोले, इतना ही नही उस आत्मा को साक्षात् पकड लिया। क्या वह कोई गरीब तपस्वी है? नहीं? जिसने भावमें इतनी तैयारी की है कि वह ऐसे शून्यरूपी आत्माको भी साक्षात्कार करले वह राजयोगी भरत सचमुचमें गरीब नहीं है। अन्य राजा तो धन होते हुए भी गुणगरीब है।

लोकमें शरीरको धोकर, शरीरको ही सुखाकर बाह्य जनोंको रंजन करनेवाले तपस्वी बहुत हो सकते हैं। परंतु यह भरत क्या वैसा है? नहीं। यह तो मनको धोकर साफ करता है। और उसी

गायन का विषय था कि स्वामिन् ! अरुणोदय हुआ ! किरणोदय भी हुआ । अब आप कृपाकर स्त्रियोंके बाहुपाशसे बाहर तो आईये ! स्वामिन् ! लोग सूर्यको लोकबंधु कहते हैं । सचमुचमें जगत्के उद्धार करनेवाले लोकबंधु तो आप हैं । इसलिये सूर्य अपने मस्तकको ऊंचे उठायें इससे पहिले ही आप बाहर आकर जगत्का उद्धार तो कीजिये ।

स्वामिन् । आपके राज्यमें कोई चिंता नहीं है । अत एव आपको भी किंचिन्मात्र भी चिंता नहीं है । फिर भी आप दीर्घ राज्यको पालन कर रहे हैं, एवं निश्चिंत वैभव है । सर्व जनकी चिंताको दूर करनेके लिये आप राजाके वेषमें चिंतामणि हैं । जल्दी बाहर तो आइये ।

शत्रुरहित राज्यको पालन करनेवाले आप हैं । हजारोंकी संख्यामे रहनेपर भी आपकी स्त्रियोंमे जरा भी ईर्ष्या नहीं है । रातदिन राज्यमें पालन करनेमें जो सतप्त हैं उनको भी आप हर्ष पहुचानेवाले हैं । स्वामिन् ! जरा बाहर तो आइयेगा ।

भोगसे पागल होकर जो धर्म योगको भूल जाते हैं वे जाकर अधोगतिमे पडते हैं । उनकी वृत्तिपर आप हसते हैं । भोगोमें रहकर भी भोगियोंके समान रहनेवाला हे भोगियोंके राजा ! उठो तो सही ।

वृत्तकुचवाली स्त्रियोंके अंतरंगको आप अच्छीतरह जानते हैं इसमे आश्चर्य नहीं है । परंतु चित्तत्वके अनुभव व रहस्य भी आपको अवगत है । उस राज्यको आप रातदिन पालन करते हैं । राजोत्तम ! जरा हमें दर्शन तो दीजिये ।

स्वामिन ! आप शुद्धोपयोग संपन्न हैं । निरंजन सिद्धकी आराधनामें चतुर हैं शुद्ध निश्चय मार्ग में संलग्न है । इतना ही नहीं रत्नाकर सिद्धके आप पसंदके राजा हैं । उठिये तो सही ।

अथ पर्वाभिषेक संधि ।

आज पर्व दिन है । सम्राट् जिन मंदिरमें आकर बहुत वैभव के साथ जिनाभिषेक करेंगे ।

सम्राट्के चातुर्यको कौन वर्णन कर सकता है । यद्यपि वे अत्यंत पवित्र देहको धारण करनेवाले हैं । उनके शरीरके लिये आहार तो है, नीहार नहीं है। फिर भी उन्होंने विचार किया कि मैं बहुत देरसे अपनी पत्नियोंके साथ था इसलिये पूजनसे पहिले एक दफे स्नान अवश्य कर लेना चाहिये । इस विचारसे वे पूजन से पहिले स्नान गृहकी ओर चले ।

भरतजी दो प्रकारके स्नान किया करते थे । एक भोगस्नान, दूसरा योगस्नान, शरीरको साफ व सुंदर बनानेकेलिये अर्थात् भोगके प्रयोजनसे स्नान करना उसे भोगस्नान कहते हैं । एवं देवपूजा, ध्यान, पात्रदान आदिकेलिये स्नान करना वह योगस्नान है ।

भोगस्नानकेलिये मालिश करनेकी आवश्यकता होती है । तेल, साबुन व अन्य सुगंध द्रव्यों की भी जरूरत रहती है । पानी भी अधिक लगता है । अतएव उसमें समय भी अधिक लगता परंतु योगस्नानके लिये इन सब बातों की आवश्यकता नहीं होती है इसलिये वह बहुत शीघ्र होजाता है ।

सम्राट् प्रतिनित्य स्नान किया करते थे । एक दिन योगस्नान, दूसरे दिन भोगस्नान, इसी क्रमसे उनका स्नान होता था । एवंच अनवरत स्नान किया करते थे ।

आज पर्व दिन होनेसे उन्होंने भोगस्नान नहीं किया । क्यों कि आज उन्हे भोगसे कोई प्रयोजन ही नहीं है ।

बहुत जल्दी स्नान गृहमें प्रवेश कर उन्होने योगस्नान किया, तदनंतर वहांसे शृंगारशालाकी ओर चले ।

शृंगारशालामे प्रवेशकर उन्होने अपने शरीरका शृंगार किया।

शृगार भी उनका दो प्रकार से होता थ । एक मोहन शृगार, दूसरा मोक्षशृगार, अपनी स्त्रियोंको प्रसन्न करनेवाले वस्त्र व आभूषणोंसे अपने शरीरको सुसज्जित करना यह मोहन शृंगार है। मोहरहित मोक्षलक्ष्मीको प्रसन्न करनेवाले जिनपूजाके योग्य वस्त्र आभूषणोंसे शरीरको सुसज्जित करना यह मोक्ष शृगार है। क्योंकि जिनपूजा मोक्षाग क्रिया है। उस समय चटकमटक रहित निर्मोह अलंकारोंकी ही प्रधानता रहनी चाहिये।

इसलिये सम्राट्ने जिनपूजाको चलते समय मोक्षशृंगारको धारण किया।

उन्होने सबसे पहिले दीर्घ केशोंको झटकारकर उन्हे अच्छी तरह वाध लिया। ललाटमें श्रीगंधका स्थूल तिलक लगाया वह साक्षात धर्म चक्रके समान मालुम होता था। या यों कहिये कि कर्मकाण्डको तिरस्कृत करनेवाले चक्र तो नहीं ऐसा मालुम होता है। उसी प्रकार हृदय, भुजायें, कठ आदि स्थानोमें भी श्रीगंधसे उन्होने षोडशाभरणोंकी रचना की।

रत्नोंसे निर्मित कुडल, कठहार, कटिसूत्र आदि उस समय उनके शरीरमें अच्छी शोभा देरहे थे। हाथकी अगुलियोंमें सुवर्ण व रत्न निर्मित अंगूठी, हाथमें सुंदर कंकण व शरीरमें मोती से निर्मित यज्ञोपवीत आदि बहुत सुंदर मालुम होते थे।

उन्होंने अब शुद्ध रेशमी वस्त्र को पहन रखा है। पैरमें चादीके खडाऊ है। इस प्रकार अत्यत शुचिर्भूत होकर शात चित्तसे जिनमंदिर की ओर रवाना हुए।

अब उनकी सख्त आज्ञा है कि जिन मन्दिरको जाते समय मार्ग में उनकी कोई प्रशसा न करें, इतना ही नही कोई हाथ भी नहीं जोडें, अब उनके साथ कोई राजकीय वैभव नही है

छत्र नही, चामर नही और कोई सेवक नही, राजा होनेका अभिमान भी नही है। इन सब बातों को छोडकर उन्होने अब केवल ससार भय व भक्तिको अपना साथ बनालिया है। अर्थात अत्यंत संसार भय व भक्तिके साथ युक्त होकर एक शुद्ध श्रावकके समान जिनमदिर में जारहे है।

मार्ग में अपनी २ महलसे निकलकर उनकी रानियां भी उनके ही साथ होरही हैं।

रानियोंको पहिलेसे मालुम था कि आज पतिदेवको संयमका दिन है। इसलिये अपन लोगोंको भी उचित है कि अपन भी संयमसे ही दिन बितानेकेलिये जिन मंदिरको जावें। इस विचारसे सभी रानिया उनके समान ही योगस्नान एवं मोक्षशृंगार कर मार्गमें पतिके साथ होने लगी। रानियोंने भी आज मोहन शृंगार नहीं किया है। जिनसे विकार उत्पन्न न हो ऐसे ही वस्त्र आभूषणोंको पहन कर वे आई। विशेष क्या? भरत व उनकी देवियां सामान्य चतुर नहीं है। उन्होंने परस्पर देखनेपर भी कामविकार जरा भी उत्पन्न न हो इसकी व्यवस्था उन्होंने कर रखी थी। सचमुचमें वे जानते थे कि पुण्यदिनमें पुण्यमय विचारोंसे रहना वे पुण्यपुरुष जानते थे।

आश्चर्य है! वे पतिपत्नी एक दूसरेको देखते थे, परन्तु किसीके मनमें विकार उत्पन्न नहीं होता था। निर्विकार व विनय भावकी ही वहापर मुख्यता थी।

यद्यपि उनको मालुम था कि पूजन व अभिषेकके लिये विपुल सामग्री आनेवाली हैं फिर भी भगवंतके दरबारमें रिक्त हस्तसे जाना यह शिष्टाचार नहीं, इस विचारसे उन्होंने एक एक फल अपने हाथमें ले रखा था।

चारों ओरसे रानियां जारही हैं। बीचमें सम्राट् जारहे हैं।

उनके हाथमें माहुलुंगका फल है । इधर उधरसे बहुतसी स्त्रिया अध्यात्म गानको गाती हुई जारही है । अनेक परिवार स्त्रिया तरह तरहके अर्चनाद्रव्योंको लेकर सम्राट्के पीछेसे चल रही है । दोनों ओरसे गायन व आगेसे शंखध्वनि, इनके साथ सम्राट् बहुत वैभवके साथ जारहे है ।

राजमहलके पासमें ही उद्यान बनके बीच श्री भगवान् आदि प्रभुका मंदिर है । वहीं पर जाकर चक्रवर्ती जिनयज्ञ क्रिया करते हैं ।

बाहरके परकोटेके बाहर उन्होने खडाऊ उतार दिया एवं अं-दर प्रवेश कर गये । वहापर सबसे पहिले मानस्तंभको प्रदिक्षणा देकर अपनी पवित्र देवियोंके साथ आकाशचुंबित तीन सुवर्णसे निर्मित परकोटोंको पार किया । वहापर जिनेंद्रमंदिरका उन्होने दर्शन किया ।

उस जिनमंदिरके सौंदर्यका क्या वर्णन करना ? भरतजीके रहनेकी महल सुवर्ण व रत्नोंसे निर्मित है । अब उन्होंने अपने स्वामी आदि प्रभुके मंदिरको भी रत्न व सुवर्णोसे अपनी महलसे भी अधिक सुदर बनाया है यह कहनेकी क्या आवश्यकता है ?

राजमंदिरको निर्माण करनेवाली सुरशिल्पि जिनमदिरका निर्माण नही कर सकता है ? उसका वर्णन इस लेखनीसे नही होसकता है । उसे कल्प विमान कहसकते है अथवा मंदराचल तो नहीं ? समवशरण तो नही ? नही नही नही ! वह सर्वार्थ सिद्धि विमान के समान है । अथवा अनेक सुवर्ण रत्नोंसे निर्मित सुंदर पहाड है ।

जाने दो ! हमारे मनमे और एक कल्पना आती है । वह जिन मन्दिर जिनेंद्र भगवंतके पचकल्याणोंको अच्छी तरह सूचित कर रहा था ।

उसके ऊपर चढे हुए मोती व माणिकके कलशका प्रकाश इस प्रकार फैल रहा था कि मानो वे साक्षात् सूर्य चंद्रोंको स्पष्ट कह रहे है कि तुह्मारी इधर आवश्यकता नहीं है, तुम लोग उधर ही रहो। हम यहांपर अच्छी तरह प्रकाश कर रहे हैं।

ध्वज पताकाओंके हिलते समय ऐसा मालुम होता है कि वे आकाशसे देवोंको जिनदर्शनके लिए बुला रहे हैं। इतना ही नहीं अनेक रत्नघटा सुंदर शब्दोंद्वारा उन देवोंको जोर जोर से आवाज कर इधर आकर्पित कर रहे हैं।

स्थान २ पर अनेक शासन देवताओंकी पुतलिया खडी की गई हैं। उनको देखनेपर मालुम होता है कि वे हस रही हों, या बोलनेके लिये आतुरित हों, या किसीकी ओर उत्साहके साथ देख रही हों।

जिनेन्द्र व सिद्धोंकी मूर्ति बहुत जगमगाहटके साथ शोभित हो रही है। उनमे शातिरस ओतप्रोत होकर भरा हुआ था।

समवसरणमें भगवान् आदिनाथ स्वामी चतुर्मुख होकर विराजमान है। उसी प्रकार इस मंदिरमे भगवान्की चतुर्मुख प्रतिकृति है। मालुम होता है कि यह साक्षात् समवसरण ही हैं। उसके समान ही अत्यत सुंदर है।

समस्त संपत्तियोंके आधार भूत पवित्र जिनमंदिरको साम्राट्ने निष्कलक चारित्र को धारण करनेवाली अपनी राणियोंके साथ त्रिकरण शुद्धिपूर्वक हाथ जोडकर तीन प्रदक्षिणा दी।

तदनंतर अपने चरणोंको धोकर अंदर प्रवेश कर गये और विलकुल सामने श्री आदिनाथ भगवंतकी मूर्तिका दर्शन किया। दर्शनांजलिकी दृष्टिसे सवसे पहिले सुवर्ण पुष्पोंको समर्पण कर हाथ जोडकर खडे हुए एवं श्री भगवंतकी स्तुति करने लगे।

केवलज्ञान रूपी महाराज्यके स्वामी देवाधिदेव श्री भगवान् आदिनाथ स्वामीकी प्रतिकृतिकेलिये जय हो!

प्राकृत, संस्कृत, कर्णाटक, पैशाचिक, मागधि आंध्र, और शूरसेनी आदि अनेक भाषाओंमें उन लोगोंने भगवंतकी स्तुति की।

हे देवदेवोत्तम ! आपका दिव्य शरीर रत्नके समान अत्यन्त उज्ज्वल है, आपकी जय हो।

हम लोग जन्ममरणरूपी संसारके फंदेमें पड़कर अत्यन्त कष्ट पारही हैं। उसे दूरकर हे स्वामिन ! आप ही हमारी रक्षा करें।

स्वामिन ! आपके पुत्रके समान हमें शुद्धात्मयोगका अनुभव नहीं हो सकता है। फिर भी आपके चरणोंमें हम श्रद्धा रखती हैं।

स्वामिन् ! हमें अभेदभक्तिके ध्यानमें मन नहीं लगता है। उसमें चित्त चंचल होता है। इसलिये हमें उसके लिये शक्ति व योग्यता दीजियेगा। कृपा कीजिये।

यह स्त्रीवेष परमकष्टका है। यदि आपने हमें आत्मयोगके मार्गको दिखलाया तो हम अवश्य ही इस स्त्री जन्मको नष्ट करेंगी। इस प्रकार तरह तरहसे स्तुति करने लगी।

इतनेमें भरतने अपने ध्यानका विसर्जन किया एवं अपनी स्त्रियोंके साथ मुनिगणकी ओर गये। वहांपर मुनियोंके चरणमें अत्यंत विनयके साथ मस्तक रखा। बादमें उन योगिराजोंके साक्षी पूर्वक दिग्व्रत, देशव्रत आदि व्रतोंको ग्रहण किया, साथमें आज हम लोगोंको अनशन (उपवास) व्रत रहे यह भी निवेदन किया। निष्पाप धर्मांग संबंधी बोलना व देखना हम लोगोंमें परस्पर आज रहेगा, अपितु आज सुरतकी आवश्यकता नहीं, इसलिये हमें ब्रह्मचर्य व्रत प्रदान कीजिये यह कहकर अपनी स्त्रियोंके साथमें ब्रह्मचर्य व्रतके कंकणसे बद्ध हुए।

तदनंतर उन तपोधनोंसे प्रार्थनाकी कि स्वामिन् ! महाभिषेक व पूजाको देखनेके लिये पधारिये, एवंच उनकी सम्मति पाकर वहांसे रवाना हुए। श्री भगवान् आदिनाथके मंदिरमें जाकर

महाभिषेक करनेको प्रारंभ किया।

अभिषेक करनेवाले आप महापुरुष भरत सम्राट हैं। अ-भिषेक करने योग्य प्रतिमा भगवान आदि प्रभुकी है। ऐसी अव-स्थामें उस अभिषेकका वर्णन क्या करें? वह जिनमंदिर चतुर्मुखी था यह पहिले ही कह चुके हैं। ऐसी हालतमें भरतजीको भी अपना चार रूपोंका धारण करना पड़ा, चार रूपोंको धारण कर अत्यंत भक्तिसे अभिषेक करने लगे।

बाहरसे अनेक तरहके बाजेबाज बजने लगे, चारों दरवाजोंसे योगिगण, अर्जिकायें, श्रावक, श्राविकायें व रानियां अभिषेकको देख रही हैं, एवं जयजयाकार शब्दकी घोषणा हो रही है।

मूर्ति पांच सौ धनुष ऊंची है। एवं अभिषेक करनेवाले सम्राट् व उनकी सम्राज्ञियां भी पांचसौ धनुष ऊंचे हैं। अब पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं कि उस अभिषेकमें किस प्रकार आनंद आया होगा।

अत्यंत दीर्घ शरीर होनेपर भी सम्राट्का शरीर विकृत नहीं मालुम होता था, उसकी लंबाई, मोटाई, ऊंचाई आदि यथावस्थित होनेसे सर्व अंग अच्छी तरह शोभा देते थे। उस दीर्घ मंदिरमें दीर्घदेही भरतने दीर्घ प्रतिमाको जिस दीर्घ वैभवसे अभिषेक किया उस महत्ताको श्री आदि भगवंत ही जानें।

जलाभिषेक

आकाशके बादल फूटकर स्वच्छ जलवर्षा जिस प्रकार मेरु पर्वतके ऊपर हो उसी प्रकार श्री भगवान आदिनाथ पर सम्राटने अनेक कुंभोंसे भरकर स्वच्छ जलाभिषेक किया।

नालिकेर रसाभिषेक

आकाश गंगाके पानीको हरे रत्नसे निर्मित घडेमें भरकर स्नान करा रहे हो मानो उस प्रकार कच्चे नारियल के पानीसे श्रीभगवत

का अभिषेक किया।

तदनंतर नारियलकी गरीसे श्री भगवत का अभिषेक किया जो ऐसा मालुम होता था कि शायद आकाश समुद्रके फेन सबके सब इकट्ठा होकर सम्राट के हाथमे आकर सरक पडरहे हों।

कदलीफलाभिषेक.

यह क्या है? ताडके फूल तो नही है? ऐसा भ्रम उत्पन्न करते हुये श्री भरतजी केलेके फलसे अभिषेक कर रहे थे।

शर्कराभिषेक

अच्छी तरह हाथमे पकडने मे भी नही आते, और पकडें तो इधर उधर सरकते हैं ऐसे शुद्ध शक्कर को हाथमें लेकर भरतने बहुत भक्तिसे अभिषेक किया।

इक्षुरसाभिषेक

कामदेवको जिनेंद्र भगवंतके सामने लज्जा उत्पन्न होगई, इसलिये उसने समझा कि इक्षुदण्डमें माधुर्य नही है। अतएव उसने इक्षु लाकर भगवंतके सामने फेंक दिया है एवं लोकको कह रहा है कि सचमुचमें इस कामसेवनमें कोई सुख नही है। आप सब श्री त्रिलोकीनाथ श्री भगवंत की सेवा करे। इस भावको बतलाते हुए सम्राट इक्षुरसका अभिषेक कर रहे हैं।

आम्ररसाभिषेक

करोडों घडोमें भर भर कर जिस समय उत्तम जातिके आम्र रसका अभिषेक कर रहे थे उस समय ऐसा मालुम होता था कि शायद इस प्रतिमाको नवीन दुरंगी परिधान कराया हो।

यह कल्पना पसंद नही आई, जाने दो, जिस समय सम्राटने उस काकंबी (फळ जाति विशेष) के रससे अभिषेक किया उस समय वह सुवर्णकी मूर्ति हरे रत्नकी मूर्ति ही होगई।

घृताभिषेक

शायद ठण्डे सोनेके शुद्ध रसको ही ये धारा प्रवाह रूपमें छोड रहे हो इस प्रकारके भावको प्रकट करते हुए सम्राट शुद्ध गोघृतका अभिषेक कर रहे थे।

जिस समय उन्होंने घृताभिषेक किया उस समय ऐसा मालुम होता था कि कोई सोनेकी नदी बहरही हो।

दुग्धाभिषेक.

क्षीर समुद्र कहीं आकाशमें तो नही आया, नहीं तो इतना दूध कहांसे? इस प्रकार लोग बातचीत कर रहे थे। भरतजी अगणित कुंभोंमें भर भरकर दूधका अभिषेक कर रहे थे।

बडे बडे कुंभोंको दीर्घ बाहुवोंसे उठाकर जिससमय अभिषेक करे उस समय "बुडबुड" "सुड़ सुड़" "ठिकिड" इस प्रकारके शब्द होरहे थे।

दधि अभिषेक

नारियलकी गरीके समान शुभ्र दधिसे सम्राट्ने अत्यंत भक्ति से अभिषेक किया।

क्षीर समुद्रको ही दही डालकर दही जमाकर लाया हो या दधिवर समुद्रको ही यहांपर उठाकर लाया हो, हा! कितना अच्छा हुआ! इस प्रकार सम्राट्के वैभवकी प्रसंशा उस समय होरही थी।

इस प्रकार सम्राट्ने पंचामृतोंको असंख्य कुंभोंमें भर भरकर अभिषेक किया। मुनिगण अभिषेकको देखकर जयजयाकार शब्द कर रहे हैं। देखनेवालोंको मालुम होता है कि शायद आकाशमें अमृतका समुद्र तो नही है?

असंख्य घडोंमें जिससमय उन्होंने अभिषेक किया उस समय मंदिर की जमीन व पाया घुलकर चला जाता, परंतु वह वज्र

निर्मित होनेके कारण कुछ भी नहीं होसका। सामग्री पहाडके समान एकत्रित होरही है। उसे परिवार स्त्रियां उठा उठाकर ले जारही हैं।

कितनी ही रानियां सम्राटको अभिषेकके लिये सामग्री उठाकर देती हैं। कोई २ आरति उतारती हैं। कोई जय जयाकार शब्द कर रही हैं। वे स्त्रियां घडे २ अमृत घडोंको उठाकर राजाको सौंपती हैं। बहुत बडे घडे हों तो कई मिलकर उठाती हैं। सम्राट् विचारते हैं कि इनको इस कुंभको उठाने में बडा कष्ट होता है। उसी समय वे अपने अनेक रूप बनाकर उन स्त्रियोंके बीचमें खडे होकर उनको उठानेमें मदद करते हैं। कभी २ अपने आप अनेक रूपोंसे उठाते हुए उन स्त्रियोंसे कहते हैं कि आप लोग अभिषेक देखती हुई खडी रहें। भगवान् की स्तुति करें, मैं सब करता हूं। ऐसा कहकर स्वयं अभिषेक करते।

भरतको किस बातकी कमी है? जितनी इच्छा करें, इच्छा करनेकी देरी है। उसी समय उनके हाथमें अमृतके घडे आजाते हैं। फिर अत्यन्त भक्तिसे वे अभिषेक करते जाय इसमें आश्चर्य क्या है?

चांदी, सोना, व रत्नोंसे निर्मित घडोंमें भरे हुए अमृतोंसे जिस समय वे अभिषेक कर रहे थे उस समय ऐसा मालुम होता था कि सम्राट् अनेक वर्णके गेंदोंसे खेल रहे हैं।

कुम्भको उठानेका क्रम, सावधान व भक्तिसे भगवानके ऊपर अभिषेक करने की रीति, गांभीर्ययुक्त गति आदिसे सम्राट् उस समय देवेंद्रको भी तिरस्कृत कर रहे थे।

भरतजी जिस रसोई घरमें भोजन करते थे वहां पर भोजन केलिये उत्तमजातिकी तीन करोड गायोंका दूध लाया

जाता था। ऐसी अवस्थामें आज भरतजीने एक करोड दूधके घडोंसे अभिषेक किया इसमे आश्चर्य की बात क्या है ? उस मदिरके निर्माण मे नीचेसे दूध दही जानेके लिये मार्ग रखा गया था। नही तो भरतजीने जो अभिषेक किया उससे उससमय दूध दहीसे ही वह मंदिर डूब नही जाता ?

पाण्डुक निधिका कार्य ही यह है कि वह इच्छित रसको देवें, ऐसी अवस्थामें चक्रवर्तिने वहापर घी की नदी वहाई व शक्करका पहाड ही लगाया इसमें आश्चर्य क्या है ?

शक्कर फल वगैरे उन्होने जो अभिषेक किया उन्हे परिवार स्त्रियों उसी समय उठाकर लेगई, नही तो उनसे वडे से बडे पहाड भी ढकजाता।

गृहपति नामक रत्न अनेक तरहके पदार्थोंको लाकर देता था, फिर क्या देरी लगती है ?

भगवानके जन्माभिषेक कल्याणमें स्वर्गके देवोंने क्षीरसमुद्र को लाकर अभिषेक किया था। आज सम्राट्ने क्षीर, इक्षु, दधि, घृत इस प्रकार चार समुद्रोंको लाकर अभिषेक किया। क्या इस प्रकारका भाग्य देवोंको भी मिल सकता है ?

इस प्रकार पंचामृताभिषेक अत्यंत भक्ति विनय मंत्रोच्चारण व विधिपूर्वक करनेके वाद सम्राट्ने लाजाग चूर्ण व कुकुमचूर्ण का अभिषेक किया। तदनतर अत्यत सुगधित सर्वौषधि अभिषेक किया। सर्वौषधि अभिषेक करनेके वाद करोड कुम्भोंमें भरकर चन्दनका अभिषेक किया। एवं करोडों कुम्भोंमें गुलावजल से अभिषेक किया।

तदनतर पूर्ण कुभको उठाकर सर्व लोकमें शांति हो इस प्रकार शुद्ध उच्चारणपूर्वक शातिमन्त्र पढकर पूर्ण कुंभाभिषेक किया, एव वादमे १०८ कलशोंमे भरे हुए अनेक वर्णोके पुष्पकी वृष्टिकी जिस समय सभी भव्यगण जयजयकार करने लगे।

इसके अलावा सोना, चांदी व रत्नोंसे निर्मित पुष्पोंकी भी वृष्टिकी। मंदिर जय जयाकर शब्दसे गूंज उठा।

तदनंतर अत्यंत भक्तिसे अष्टविधार्चन पूजन किया, विधि-पूर्वक पूजा करनेके बाद १०८ प्रफुल्लित कमलोंसे मंत्र पुष्प (जाप) देकर साष्टांग नमन किया। उसी समय वाद्यघोष बंद हुआ।

उस मंदिरमें अत्यंत वृद्ध पूजेंद्र था, उसे सम्राटने सूचना दी। उसने अनेक मत्र व विधिपूर्वक जिनेंद्र भगवंतके शासनदेवताओंकी पूजा की, सम्राट खडे २ देख रहे थे।

पूजा व अभिषेकके समय सम्राटने अपने अनेक रूप बना लिये थे, अब उन्होने सबको अदृश्यकर एक रूप बना लिया, एव वहांसे तपोधनोंके पासमें आकर अपनी सह धर्मिणियोके साथ उनके चरणोमें नमोस्तु किया।

आचार्य परमेष्ठिने भरतजीको "परमात्मसिद्धिरस्तु" एवं अन्य मुनियोने "धर्मवृद्धिरस्तु" इस प्रकार आशिर्वाद दिया।

अभीतक भरतजीने इधर उधर नही देखा था, उनका एक मात्र चित्त श्री भगवंतकी सेवामें लगा हुआ था अब उन्होने अपनी दृष्टि फेरकर पूजा व अभिषेक देखनेके लिये आये हुए भव्योंको देखा।

वह राजमहलका मंदिर है। बाहरके लोग वहापर आ नही सकते, वह एकात पूजा है। लोगोंकी भीड बहुत ज्यादा नही है। हिसाब करनेपर केवल बारह लाखकी संख्या है।

भरतकी राणियोंकी संख्या चार हजार कम एक लाख है। एक २ रानियोंके साथ दस २ परिवार स्त्रियां रहती हैं। इस प्रकार कुछ कम दस लाखकी संख्या हुई। अब भरतकी दासिया गायकियां, गुरुगण, अर्जिकायें, परिचारक स्त्रियां वृद्धव्रतिक आदि मिलकर डेढ लाखके करीब हैं।

उपस्थित १२ लाख जनताको सम्राट्के अभिषेक व पूजनको देखकर हर्ष हुआ। कैलास पर्वतमे जब भगवान् आदिनाथका पूजन भरतजी करेंगे उसे देखनेके लिये २॥ द्वीपके समस्त भव्य आयेंगे व प्रसन्न होंगे तो फिर आज १२ लाख की संख्यामें पसन्न हुए इसमे आश्चर्य क्या है?

कैलास पर्वतमे ७२ जिनमंदिरोंको निर्माणकर उसमे पाचसौ धनुष ऊंचे जिनबिंबोंकी पतिष्ठा देवोंको भी आश्चर्य उत्पन्न करें उस प्रकार करनेवाले भरतजीको इस पूजामें क्या बडी बात है।

भगवान् आदिनाथ स्वामी आगे जब मुक्ति जायेंगे उससमय १४ रोजतक भरतजी जो भगवंतकी पूजा करेंगे वह पूजा लोकमे अन्य दुर्लभ है। उस समय देवलोक, नरलोक व नागलोकके सर्व भव्य भरतके वैभवको गिर झुकायेंगे। दो आंखे तो उसे देखनेके लिये पर्याप्त नही हैं। यह केवल पर्व दिनमें किया हुआ सामान्य संकल्प पूजन है। अतमे सम्राट्ने सबको गंधोदक दिलाया।

अब १२ बजेका समय होगया। गायक वगैरे भरतकी आज्ञा पाकर चले गये। वृद्धव्रतिक भी भरतके चरणोंको नमस्कार कर चले गये।

आज अपनी राणियोंके साथ समाट् इसी मंदिरमें जागरणसे रहनेवाले हैं। यह जानकर मुनिगण " हे भव्य! सुखसे रहो " इस पकार आशिर्वाद देकर नगर मध्यके अन्य मंदिरमें चले गये। इसी पकार अर्जिकायें भी चली गई। अपनी राणियोको छोडकर बाकीके सबको सम्राट्ने आज्ञा दी कि आप लोग चले जाईयेगा। अब एकाशनके लिये बहुत देरी होगई है।

अब मंदिरमें लोकांत नहीं रहा है। एकांत होगया है। आज सम्राट् व्रतनिर्योंके साथ धर्मचर्चा आदिसे ही समय व्यतीत करेंगे।

—: इति पर्वाभिषेक संधि —

अथ तत्वोपदेश संधिः

सम्राट भरत विधिपूर्वक त्रिलोकीनाथ श्रीभगवंतका अभिषेक करचुके हैं। अब आदि प्रभुकी वंदनाकर वे अपनी देवियोंके साथ स्वाध्याय शालामें चले गये।

यह स्वाध्याय शाला अत्यंत विस्तृत व प्रकाशमय है। वहांपर सूखे घाससे निर्मित संयम आसन बिछे हुए हैं। सभी आसनोंके बीचमें एक सोनेकी चौकी रखी हुई है।

राजयोगी भरत बीचके आसनमें विराजमान हुए, इधर उधरके आसनोंमे उनकी सभी देवियां विराजमान होगई। उस समयका दृश्य ऐसा मालुम होता था कि शायद ये सब योगीके द्वारा सिद्ध विद्याकी अधिदेवतायें हैं।

उस स्वाध्याय गृहमें सुगंधित गुलाब जल नही हैं। कोई हवा करनेवाले भी नही हैं। और न कोई चामर डाल रहे हैं। उन लोगोंके मुखसे भी कामसंबंधी कोई वचन, नही निकलते और भोगके नामका भी स्मरण नहीं है। केवल मोक्षमार्गमें ही उस समय उनका चित्त था।

यदि वे लोग परस्पर बोलते तो धार्मिक विषयों पर ही बोलते थे। यदि परस्पर एक दूसरेको देखते तो मद व कामसे रहित शांतदृष्टिसे ही देखते थे। बीचमें कोई धर्मचर्चामें आनंद आवे उसीसमय हंसते थे। अन्य कारणसे नही। उसदिन वे एक दूसरे के शरीरको स्पर्श नही करते। कदाचित् वैयावृत्य करनेके विचारसे स्पर्श करते तो भी भरतको एक तपस्वी समझकर स्पर्श करते।

विचार करनेकी बात है। उन लोगोंका सुख किस श्रेणीका है। आजका उपवास किस प्रकारका है? इतना ही नही पति पत्नीं एक साथ रहनेपर भी जरा भी मनमें विकारका अंश, नहीं।

इसे ही असली तप कहते हैं।

लोकमें स्त्री और पुरुष अलग रहकर अपने ब्रम्हचर्य व्रतको बतलासकते हैं। परंतु एक साथ रहकर भी मनमें कोई विकार उत्पन्न न होने देना यह तलवारकी धारपर चलना है।

ऐसे भी बहुतसे देखे जाते हैं जो पहिले व्रत तो ले लेते हैं फिर स्त्रियोंको देखनेपर विचलित होते हैं परंतु लोगोंके भयसे किसी तरह रुके रहते हैं उनको थोडा ब्रम्हचारी कहना चाहिये।

भरी हुई सभामें व्रत तो लेते हैं। फिर सुंदर स्त्रियों को देखकर मनमे काशीफल के समान सडते रहते है, क्या वह व्रत है? या आडंबर है?

व्रत या संयमको ग्रहण करने के बाद उसे सर्पके समान अत्यंत मजबूतीसे पकड रखना चाहिये। कदाचित् हाथको ढीला करे तो जिस प्रकार वह सर्प काटकर अपना सर्व नाश करता है उसी प्रकार व्रत भी सर्वनाश करता है।

जिस पदार्थको हमलोग भोगते हैं उस समय तन्मय होकर उसे अच्छीतरह भोगलेना चाहिये। जिस समय उसका त्याग करते हैं उसके बाद उसका स्मरण भी नहीं करना चाहिये। इतना ही नहीं उसका हवा भी नही लगने पावे इसप्रकार की हुशियारी रखनी चाहिये।

एक दफे स्त्रीत्याग करनेके बाद फिर आकर वह स्त्री आलिंगन भी देवे तो भी अपने हृदयमें कोई विकार न होना यही असली ब्रह्मचर्य है। सामने स्त्रियोंको देखकर मनमें पिघलना यह नकली ब्रह्मचर्य है।

जिनके हृदयमें दृढता है भावमें शुद्धि है वे स्त्रियोंसे बोले तो उनका क्या बिगडता है। उनकी ओर देखें तो क्या होता है। हसे तो क्या होता है। इतना ही नहीं स्पर्श करें तो भी

क्या है ? उनके मनमें जरा भी विकार उत्पन्न नही होता है ।

पानी के स्पर्शसे केलेके पत्ते भीग सकते हैं । कमलके पत्ते भीग सकते है क्या ? नहीं ! इसी प्रकार स्त्रियोंके संबंधमें निर्बल हृदयवाले विकारी हो सकते हैं । धीरोंके हृदयमें उसका कोई प्रभाव नही होसकता है ।

राजा भरत व उनकी स्त्रिया व्रतशूर थे । चित्तको अपने वशमें करनेमें प्रवीण थे । इसलिये उसदिन घोर ब्रह्मचर्यको लेकर जरा भी चित्तमें टिलाई न लाकर अपने व्रतमें दृढ थे । इसलिये उन्हे धर्मवीर कहना चाहिये ।

सचमुचमें देखाजाय तो भी यही बात है । लोकमें जो चोरीसे भोजन करता है यदि उसे किसीने बीचमें ही रोकलिया तो मनमें बडे दुःखी होता है । किसी मनुष्यकी पेट पूर्ण रूपसे नही भरती हो तो उसे खाने की आकुलता रहती है । परंतु इन लोगोंको सुखकी क्या कमी है ? अत्यंत तृप्त होकर अखंड सुखको रोज भोगने वालोंने यदि एक दिनके लिये उसका परित्याग किया तो उन्हे क्या कष्ट हो सकता है ? कुछ नहीं ।

जिस प्रकार सूर्यके उष्ण प्रतापमें तप्त होनेपर भी नीचे शीतल जल रहनेसे कमल सूखता नहीं उसी प्रकार उपवासकी गर्मी रहने पर भी धर्म कथारूपी शीतल अमृतके होनेसे उन्हे उपवास के तापका अनुभव बिलकुल नहीं हो सका ।

बीचके दर्भासनमें चक्रवर्ती विराजमान हैं । वे बीच बीचमें इधर उधर बैठी हुई अपनी देवियोंकी ओर देखते हैं । परंतु उनको आज वे अपनी स्त्रियोंके रूपमें नहीं दिख रही हैं । अपितु ये सब तपस्विनी हैं इस प्रकार वे समझ रहे हैं ।

इसी प्रकार वे स्त्रिया भी जब कभी भरतकी ओर देखती या उनके साथ बोलती तो अपने पति समझकर नहीं बोलती अपितु

आचार्य परमेष्ठी हैं इस प्रकार समझ कर देखती व बोलती ।

भरतजीके हृदयमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि इनके साथ अब कुछ धर्म चर्चा करनी चाहिए । इस अभिप्रायसे अपनी स्त्रियों से कहने लगे कि देवी ! तुम लोगोंको आज बडा कष्ट हुआ होगा हमारे संसर्गसे शायद उपवास व्रतसे ही ग्लानि तो नहीं हुई ?

उन देवियोंने सम्राट्से प्रार्थना की कि स्वामिन् ! हम लोगोंको उपवासका कोई कष्ट ही नहीं हुआ है, अब जिस समय आपका उपदेश सुननेको मिलेगा उस समय हमें उपरिम स्वर्गके देवोंसे भी अधिक सुखका अनुभव होगा । फिर ग्लानि कहा से ?

हम लोगोनें उदरपोषणके लिये अनंत जन्मको बिताया, परंतु गुणनिधि ! आत्मपोषणके लिये तो आपके पवित्रसंसर्गसे यही एक जन्म मिला है ।

हे राजयोगि ! अतरंगको नही जानकर बाहरके विषयोमें भटकती हुई हम लोगोनें भव भ्रमण किया परंतु आपके संसर्गसे हमें यह सन्मार्ग प्राप्त हुआ ।

स्वामिन् ! स्त्रियोंकी स्वाभाविक इच्छायें पुत्रोंको पानेमें, अच्छे २ वस्त्रोंको पहननेमें, एव सुंदर आभूषणोंको धारण करनेमें हुआ करती हैं । परंतु उन इच्छावोंको छुडाकर आपने हमें नित्य सुखके मार्ग को बतलाया । सचमुचमें आप मोक्षरसिक हैं ।

हे पर्वदिनाचार्य ! उपवासके कष्ट तो रहने दीजिये ! अब आप धर्मामृतका जरा पान कराईयेगा । यही हम लोगोंकी प्रार्थना है । यह कह कर विनयावती व विद्यामणी नामक दो राणियों को आगे बैठालकर सभी स्त्रियोनें धर्मोपदेश सुना ।

भरतजीने उपदेश देना प्रारंभ किया । विद्यामणि ! सुनो ! भगवान जिनेंद्र के शासनको बहुत संक्षेपमें कहूगा ।

अनत आकाशके बीच तीन वात अत्यत दीर्घरूपसे व्याप्त हैं।

जिसप्रकार तिन पैंतरेकी थैलीमें हम कुछ भरकर रखते हों उसी प्रकार तिन वातोंके बीचमे यह सर्व लोक मौजूद है। ऊपर दिखता है सो सुरलोक है। उस सुरलोकके अग्रभागमें मोक्षशिला है। उसपर अविनश्वर अविचल अनंत सिद्ध विराजमान हैं। हम जहा रहते हैं वह मध्यम लोक है। हे श्रावको! इस मध्यलोकके नीचे अधो लोक है। इन ऊर्ध्व मध्य व अधो नामक तीन लोकमें जीव सर्वत्र भरे हुए हैं एव सुख दुःखका अनुभव करते हैं।

ऊर्ध्व लोकवासी देवोंको आदि लेकर नीचेके जो जीव हैं वे सब जन्ममरणके दुःखको अनुभव करते हैं। परन्तु सुनो! सिद्धों को जन्ममरणादिक दुःख नहीं है।

एकदफे नर सुर बनते हैं, सुर नर बनते हैं, एक दफे वे ही नारक बनते हैं। एवंच हाथी, पशु, फणि, व वृक्ष आदि अनेक योनियोंमें जाकर यह कर्मवश भ्रमण करते हैं। इस प्रकार जीवों को अनेक प्रकारके पर्याय कर्मके कारणसे प्राप्त होते हैं।

यह जीव कभी दरिद्र कहलाता है, कभी धनिक कहलाता है। कभी स्त्री होकर उत्पन्न होता है और कभी पुरुष। इस प्रकार कर्मके संयोगसे यह अनेक प्रकारके दुःखोंका अनुभव करता है।

इतने में विद्यामणि हाथ जोडकर खडी होगई और पूछने लगी कि स्वामिन्! आपने कहा कि संसार दुःखमय है। सिद्ध लोकमें सुख है। उस अविनाशी सुखको प्राप्त करनेका क्या उपाय है? हम लोगोंको उसके मार्गको बतलाईयेगा।

तब सम्राट्ने कहा कि देवि! कर्मके जालको जो नष्ट करते हैं वे सब सिद्धोंके समान ही सुखी होते हैं या सिद्ध होते हैं।

फिर उसने प्रश्न किया कि स्वामिन्! आपने यह तो ठीक कहा। परंतु यह तो बतलाईये कि कर्मको नाश करनेका उपाय क्या है? इसका मर्म भी हमें जरा समझा दीजिये।

देवी ! सुनो ! जिनेंद्र भक्ति सिद्धभक्ति आदि सत्क्रियावोंसे उस कर्मका नाश किया जासकता है, विचार करनेपर वह जिनेंद्र भक्ति सिद्धभक्ति भेद व अभेदके रूपसे दो प्रकारकी है। अपने सामने जिनेंद्र भगवंत व सिद्धोंकी प्रतिकृतिको रखकर उपासना करना यह भेद भक्ति है। अपनी आत्मामे ही उनको रखकर उपासना करना वह अभेद भक्ति है। विशेष क्या ? पहिले तो भेद भक्तिके ही अभ्यासकी जरूरत है। भेदभक्तिमे अच्छीतरह अभ्यास होनेकेबाद अभेद भक्तिका अभ्यास करें तो कर्मका नाश होसकता है। कर्मको नाश करनेकेलिये अभेदभक्तिपूर्वक आराधनाकी ही परमावश्यकता है।

तदनंतर फिर वह विद्यामणी उठकर प्रार्थना करने लगी कि स्वामिन् ! आपकी दयासे हमे भेद भक्तिका स्वरूपका ज्ञान व अभ्यास है। परंतु अभेदभक्तिमे चित्त नहीं लगता है। उस दिव्य भक्तिके विषयमे हमें जरूर समझा दीजिये।

देवी ! जिस प्रकार तुम जिनवास (जिनमंदिर) मे सामने भगवंतको रखकर उनकी उपासना करती हो उसी प्रकार तनुवास (शरीर) में अपनी आत्माके रूपको रखकर उपासना करो तो वही अभेद-भक्ति है।

यह आत्मा वर्तमान शरीरके प्रमाणमें है। शरीरके अंदर रहने पर भी उससे अलग है। पुरुषाकार स्वरूप है। चिन्मय है, इस प्रकार इसे जानकर देखे तो उसका दर्शन होता है।

जिस प्रकार धूलकी राशिमें एक स्फटिककी शुद्ध प्रतिमाको रखनेपर वह दिखती है उसी प्रकार इस देहरूपी धूलकी राशिमे यह शुभ्र आत्मा गढा हुआ है। इस प्रकार जानकर उसे देखनेका प्रयत्न करें वह अंदर दिखता है।

स्फटिककी प्रतिमाको चर्मदृष्टिसे देख सकते हैं, हाथोंसे स्पर्श कर सकते हैं। परन्तु यह कोई विलक्षण मूर्ति है। इसे न चर्म दृष्टि से देख सकते है और न हाथमे स्पर्श कर सकते है। यह तो अकाशके रूपमे बनाई हुई स्फटिक की मूर्ति है समझो। उसे ज्ञानचक्षुसे ही देखना पडेगा।

संसारका लोभ बहुत बुरा है, इस परपदार्थोंके मोहने ही इस आत्माको उस अभेद भक्तिसे च्युत किया है। इसलिये सबसे पहिले आशा पाशको तोडो, आशावोंको कम करनेके बाद एकांत वासमें जाकर आंख मीचकर उसका चिंतवन करें तो उस अवस्थामें वह अत्यंत शुभ्र रूप होकर ज्ञानके अवतारमें दिखता है।

इस प्रकार उसे देखनेका प्रयत्न करें तो वह एक ही दिनमें दीख नही सकता है। अभ्यास करते २ ही क्रमसे उसका दर्शन होता है। परंतु यह जरूरी है कि एकाधदिनमे वह नहीं भी दिखे तो आलस्य न कर बराबर प्रयत्न करना चाहिये, अध्यात्मका अभ्यास करना चाहिये।

हे शर्मकांक्षिणि! इस प्रकारकी अभेदभक्तिसे कर्मोंका नाश होता है। मुक्तिकी प्राप्ति होती है। सभी धर्मोंमें यही उत्कृष्ट धर्म है। सज्जन तो इसे स्वीकार करते हैं, जिनका होनहार खराब है ऐसे अभव्य तो इसे स्वीकार नहीं कर सकते।

तब विद्यामणि देवी फिर उठकर खडी हुई। हाथ जोडकर अत्यंत भक्तिसे प्रार्थना करने लगी कि स्वामिन्! इस अभेद भक्तिका अभ्यास पुरुषोंको ही होता है या स्त्रियोंको भी हो सकता है इसका रहस्य जरा हमें समझा दीजियेगा।

देवी! सुनो! वह भक्ति दो प्रकारकी है। एक धर्म व दूसरा शुक्ल। यद्यपि कहने में दो प्रकार दिखती है परंतु विचार करनेपर दोनों एक ही है। कारण कि दोनोंका अवलंबन आत्मा एक ही है।

इतनेमें विनयावति फिर हाथ जोडकर कहने लगी कि वह पुण्यभाव किन साधनोंसे प्राप्त होता है और पाप विचारके कारण क्या है? इन बातोंको जरा खोलकर समझानेकी कृपा करें।

देवी! सुनो! दान देना, पूजा करना, व्रतोंका आचरण करना, शास्त्रोंका मनन करना आदि पुण्यप्राप्तिके साधक हैं। अभिमान, मायाचार, क्रोध, लोभ, भोगासक्ति आदि सब पापके कारण हैं। इसी प्रकार कुलजातिकी मर्यादाको उल्लंघन न कर चलना, जीवदया, तीर्थ क्षेत्रकी वदना आदि पुण्य है। एवं हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील व अतिकांक्षा आदि बातोंसे पापका बंध होता है।

इसमें एक बात विचारणीय है। जो आत्मा पाप और पुण्यके आधीन होकर क्रिया करता हो वह संसारमें परिभ्रमण करता है। जो पाप पुण्यको समदृष्टिसे देखकर अपने ही आत्ममें ठहरता हो वह अधिक समय यहां न ठहरकर सिद्ध शिलापर चला जाता है।

विनयावति फिर हाथ जोडकर प्रार्थना करने लगी कि स्वामिन्! स्वर्गसुखको अनुभव करानेवाले पुण्य व दुर्गतिको ले जानेवाले पापको समदृष्टिसे देखनेका उपाय क्या है? इसे भी जरा अच्छी तरह समझा दीजिये।

देवी! स्वर्गका सुख भी नित्य नहीं है। और नारकियोंकी वेदना भी नित्य नहीं हैं। दोनोंके दोनों स्वप्न देखनेके समान हैं। केवल भ्रम है इससे ज्यादा और क्या है? जिस प्रकार एक मनुष्य वृक्षपर चढकर आनंदसे हंसता है फिर नीचे गिरता है उसी प्रकार देव स्वर्गसे स्वर्ग सुखोंको अनुभव कर नीचे भूतलपर पडते हैं। जिस प्रकार कोई बच्चा किसी खड्डेमे पडकर रोते पीटते ऊपर चढ आता है उसी प्रकार नारकी जीव नरकके दुःखों को अनुभव कर ऊपर आते हैं।

है। केवल मसालेके पानीमें डुबो रखनेसे ही वह कपडा स्वच्छ नहीं होसकता है। इसी प्रकार पापवासनाको पहिले पुण्यवासना से लोप करना चाहिये। केवल इतनेसे ही काम नहीं चलेगा। उस पुण्य वासनाको भी आत्मयोगसे नहीं धोवें तो आत्मा जगत्पूज्य कभी नहीं बन सकता है।

यहापर वस्त्रके मलके स्थनपर पाप है। मसालेके पानीके स्थान पर पुण्य है। स्वच्छ पानीके स्थानपर आत्मयोग है। पहिले कुछ पुण्य संपादन करना उचित है। आत्मयोगमें जो रत है उसे पुण्यकी कोई आवश्यकता नहीं है। इसलिये मैंने तुम्हे कहा भी था कि पुण्य व पापको सम दृष्टिसे देखो। देवी! यह जिनेंद्रका वाक्य है। इसे श्रद्धा करो।

विनयवती प्रसन्न हुई। अब चंद्रिका देवी नामकी राणी अन्य कुछ राणियोंकी शंकाको लेकर खडी हुई व प्रार्थना करने लगी कि स्वामिन्! आपने हमें अभीतक यह उपदेश दिया कि पुण्य व पापको समदृष्टिसे देखकर छोडदेना चाहिये। परतु इसमें कितना तथ्य है समझमें नहीं आता। कारण कि ऐसा नहीं होता तो आप पुण्य कृत्योंको क्यों कररहे हैं? जिनद्रभगवंत की पूजा करना, मुनियोंको आहर दान देना, शास्त्रोंका स्वध्याय व मनन करना, सज्जनोंकी रक्षा व दुर्जनोंको शिक्षा, उपवास आदि बातें पुण्य बंधके कारण नहीं हैं क्या? इनको आप क्यों कर रहे हैं! केवल हमें ही उपदेश देना है क्या?

चंद्रिका देवी! शाहबास! बहुत सूक्ष्मदृष्टिसे विचारकर यह तुमने प्रश्न किया है। तुम्हारे हृदयमे जो शंका उपस्थित हुई वह साहजिक है। अब तुम अच्छीतरह सुनो, मैं तुम्हे समझावूंगा। ऐसा भरतजीने कहा।

देवी! मैं पुण्य क्रियावोंको करता हूं। क्यों कि मैं घरमें

तो अपने पास रह सकती है ? नहीं । इसी प्रकार जो कर्मको अच्छा समझकर आदर पूर्वक स्वागत करते हैं उनके पास तो वह रहता है अच्छीतरह बंधको प्राप्त होता है । जो उसे तिरस्कार दृष्टिसे देखते हैं उनके पास वह क्यों रहने लगा ? शीघ्र ही निकल जाता है ।

गीली मट्टीके घडे या तेलके घडेके ऊपर पडे हुए धूलके समान शुद्धात्मयोगको नहीं जानने वाले अज्ञानी प्राणियोंका बंध है । नवीन सूखे मटकेपर पडे हुए धूलके समान तो आत्मरसिकोंका बंध है । ज्ञानीको भोग करनेपर भी कर्मबंध नही है । सागारधर्ममें रहनेपर भी वह अनागरके समान रहता है ।

तब तो ठीक ! फिर आपको उपवास वगैरहकी झंझटमें पडनेकी क्या जरूरत है ? क्यों कि भोगनेपर भी आपको बंध तो होता ही नहीं ! फिर आरामसे महलमें क्यों नहीं रहते ! चंद्रिकादेवीने थोडा हंसकर कहा ।

देवी ! इतने जल्दी भूलगई मालुम होती है ! मैंने कहा था कि भोगमें अत्यासक्ति करना कर्म बधका कारण है । इसलिये कुछ समयके लिये ही क्यों न हो भोगको त्यागनेके लिये यह उपवासादिको मैं करता हूं । और कोई बात नही ।

चंद्रिकादेवी कहने लगी कि स्वामिन् । आपको यह सब परिचित विषय है । इसलिये सब प्रकारसे आत्मसाधन आप करते हैं । हम लोगोंको वह आत्मभावना नहीं आती है । उसका उपाय क्या है ? उसे जरा समझा दीजियेगा !

देवी ! सबको परमात्मयोगकी प्राप्ति नहीं होगी ऐसा मत कहो ! किसी किसीके हृदयेमें वह आत्मभावना प्रकट होती है । जिनको उसका अभ्यास है वे आत्मध्यान करती रहो, जिनको शक्ति नही वे उन जानकारोंकी वृत्ति देखकर प्रसन्न होती रहो । परमात्मध्यान ही मुक्तिका साक्षात् कारण है इस बातको श्रद्धाकर

सभी लोग पुण्याचरणको पालन करो, जरूर कल ही मुक्तिका मार्ग तुम लोगोंको दिखेगा।

चंद्रिका देवी प्रसन्न होकर बैठगई, इतनेमे ज्योतिर्माला नामकी राणी उठकर राजर्षि भरतसे प्रश्न करने लगी कि स्वामिन्! शास्त्रोंमें सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूपी रत्नत्रय मुक्तिका साधन है ऐसा कहा है। परंतु आप कहते हैं कि एक मात्र आत्मयोग ही मुक्तिका साधन है। यह आगमविरोधी उपदेश आपने क्यों दिया?।

भरतजी कहने लगे कि ज्योतिर्माला! तुमने रहस्यको जानकर ही यह प्रश्न किया है। शाहबास! तुम्हारे विवेकपर मुझे प्रसन्नता हुई। अब सुनो मैं समझाता हू। तीन रत्न और आत्मामें कोई अंतर नहीं है। आत्माके स्वरूपको ही रत्नत्रय कहते हैं, दर्शन व ज्ञान यह आत्माका स्वरूप है। दर्शन ज्ञान स्वरूपमें स्थिर भावसे रहना उसे चारित्र कहते है। इसलिये ये तीनों बातें आत्मासे भिन्न नहीं हैं।

देवी! रत्नत्रय दो प्रकारका है। आप्तागमशास्त्रोंको श्रद्धान व जानकर व्रतादिकोंमें लगे रहना यह व्यवहार रत्नत्रय है। गुप्त-रूपसे आत्माको ही जान व श्रद्धान कर चित्तगुप्तिमें रहना यह निश्चय रत्नत्रय है।

पहिले तो व्यवहार रत्नत्रयका आश्रयकर बादमें निश्चय में ठहर जाना चाहिये। देवी! उसी समय आत्माको संसारका दुःख नष्ट होता है। और मुक्तिकी प्राप्ति होती है।

इतने में ज्योतिर्माला को एक शंका उत्पन्न हुई। कहने लगी कि स्वमिन्! आपने यह कहा कि भगवनको श्रद्धा करना व्यवहार है। और आत्माकी श्रद्धा करना निश्चय है तो क्या भगवतंसे भी बडा आत्मा है? यह बात तो हमें समझमें नहीं आई। आप अच्छी तरह समझा दीजिये।

भरतजी अपने मनमें विचार करने लगे कि अध्यात्मयोग अनुभवमें ही आने योग्य विषय है। वह दूसरोंको कहनेमें नहीं आसकता है। यदि नहीं कहें तो मुक्तिकी प्राप्ति भी नहीं होती है। इन अबलावोंका व्यर्थ अकल्याण नहीं होना चाहिये, इनको किसी उपाय से समझाना चाहिये।

सचमुचमें सम्राट् अत्यंत विवेकी थे। वे हरएकके अंतरंगको अच्छीतरह जानते थे। इसलिये वे प्रकट रूपसे कहने लगे कि,

देवी! शुद्धात्मयोग भगवंतसे भी बढकर है यह अभी कहना उचित नही है। इस बातके यथार्थको तुम आगे जाकर ठीक २ समझोगी। अभी तो पंचपरमेष्ठियोंकी उपासना करो। भगवंत या पंचपरमेष्ठी आत्मासे भी बढकर है। परतु आत्मासे भिन्न रखकर उनकी पूजा करें तो वह उत्कृष्ट नही है। वह भगवत अंदर अपने आत्मामें है ऐसा समझकर उपासना करना यही उत्कृष्ट धर्म है।

देवी! भगवंतको बाहर रखकर उपासना करेगी तो उससे पुण्य बंध होगा। उसमे स्वर्गादिक सुखकी प्राप्ति होगी। यदि उसे अपनी आत्मामें रखकर उपासना करेगी तो सर्व कर्मोंका नाश होकर मोक्षसुखकी प्राप्ति होगी।

कांसेमें, पीतलमें, सोनेमें, चांदीमे व पत्थरमे भगवंतकी कल्पना कर उपासना करना वह व्यवहार भक्ति है, भेद भक्ति है दूसरे शब्दमें इसे नकली भक्ति भी कह सकते हैं। अपने निर्मल आत्मामें रखकर उसे उपासना करें तो वह अभेद भक्ति है। निश्चय भक्ति है, या उसे असली भक्ति कह सकते हैं।

देवी! अब तुम्हें यह ज्ञान हुआ होगा कि व्यवहार मार्ग को ही भेद मार्ग कहते हैं। निश्चय मार्गको अभेद कहते हैं।

अभेद मार्ग अत्यंत महत्वपूर्ण है। वह कर्मरूपी सर्पकेलिये गरुडके समान है। इसलिये हमने तुम्हें कहा संपूर्ण दुर्भावोंको अलगकर सद्भावको धारण करो। और उसे सद्भावसे उस अभेद मार्गकी प्राप्ति करो। जिससे तुम्हें मोक्ष सुखकी प्राप्ति होती है।

तब वह ज्योतिर्माला देवी प्रार्थना करने लगी कि स्वामिन्! यह आपका कहना बिल्कुल ठीक है। उस पवित्र मार्गको ग्रहण करना आपकेलिये सरल है। परन्तु यह हमारा पर्याय स्त्री पर्याय है। हमारा वेष व आकार भी स्त्रीत्वसे युक्त है। आपने यह फरमाया था कि वह आत्मा पुरुषाकारमें रहता है। तो ऐसी अवस्थामें हम स्त्रियोंको उस पुरुषाकारी आत्माका ध्यान कैसे हो सकता है? यह जरा समझानेकी कृपा करें।

देवी! सुनो! आत्माकी भावना करते समय उसे स्त्रीके रूपमें ध्यान करनेकी जरूरत नहीं, और न उस समय अपनेको स्त्री समझनेकी जरूरत है। जिस प्रकारसे भावमें उसे भावना करो उसी प्रकार वह दिखता है। यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी—अर्थात् जिसकी जैसी भावना है उसको वैसी ही सिद्धि होती है यह तुम्हें मालूम नहीं है?

स्वामिन्! पहिले पदस्थ, पिण्डस्थ, रूपस्थ, रूपातीत इस प्रकार चार ध्यानोंमें अपनेको लगाकर फिर स्वयं अपने आपमें ठहरना चाहिये। इसका क्या मतलब है सो कहो!

देवी! पंचपरमेष्ठी वाचक जो ३५ अक्षर हैं उनको अपने

हृदयमे पाच पंक्तियों में लिखकर देखो । वह पांच मोतीके हारोंके समान मालुम होते हैं । इसे पदस्थ ध्यान कहते हैं ।

चंद्रकांत मणिसे निर्मित एक उज्वल प्रतिमा स्फटिकके घडेमे जिस प्रकार रहता हो उसी प्रकार यह आत्मा इस देहमें रहता है ऐसा एकाग्रचित्तसे विचार करना उसे पिण्डस्थयोग कहते हैं ।

कोटिसूर्य व कोटिचंद्रके समान प्रकाश को धारण करनेवाले श्री भगवान् आदिनाथ हैं इस प्रकार ध्यान करना हे देवी ! वह रूपस्थ ध्यान है ।

सर्व कर्मोसे रहित, निरुपम, निर्मल, निश्चल, चिद्रूपस्वरूप, अनंतसुखी ऐसे सिद्ध भगवंत हमारे शरीरमें हैं ऐसी कल्पना-कर एकाग्र चिंतवन करना इसे रूपातीत ध्यान कहते हैं ।

देवी ! पहिले २ इन चारों ध्यानोंका अभ्यास कर बादमें तीन ध्यानोंको छोडकर केवल पिण्डस्थ ध्यान में ही ठहरने की जरूरत है । ज्ञानिगण इसी ध्यानकी प्राप्तिकेलिये प्रयत्न करते हैं ।

पिण्डस्थ ध्यानमें ही बाकीके सर्व ध्यान पिण्डित होकर रहते हैं । इसी पिण्डस्थ ध्यानसे ही कर्म खण्डित होकर जाते हैं और आत्माको अखण्डित सुखकी प्राप्ति होती है ।

देवी ! जप, स्तोत्र, दीक्षा, व्रत, स्वाध्याय, तप आदि सब इसीकेलिये सहायक हैं । इतना ही नहीं । इस पिण्डस्थ ध्यानके संबन्धमें यही कहा जा सकता है कि यह मुक्ति के लिये यह साक्षात बीज है । जिनेन्द्र भगवंतका प्रियमार्ग है । या इसे निर्भेद भक्ति कहते हैं ।

देवी ! इस लोकमें दो प्रकारके प्राणी हैं । एक भव्य दूसरा

अभव्य ! जो लोग कभी मुक्तिको ही प्राप्त कर ही नही सकते और इस ससारके दुःखोंको अनुभव करते ही अनाद्यनंत काल व्यतीत करते हैं वे अभव्य हैं। और वे आत्मयोगको अनेक प्रकारसे निंदा करते हैं जिसे भव्य स्वीकार कर अनंत सुखको पा लेते हैं।

देवी ! वे अभव्य जीव शास्त्रोंको पठन करते हैं। उपवासादिक कर शरीर व पेटको सुखाते हैं। परन्तु उनका हृदय कठोर रहता है। वे पापी आत्मयोगको ढकोसला समझते हैं।

उनको तो आत्मयोगकी प्राप्ति होती नहीं। जिनको उसकी प्राप्ति होती है उनकी वे निंदा करते रहते हैं। कभी किसीने उन्हें उस विषयको समझाया भी तो उनसे विसंवाद करते हैं कि यह ध्यान स्त्रियोंको प्राप्त नहीं हो सकता है। गृहस्थोंको प्राप्त नहीं हो सकता है।

देवी ! शास्त्रोंमें कहा है कि स्त्रियोंको व गृहस्थोंको शुक्ल ध्यान की प्राप्ति नहीं हो सकती है। परन्तु ये मूर्ख लोगोंको भडकाते हैं कि इनको धर्मध्यान भी नहीं हो सकता है। व्यवहार धर्मको तो ये मानते हैं, परन्तु निश्चय धर्मको ये स्वीकार नहीं करते हैं।

देवी ! उन्हें कोई ध्यानशास्त्रका उपदेश देने आवें तो कई तरहसे बहाना बाजी बना लेते हैं, और कहते हैं कि आत्मयोगको धारण करनेकेलिये बहुतसे शास्त्रोंके अध्ययन करनेकी जरूरत है। और उसके लिये निर्ग्रंथ दीक्षाकी आवश्यकता है। ये बातें हममें नहीं हैं। इसलिये हम इस आत्मयोगको धारण नहीं कर सकते। परंतु, देवी ! आश्चर्य है कि वे बहुतसे शास्त्रोंको पठनकर, निर्ग्रंथ दीक्षासे दीक्षित होनेपर भी वे संसारमें भटकते रहते हैं।

देवी ! आत्मध्यान अपनेसे होसके तो जरूर करना चाहिये, यदि उतनी शक्ति न हो ध्यानतत्वपर श्रद्धा न तो जरूर करना चाहिये केवल अपनेसे नहीं बने तो ध्यानकी निंदा करते रहना यह अभव्योंका कार्य है। इसलिये आप लोग इसे अच्छीतरह श्रद्धान करें। आप लोगोंको ध्यानका उदय न होवे तो भी कोई हर्ज नही है। संतोषके साथ भेदभक्तिका अभ्यास करती रहो, उसीसे आगे जाकर तुम लोगोंको मुक्तिकी प्राप्ति होगी।

भगवत्पूजा, मुनिदान, शासन देवतासत्कार, जीवदया, आदि सत्क्रियावोंका अनुष्ठान करो, और साथमें आत्मकलापर श्रद्धान भी करो। आप लोगोंको अवश्य आगे जाकर मोक्षकी प्राप्ति होगी।

देवी ! जिससमय सूतक काल है या मासिक धर्म सदृश अशुभ समय है उस समय उपर्युक्त शुभ क्रियावोंका आचरण करना उचित नहीं है। उस समय अशुचित्वानुप्रेक्षाकी भावना करते हुए मौनमे रहना चाहिये।

इस प्रकार आप लोग उपर्युक्त कथनानुसार आचरण करेंगी तो आपलोगोंका यह स्त्रीवेप दूर होजायगा। और स्वर्गको पाकर अवश्य मुक्तिको भी प्राप्त करेंगी। यह सिद्धांत है इसे अवश्य श्रद्धान करो।

इस प्रकार सम्राट् भरतके उपदेशको सुनकर ज्योतिर्माला आदि सभी राणियां अत्यंत प्रसन्न हुई, इतना ही नहीं उनको साक्षात् मुक्ति मिली हो इस प्रकार हर्ष हुआ। वे सब आनंदके साथ कहने लगी कि स्वामिन् ! आपकी कृपासे हमें आज उस सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुई है जो कभी किसी भी जन्ममें प्राप्त नहीं हुआ था अब हमें मुक्ति प्राप्त होनेमें क्या बडी बात है ? स्वा-

मित्र ! आपके संगसे हम कृतकृत्य होगई हैं । इस प्रकार कहकर सभी राणियोंने भरतजीके चरणमें साष्टांग नमस्कार किया ।

भरतजीने सबको उठनेकेलिए कहा तब सब उठकर बैठ गई ।

सूर्य अस्ताचलकी ओर चला गया है । सबने जान लिया कि अब जिनवंदनाका समय हुआ है । इसी समय वे राणियां उस विशाल जिन मंदिरकी ओर चली गई । इधर भरतजी स्वाध्याय शालामें ही रहे ।

भरतजी राणियोंको इस जिनमंदिरके मार्गमें व भरतजी को स्वाध्याय मंदिरमें छोडकर हम जरा हमारे प्रेमी पाठकोंके हृदय मंदिरमें जाते हैं । वे अपने मनमें विचार करते होंगे कि दिनभर उपवासी रहते हुए दुपहरसे लेकर शामतक बराबर तत्वचर्चा चल रही है । भरतजी व उनकी राणियोंको उपवासका कोई कष्ट नहीं होरहा है । बात क्या है ? विचार करनेपर मालुम होगा कि भरतजी रात दिन परमात्मा के प्रति इस प्रकार की भावना करते थे कि हे परमात्मन् ! संसारमें एक मात्र आशा पाश ही सर्व दुःखोंका कारण है । वही आत्माको दुःख समुद्रमें फसाता है । इसलिये उस आशा पाशको दूर करने के लिये तुम्हारे सान्निध्यकी जरूरत है । इसलिये एक क्षणभर भी मुझे नही छोडकर मेरे पास ही बने रहो । मैं सदा इधर उधरकी चिंता हटाकर तुम्हारी भावना करते रहूं । यही नही मुझे खाने पीनेकी ओर भी उपयोग लगानेका मौका न मिले । जिससे सदा कालके लिये मेरे क्षुधादिक दुःख दूर हो जाय ।

ऐसी अवस्थामें उनको उपवासका कष्ट क्यों कर हो सकता है? और भरतजी सदृश सत्सगतिमे रहनेवाली राणियोंको भी वह कष्ट क्यों कर होने लगा। यह सब पूर्व जन्ममें अर्जित पुण्यका फल है।

इति तत्वोपदेश संधि।



अथ पर्वयोगसंधि

उधर भरतकी गणिया जिनेंद्र मंदिरकी ओर चली गई, इधर भरतजी भगवंतको अर्घ्य प्रदान कर ध्यान करनेके लिये बैठ गये, कभी २ भरतजी ध्यानके लिये कायोत्सर्गमें खडे होजाते हैं और कभी २ पद्मासनमें बैठ जाते हैं। जब कभी जैसी इच्छा होती है उसी प्रकार ध्यान करते हैं। आज वे पल्यकासनमें बैठकर ध्यान करेंगे।

वज्रासन, कुक्कुटासन, वीरासन आदि कठिनसे कठिन आसन बचपनही भरतजीके लिये कोई कठिन नहीं है। फिर भी आज वे अपनी इच्छानुसार पद्मासनमें विराजमान होकर वज्रनिर्मित मूर्तिके समान थे।

भरतजी ने पहिले ध्यान साधनके प्रतिपादक प्राणापान पूर्व नामक शास्त्रको जैन मुनियोंके स्वाध्याय करते समय सुना था। उसीके आधारपर आज ध्यानकी एकाग्रताके लिये वायु संचार करने लगे।

शरीर में दश प्रकारके वायु कौन कौन से स्थानमें रहते हैं यह वे जानते थे। इसलिये उन दसों वायुवों को एक एक में एक एक को मिलाकर उन की चंचल वृत्ति को हटाने लगे।

मूलाधार बंध, ओड्याण बंध, जालंध्र बंध आदि योग साधन क्रमसे पतंगके डोरेको ऊपर चढानेके समान अपनी वायुको ब्रह्मरंध्रपर चढाने लगे।

कुण्डल प्रदेशमें वातको चढानेसे कामदेवका मद कम होगया। और मध्यप्रदेशमें वातके स्थिर होनेसे चंचलचित्त एक स्थानमें स्थिर होगया। कपोल स्थानमें वायुके स्तंभन करने से निद्राका विलय होगया। ललाट प्रदेशमें उस वायुके ठहरनेसे प्रमाद

एकदम दूर होगया । मस्तकमें लेजाकर जब उस वायुको भरतजीने ठहराया उस समय शरीरमे एकदम प्रकाश होगया । अंधःकार दूर हुआ । उस पवनके अभ्यासका क्या वर्णन करें ? बहुत तीव्र क्षुधा तृषा आदि अत्यंत कम हो जाती है । इतना ही नहीं विष भक्षणकर भी पवनाभ्यासके बलसे उसे जीर्ण कर सकते हैं ।

इन सब रहस्योंको सम्राट् अच्छीतरह जानते थे । इसलिये उस राजयोगीने सबसे पहिले पवनसंचार को स्तंभित कर आंखको आधी मीचकर नाकके अग्रभाग में धवल बिंदुको देखा । उस समय उनकी आत्मामें और भी विशुद्धि बढ गई । अर्थात् वातसंचारको रोकनेसे अधिक एकाग्रता उपन्न होगई ।

बादमे अच्छी तरह आंख मीचकर भव्य कुलरत्न भरतजीने अपने शरीरमें पंक्तिबद्ध विकसितदल छह कमलोंको देखा । वे कमल ललाट कंठ, हृदय नाभि, लिंग, पाद इन छह स्थानोंमें थे। क्रमसे उनके दलकी संख्या सोलह, बारह, दस, छह, पांच, चार थी । छह कमलोंके पचास दलोंमे सम्राट् पचास अक्षरोंकी स्थापना कर अत्यंत एकाग्रतासे ध्यान करने लगे ।

ह क्ष ये दो अक्षर और सोलह स्वर, कसे लेकर ठ तक बारह अक्षर एवं डाक्षरसे लेकर लाक्षर पर्यंत, व साक्षर व काक्षर को उन दलोंमें स्थापित किया । उन कमलोंकी कर्णिकामें अर्हकार व ओंकार की कल्पना कर एकाग्रचित्तसे पदस्थ ध्यानका चिंतवन करने लगे ।

भुज, पाद, मस्तक आदि शरीररूपी भुजपत्रयंत्रमें अनेक अजित मंत्रोंको लिखकर मनन करने लगे । उन दलोंपर स्थित अक्षर, यह मोतीकी माला तो नहीं है ? या निर्मल पानी की बूंदे

हैं ? अथवा चादनीके बीजकी राशि है ? इस प्रकार विचार उत्पन्न करते थे।

अक्षरावली ध्यानको स्थगितकर उसी समय सम्राट्ने भगवान् आदिनाथ स्वामीको देखा। उस समय भगवान् समवशरणमें विराजमान थे। भरतजी समवशरण सहित भगवान्का दर्शन अपने शरीरमें ही कर रहे हैं।

भगवान् आदि प्रभुके समवशरणमें परमौदारिक दिव्य शरीरका तेज देवोंकी पक्ति, दिव्यध्वनि, आदि अतिशय भरतजीको साक्षात् दिख रहे थे। उस समवशरणका दर्शनकर उन्होने भाव पूजा की एव उसी समय सिद्ध लोककी ओर अपनी आत्माको भेज दिया। वहापर तीन वातवलयोंको स्पर्श न कर केवलज्ञान दर्शन व सुखके ही आधारमें रहनेवाले श्री सिद्धपरमात्माको अत्यत भक्तिसे पूजन किया व उनका ध्यान किया।

उन अनत सिद्धपरमात्मावोंकी भक्तिकर अब सम्राट्ने ध्यानके अभ्यासको स्थगित किया। वे एकदम अब अभेद भक्तिकी ओर गये। अब उन्होने इन्द्रिय व मनकी गति रोककर शरीररूपी जिनगृहके अदर तत्क्षण परमात्माको देखनेके लिये प्रारभ किया जिस प्रकार कि हाथपर रखे हुए दर्पणको ही देखते हों।

अब भरतजीको अपने शरीरके अंदर प्रकाश ही प्रकाश दिखता है। जहा देखते हैं ज्ञान है, दर्शन है, सुख है, तीन लोकमें परम सुन्दर उस आत्माको उन्होने उस समय साक्षात्कार किया।

परमात्मा इस शरीरके अंदर ही है। परंतु जो लोग बाह्य पदार्थोंको जानकर बाह्यपदार्थोंकी ओर ही उपयोग लगाते हैं उनको वह परमात्मा कभी दृष्टिगोचर नहीं होता है। वह मापने व तोलनेमें नहीं आसकता है। गिननेमें भी नही आसकता है। ऐसा वह विचित्र पदार्थ है। भरतजीने उसे देख ही लिया।

जिस प्रकार अनंत आकाशको लाकर एक घडेमें भर दिया हो उस प्रकार अंगुष्ठसे लेकर मस्तकपर्यंत आत्माको पूर्णतः देख-लिया या यों कहिये कि भरतजीने तत्वोंका अत ही देखलिया।

उस समय भरतजीके विचारमें कोई चंचलता नही, शरीर जरा भी इधर उधर हिलता नही, मनमें जरा भी चंचलता नही, इधर उधरका विकल्प नहीं, केवल अपने आत्मामें मग्न होगये है, शरीरका स्पर्श रहनेपर भी नहींके समान है जैसे सिद्धपरमात्मा तनुवातवलयमें स्पृष्ट होनेपर भी उससे बिलकुल पृथक् है।

भरतजीको उस समय यह अनुभव हो रहा था कि मैं चंद्र मण्डलमें प्रवेश कर गया हू। उसी प्रकार वे आत्मकांति व आत्मशांतिका अनुभव कर रहे थे। बीचमें कुछ चंचलताके आनेके बाद उन्हे ऐसा मालुम होता था कि अब चंद्रमण्डलको मेघाच्छादन हो गया है। उस समय कुछ अंधकार मालुम होने लगता था। उसी समय फिर वे अपने विचारोंमे दृढता लाते थे। तत्क्षण वह अंधकार दूर होता था। परमात्माके प्रकाश की जागृति होती थी। एक क्षणमें फिर वहां अंधकार फिर प्रकाश इस प्रकार क्रम क्रमसे होता था। जिस प्रकार स्वप्न व अर्ध निद्राकी हाल-तमें होता हो उसी प्रकार उस समय भरतजीको आत्मसाक्षात्कार हो रहा था।

जिस समय उन्हे प्रकाश दिख रहा था उस समय परमात्माका दर्शन होता था और उसी समय उनको आनद भी होता था। जिससमय चंचलता आती थी उससमय एकदम अंधकार होता था और उसी समय कुछ दुःख भी होता था अर्थात् भरतजी एक ही समय मोक्ष व संसारकी दशाका अनुभव करते थे।

अब उनके चारों तरफ प्रकाश है, ज्ञान है, सुख है, शक्ति है। जैसे आकाशको देखरहे हों वैसे अपने शरीरस्थ आकाश-

स्वरूप आत्माको वे बराबर देखरहे हैं। आकाशमें चित्र खींचनेके समान वहांपर भी आत्माके स्वरूपको चित्रित कर रहे हैं।

उनको अपने शरीरके अंदर सूर्यसे भी अधिक प्रकाश दिख रहा है। परंतु उसमे उष्णता नही है। साथमें आश्चर्य यह है कि उससे कर्म बराबर जलकर निकल रहे हैं। उष्णतासे रहित अग्नि कर्मको जलारहा है इस आश्चर्य घटनाको सम्राट् देखरहे हैं।

जिस प्रकार आकाशमें अनेक वर्णके मेघपटल इधर उधर संचार करते हैं उसी प्रकार सम्राट्के ध्यानसे कर्म की जड ढीली होकर वे बराबर पड रहे थे। उनको भरतजी देखरहे हैं।

जिस प्रकार कोयलेके पानीसे स्नान करनेपर उतरता हुआ पानी दिखता हो उसी प्रकार पाप वर्गणायें उतरती हुई दिखती थी। लाल या पीले पानीसे स्नान करते समय उतरते हुए पानीके समान पुण्यकर्म निकलते जा रहे थे।

जिस प्रकार पानी पहाडको कोरता है उसी प्रकार कर्मरूपी पहाडको सम्राट्के ध्यान रूपी पानी कोर रहा है। जिन! जिन! आश्चर्य है! ध्यानतत्वकी बराबरी करनेवाला लोकमें क्या चीज है?

जिस प्रकार सूईके धारके समान पानी बरसें तो गीली मट्टीके घडा पिघलकर चला जाता है उसी प्रकार उस ध्यानवर्षासे तैजस व कार्मण शरीर बराबर पिघलकर जा रहे थे।

गरुडको देखनेपर सर्पका विष अपने आप उतरकर जाता है उसी प्रकार भरतजीके ध्यानमे एकाग्रता जैसी आती जाती थी उसी प्रकार कर्मरूपी विष उतरता जाता है। साथमें अपनी आत्मामें ज्ञान, सुखके मात्राकी वृद्धि होती है।

जिस प्रकार धान्यकी गठडीकी रस्सीको ढीला करनेपर उससे

धान्य बाहर गिर जाता है उसी प्रकार कर्मकी गठडीकी रस्सीको ढीला करनेपर कर्मरेणु भी बाहर गिरते हैं। वह केवल ध्यानिको ही दिखते हैं। इसके रहस्यको उसके सिवाय अन्य कोई जान नही सकते।

जिस प्रकार हाथको पीछे मोडकर मजबूत बांधे हुए चोरको जैसा २ बंधन ढीला होता जाय वैसा २ सुख बढता है उसी प्रकार कर्मका बंधन जैसा २ शिथिल होजाय वैसा ही सुखकी वृद्धि होनेलगी।

क्षण क्षणमे जैसे जैसे आत्माको देखते जाते हैं वैसे २ कर्म संतानका न्हास होता जाता है। जैसे २ कर्मका नाश होता जाता है वैसे ही परमात्माके गुणोंकी वृद्धि होती जाती है।

कर्मोंको धीरे २ कम करके सम्राट् आत्माको एक विशाल व सुंदर भवन तैयार कर रहे हैं जैसे कि एक हुशियार कारीगर टांकीसे पत्थरके उखेर उखेर कर सुंदर मंदिरका निर्माण करता हो। कभी २ आत्माको ज्ञान व कांतिके साथ देख रहे हैं और कभी केवल ज्ञानरूप ही देख रहे हैं। अर्थात् एक दफे निर्विकल्पक रूपमे उसका अनुभव होता है। तत्क्षण विकल्पकी उत्पत्ति होती है। विकल्पके बाद निर्विकल्प, उसके बाद विकल्प इस प्रकार बराबर पलटता जाता है। जैसे जलमें पवनके संचार होनेसे उसमें तरंग उठते हैं एवं पवनके स्थिर होनेसे जल भी शांत रहता है उसी प्रकार इस आत्माकी भी हालत है। चित्तमें चचलता होनेसे विकल्पोंकी उत्पत्ति और चित्तमें स्थिरता होनेसे निर्विकल्पक अवस्था होती है। निर्विकल्पक अवस्था बहुत देर तक रह नहीं सकती, क्यों कि ध्यान के लिये उत्कृष्ट समय अंतर्मुहूर्तका बतलाया गया है। इसलिये उसके बाद तो विकल्प की उत्पत्ति होनी ही चाहिये।

एक दफे भरतजी विचार कर रहे है कि मैं भिन्न हूं, मेरा शरीर भिन्न है उससे कर्म भिन्न है। उसी समय मैं शब्दको वे भूल जावे हैं, एकदम सिद्धोंके समान परमानदमें मग्न हो जाते है।

ध्यानकी अवस्थामें आत्माको देख रहे हैं, और साथ ही कर्मोंके पतनको भी ये देख रहे हैं। एवंच उन्हे कर्मोंको नाश करनेवाली इस अद्भुतविद्यापर प्रसन्नता भी होती है।

प्रसन्नताके मारे अदर ही अदर कभी २ भरतजी गुनगुनाते हैं कि हे परम गुरु! परमाराध्य! गुरु हंसनाथ। तुह्मारी जय हो! कभी इसे भी भूलकर फिर एकाग्रावस्थामें मग्न होवे हैं।

फिर उसमें आनंद आनेपर एकदम कह उठते हैं कि श्रीनिरंजन सिद्ध! सिद्धातसार! नित्यानंद! तुह्मारी जय हो! परतु उनका यह कहना उन्हीको सुननेमें आता है। दूसरे कोई भी उसे सुन नही सकते।

उस समय भरतजी साक्षात् ऐसे मालुम होते थे कि उज्वल अदृष्ट व अश्रुतपूर्व चादनीमें एक उज्वल पुतलीकी स्थापना की हो। इतना ही क्यों? चद्र व सूर्योके समूहमे ही जाकर बैठे तो नहीं है? या जिनेंद्रकी समवशरणादिक संपत्ति ही वहा एकत्रिक नहीं हुई? अथवा अनंत सिद्धोंके बीचमें जाकर तो नहीं बैठे? इस प्रकार राजयोगींद्रको उस समय अनुभव हो रहा था।

उस समय पंचेंद्रियका सबंध नहीं है। यही क्या? देवेंद्रके सुखको भी सामने रखे तो वह भी फीका पडता है। इस प्रकार भरतजी प्रमाद रहित होकर अतींद्रिय सुखका अनुभव करने लगे।

जब निर्विकल्पक विचारमें स्थिरता आजाती थी उस समय

सर्वांगमे शांति का अनुभव होता था। इतना ही नहीं स्व और पर'का भी विकल्प वहांपर नहीं है।

आनन्दसागरको अब भरतजी एक छोटेसे पात्रमे भरकर पीने लगे। जैसे २ वे पीते जाते थे वैसे २ वह समुद्र उमडता ही जाता था। उस समुद्रमे तरंग नहीं है, फेन नहीं पानी नहीं। वह लोकके समुद्रके समान नहीं है।

मगर, मत्स्य, सर्प आदि दुष्ट जानवर उस समुद्रमें नहीं है। भूमिका स्पर्श वह नहीं करता है। ध्यानिके सिवाय और किसी को भी वह समुद्र देखनेमें ही नहीं आ सकता है। भरतजी उस समुद्रमे बराबर डुबकी लगा रहे हैं।

पहिले भोगे हुए पचेंद्रिय विषय संबंधी भोगोंको अत्यल्प प्रमाणमें वह दिखाता है। केवल श्री आदिप्रभु ही उस आनंद सागर को जानते हैं। वहींपर यह वीर जलक्रीडा कर रहे हैं। वह कितना उच्च सुख होगा ?

उस आत्मसुखको भोग सकते हैं, परतु दूसरोंको उसकी व्याख्या कर कहना अशक्य है। आकाशमें चारणमुनियोंका विहार हो सकता है। परंतु जिस मार्गसे वे गये उस मार्ग मे: उनके पाटोंका चिन्ह मिल सकता है क्या ? कभी नहीं।

उस समय सम्राट् अपनेमें अपने लिये, अपनेको ठहराकर और अपने द्वारा ही अपने को देखकर अपनेमें उमडे हुए सुखको बराबर भोग रहे थे।

बाहरकी क्रीडा सामग्रीके विना ही क्रीडा कर रहे हैं। रस्सी वगैरहके विना ही झूला झूल रहे है। स्त्रीके विना ही रतिसुख का अनुभव कर रहे हैं मुखकी परवाह न करते हुए चिद्गुणात्मका भोजन कर रहे हैं। शरीरके विना ही रूपका दर्शन करा रहे हैं। ऐश्वर्यके विना ही आज वे अत्यधिक श्रीमान् हैं। क्या ही

विचित्रता है ?

बाहर जो उन्हे देखते हैं उनको वे राजाके समान दिखते हैं। अंदरसे वे राजयोगि है। साथ मे निजानंद रसको भी बराबर भोग रहे हैं। इसलिये भोगी भी है।

बाहर से देखें तो आभरण हैं, वस्त्र हैं, परंतु अन्दरसे ध्यानके सिवाय और कुछ भी नहीं है। ऐसा मालुम होता है कि शायद सिद्ध परमेष्ठीको वस्त्र व आभरणसे श्रृगार कर बैठाल दिया हो।

कभी २ आभरणोंको निकालकर केवल एक धोती पहनकर वे ध्यान करनेके लिये बैठते थे और कभी आभूषणोंको वैसा ही रखकर ध्यान करते थे, परंतु बाहरसे ही सब कुछ रहते थे। अदरसे उनका कुछ भी प्रभाव नहीं था।

भरतजीका शरीर सग्रथ है परन्तु आत्मा उस समय निर्ग्रंथ है। इस विचित्र दशा मे उन्हें अलौकिक सुखका अनुभव होरहा है।

अब भरतजीकी आखोंमें आनदाश्रुका पात होरहा है शायद यह अदर वह आत्मानंद उमड कर बाहर आरहा है। सारे शरीर में रोमाच होगया है। परंतु वे अपने ध्यानमें मग्न हैं।

परमात्मसुखको भोगकर भरतजी जरा मस्त, मोटे ताजे होगये। इसलिये उनके गले के मोतीका हार जरा अब हिलने लगा है।

भेद भक्तिमे उन्होंने पहिले ध्यानका अभ्यास किया था तदनतर अभेदभाक्ति में आरूढ होगये। उस समय वे पहिलेके सर्व सुखको भूलकर अपने स्वरूपमें लीन होगये।

यदि कोई जवान् स्त्री आकर भरतजीको आलिंगन दें तो भी उनको मालुम नहीं हो सकता हैं अर्थात् वे इतनी एकाग्रतामें बाह्य सब विषयोंको भूलकर अपने आत्मामें मग्न होगये हैं।

जिस प्रकार मूसलधार पानी बरसते समय लोग स्तब्ध होकर अपने मकानमें बैठे रहते हैं उसी प्रकार बाहरके कुछ भी विषयोंको न जानकर भरतजी अपने आत्मराज्यमें लीन होगये हैं।

क्या वे स्वर्ग लोकमें हैं ? ज्योतिर्लोकमें हैं ? बहिर्लोकमें हैं ? नरलोकमें हैं या नागलोकमें हैं ? नहीं ! नहीं ! वे अंतर्लोकमें मौजूद हैं।

भेदविज्ञानरूपी छेणीसे शरीरको भेदकर वहांपर परमात्माकी स्थापनाकर उसकी उपासना कर रहे हैं। इस प्रकार भरतजी अत्यंत एकाग्रताके साथ ध्यानमें मग्न होगये।

उधर चतुर्मुखमंदिरमें सायवंदनके लिये गई हुई भरतकी राणियां उत्तमभक्तिके साथ भगवान् आदि प्रभुकी स्तुति करनेको प्रारंभ करेंगी इसकी सूचना देनेके लिये ही मानो सूर्यदेव उत्तर क्षितिकी ओर चला गया। उस समय सांयंकालकी लालिमा दिखने लगी वह मानो उन चंद्रमुखी स्त्रियोंकी जिनभक्तिका ही बाह्य चिन्ह है। इनके लिये आकाश ही पुष्पके रूपमें परिणत हुआ हो उस प्रकार तारायें आकाशमें चमकने लगी।

समवशरणमें दिव्यध्वनिके खिरनेका यही समय है ऐसा समझकर उनस्त्रियोंने श्री ऋषभचरणकी स्तुतिकरनेके लिये प्रारंभ किया।

उस समय उन स्त्रियोंमें न आलस्य था न प्रमाद था और न इधर उधरकी कोई बात चीत थी। परतु संतोष, शांति व भक्तिके साथ श्री जिनेंद्र भगवंतकी उन्होंने स्तुति की।

वंदनाष्टक.

स्वामिन्! आप जन्म जरा मृत्युको दूर कर चुके हैं! तपोधन रूपी कमलके लिये आप सूर्यके समान हैं। कामदेवको आप जीत चुके हैं। कामदेव बाहुबलिके आप पिता हैं। ज्ञानस्वरूप हैं

और आप प्रथम तीर्थंकर हैं।

भगवन्! दिव्यध्वनि रूपी लक्ष्मीके आप पति हैं। आपके पाद कमलोंको दश दिक्पालक देव उपासना करते हैं। आप ही आदि ब्रह्मा है। केवलज्ञान व केवलदर्शन ही आपका स्वरूप है।

त्रिलोकदीप! आपका ध्वज सत्य स्वरूप है। सदा आनन्दमें आप मग्न रहते हैं। सर्व प्रकारके बाह्य अभ्यंतर परिग्रहोंसे आप रहित हैं और सद्बोधसे सहित हैं। आप किसीके अवलंबनसे नही रहते। त्रिभुवनके प्राणियोंके द्वारा आप स्तुत्य हैं।

पवित्रात्मन्! आप अपने अत्यत धवल कीर्तिसे तीन लोकको भर चुके हैं। कोटि चद्र व सूर्यके समान आपका तेज है। आप अत्यंत निष्पाप हैं आपकी जय हो!

स्वामिन्! आपके दरबारमें देवगण उपस्थित होकर आपकी रात दिन स्तुति करते हैं! एव भक्तिवश सुरपटह, अशोकवृक्ष, भामण्डल आदि अतिशयोंको उत्पन्न करते हैं! इस प्रकार आप अत्यंत वैभवसे युक्त हैं।

भगवन्! आपके वचन उत्तमतरगोंसे युक्त गगा नदीके जलसे भी अधिक शीतल हैं। उसमें अंग अगबाह्य आदि भेद होते हैं। वही जैन शास्त्र हैं।

त्रिलोकीनाथ! आप कर्म लेपसे रहित हैं, आपकी सेवामे देवेंद्र भी हाथ जोडकर चोवीस घटे खडा रहता है। आपकी वंदना व भक्ति करता है। स्वामिन्! अपने कल्याण करनेवालेकी स्तुति कौन न करेगा? आप शरीरको लोप करनेके लिए संजीविनीका दान करते हैं। आपकी जय हो।

दयानिधि! आपका लाछन वृषभ है। इसलिये वृषभ चिन्ह से युक्त हैं। वृषध्वज आप हैं। वृषभमुख नामक यक्षका आप अधिपति हैं। आप वृषभ तीर्थंकर है। वृषभ जिनेश्वर हैं।

वृषभ नायक हैं। वृषभके अधिपति हैं।

इत्यादि प्रकारसे अत्यंत भक्तिपूर्वक भगवान् आदिप्रभुकी स्तुति करती हुई वे राणियां जिन मदिरमें शुभोपयोग में अपने समयको व्यतीत कर रही थी इतनेमें भरतजी जहां ध्यानकेलिए विराजे हैं उस स्वाध्यायशालामें एक अद्भुत घटना हुई जिसे देखनेकेलिये हम पाठकोंको उधर ले जाते हैं।

जिस समय भरतकी राणियां जिनमंदिरको संध्यावंदनके लिये चली गई उस समय भरतजी एकाग्रताके साथ ध्यानमें मग्न होगये यह विषय हम पीछे विवेचन कर चुके हैं। उस समय भरतजी के सातिशय ध्यानकी महिमाको देखनेके लिये वहांपर वनदेवी, नगरदेवी, जलदेवी, आदि शासनदेवतायें उपस्थित हुई व मनुवंश तिलक सम्राट् के ध्यानको देखकर उन लोगोंनें नाकपर उंगुली दबाई।

आत्मारामको साधन करनेवाले राजयोगी के अचल ध्यानको देखकर उन व्यंतर देवतावों के हर्षका पारावार रहा नही। अंगुष्टसे लेकर मस्तकतक बारीकीसे सम्राट् को देखती हैं, परंतु पत्थर जैसे ध्रुव है।

एक दफे वे देवतायें हाथ जोडती हैं, एकदफे हर्षसे सिर झुकाती हैं। एकदफे पूजा करती हैं, कोई चामर लेकर डोल रही हैं, कोई पुष्पवृष्टि कर रही है और कोई भक्ति से आरति उतार रही हैं।

धीरे २ भरतकी स्तुति भी वे देवतायें करने लगी। साथमें झांक झांककर राणियोंके मार्गकी ओर भी देख रही हैं कि वे आई तो नही हैं? कुछ देवतायें आश्चर्यचकित होकर दूरसे खडी २ भरतजीको देख रही हैं।

बाहरसे यह सब उत्सव होरहा है। इन सबको भरतजी

जानते हैं या नही ? जिस समय ध्यानमें एकाग्रतासे लीन हैं उस समय तो उनको इन बाह्य क्रियावोंका अनुभव नहीं होता है । परंतु बीचमें चचलता उत्पन्न होजाय तो ध्यान भी विचलित होजाता है, विचलित अवस्थामें उनको बाहरकी देवतावोंका उत्सव भी देखनेमें आता था । परतु उनको देखनेसे सम्राट्को कोई हर्ष नहीं होता था, अत्यत उदासीन भावमें उनको देखते थे । कारण कि भरतजी आत्मतत्वके प्रभावको जानते थे । जो लोग अविवेकको छोडकर आत्मरूपका दर्शन करते हैं उनके चरणमें तीन लोक शिर झुकाता है तो व्यंतरदेव आकर सेवा करें इसमें आश्चर्य क्या है ? इस प्रकार समझकर अत्यत शात भावसे अपने आत्मा को चिंतवन कर रहे थे ।

कर्मकी गति अत्यंत विचित्र है । भरतजीको इस बातका संतोष हुआ था कि सभी राणिया जिनदर्शनके लिये चली गई । अब मैं अकेला बैठकर अच्छीतरह ध्यान करसकूगा । परंतु एकाकी रहनेको पूर्व पुण्य कहा छोडता है ? स्त्रियोंके चले जानेपर भी व्यंतर देवतायें तो भरजीकी सेवामें उपस्थित हुई । सचमुचमे उस समयके दृश्यका क्या वर्णन करे ?

वह स्वाध्याय मण्डप नव रत्नमय था । उस नवरत्नमय मंदिरमें भरतजी भगवंतके समान मालुम होते थे । और अनेक प्रकारकी देवतायें वहापर श्री भगवतकी पूजा व भक्ति कर रही थी रात्रीका एक प्रहर बीतगया ।

भरतजी बाहरके विषयोंसे अपने विकल्पको हटाकर अपने आत्मामे मग्न थे । अब उनकी राणिया मदिरसे स्वाध्याय मण्डपकी ओर जानेके लिये निकली, संध्याकालमें वृद्ध पूजेंद्रके द्वारा की गई पूजाको अत्यंत भक्तिसे देखकर बद्धाजलिसे त्रिलोकी नाथको नमस्कार करती हुई लोकोद्धारक अपने पतिकी सेवामें वे

स्त्रियां अब आरही हैं।

उस दिन उनके साथमें कोई दासी नही है। इतना ही नही स्वतः के शरीरमें कोई आभरण भी नही है। अत्यंत पवित्र तपस्विनीके समान वे मालुम होती हैं। रोज वे यदि कहीं जाती हैं तो उनके साथ दीपकको लेचलनेवाली दासिया भी रहती है, परतु उनके साथ आज कोई दीपकदासी नही है। क्या वे स्वतः अपने हाथमें दीपक लेकर चल नहीं सकती है? नहीं! नहीं! उनको दीपककी जरूरत ही नहीं है। बहुमूल्य रत्नोंसे जटित अंगूठियोंके प्रकाशसे ही वे बराबर मार्गको तय कर रही थी। वह भी जाने दो, मोती व पद्मराग मणियोंसे निर्मित मंदिरके कलश, परकोटा आदिके रत्नकी कांतिसे सहसा भ्रम होता था कि यह दिन तो नहीं है?

इन सतियोंको दूरसे ही आती हुई देखकर व्यतरदेवतायें एकदम अदृश्य होगई, भरतजी ध्यानमें मग्न हैं, देवतावोंनें उनकी पूजा की, अब मनुष्य स्त्रियां आकर उनकी पूजा करेंगी। वे राणियां दूरसे ही खडी होकर ध्यानस्थ सम्राट् को देखने लगी,

मेरु पर्वत ही साक्षात् पुरुषके आकारमें इस स्वाध्यायमण्डप में आकर विराजमान है ऐसा उन्हे मालुम होरहा था।

सोनेकी चौकीकी दोनों ओर रत्ननिर्मित जिन व सिद्धकी मूर्तिसे वह स्वाध्याय शाला शोभित होरही थी। भृंगार, कलश, दर्पण, चामर रत्न तोरण आदि मंगल द्रव्य भी यत्र तत्र रखे हुए हैं। रत्नदीपककी पंक्ति भी अत्यंत सुंदर प्रतीत होरही थी। वह भरतचक्रवर्तिकी योगशाला उस समय हर तरहसे रत्नमय ही हो गया था। पाठक भूले न होंगे कि यह सब अतिशय व्यंतरदेव कर गये हैं।

सूर्य लोक सदृश उस रत्न मण्डपमें प्रवेशकर उन राणियोंने

योगिराज भरतजीको तीन प्रदक्षिणा दी व सभी वहापर बैठ गई।

अब उन लोगोनें विचार किया कि कुछ धर्मचर्चा करनी चाहिये। यद्यपि भरतजी ध्यानमें बैठे हैं तो भी इनकी बातचीतसे उनको कोई विघ्न नही होसकता है, कारण कि जिसने नया ही नया ध्यानका अभ्यास किया हो उनको इधर उधरसे हल्ला गुल्ला होनेपर चित्तमें क्षोभ होसकता है। परतु ये तो व्युत्पन्न ध्यानी है, इसलिये इनके चित्तमें बाह्यके विषयोंसे क्षोभ उत्पन्न नही हो सकता है अतएव उन लोगोनें विचार किया कि अपन लोग अब आध्यात्मिक चर्चा करें।

रत्नदीपकोंके प्रकाशमें परमात्मरत्नका वर्णन जिस शास्त्रमे हो उसे उन स्त्रियोनें वाचनेको प्रारंभ किया वह भोजन कथा नही है, जार व चोर कथा भी नही है। ससारकी विषय वासनाओंकी ओर खींचनेकी कथा भी नही, अपितु आत्मसाधनकी कथा है।

भरत चक्रवर्तीने पहिले भगवान् आदि प्रभुके समवशरणमें जाकर आत्मप्रवाद नामक आत्मतत्वविवेचनको जानकर उसे सर्व साधारणको समझने योग्य सरल भाषासें एक ग्रथकी रचना की थी। उसीका स्वाध्याय ये स्त्रिया कर रही हैं।

कलियुगमें कुदकुदाचार्य परमयोगीने जिस प्रकार प्राभृतशास्त्रका निर्माण किया उसी प्रकार सतयुगमे भरतयोगीने उस शास्त्रका निर्माण किया था।

कलियुगमें जिस प्रकार अमृतचद्र सूरिने समयसार नाटककी रचनाकर आत्मकलाका प्रदर्शन किया उसी प्रकार कृतयुगमे चक्रवर्ती भरतने उक्त ग्रथमे परमात्मकलाका अच्छीतरह दिग्दर्शन कराया है।

योगींद्रस्वामीने प्रभाकर भट्टको जिस प्रकार बहुत मृदुशब्दों

में परमात्मकथाको सुनाया है उसीप्रकार भरतयोगीने अज्ञानियों को भी परमात्मतत्वमें रुचि उत्पन्न हो जाय इस विचारसे उक्त ग्रंथमें सुंदर व मृदुशब्दोंसे विषय विवेचन किया है।

पद्मनंदि योगीके द्वारा निर्मित स्वरूपसंबोधन, पूज्यपाद स्वामी विरचित समाधिशतकके समान ही उक्त ग्रंथमे तत्वविवेचन किया गया है।

ज्ञानार्णव, योगरत्नाकर, रत्नपरीक्षा, आरधनासार, आदि सिद्धांतोंके समान ही उक्त ग्रंथमे आत्मतत्वका प्ररूपण किया गया है, विशेष क्या ? इष्टोपदेश, अष्टसहस्री व कुंदकुन्दाचार्यकृत अनुप्रेक्षा शास्त्रके समान ही आत्माको आल्हादित करनेवाला वह महान् ग्रंथ था।

संक्षेपमे विचार किया जाय तो वह नियमसारके समान था। विस्तारमे वह प्राभृत शास्त्रके समान था।

भरतजीने उन स्त्रियोंको सिखाया था कि आपलोग इधर उधर के बहुतसे, शास्त्रोंको जिनमे आत्महित होने की कोई संभावना ही न हो, बांचकर अपना अकल्याण न करलेवें, केवल अपने आत्महितके साधक इस अध्यात्मसारका अध्ययन करें।

लोकमे अगणित शास्त्रोंको बांचनेपर भी जिनको आत्म कल्याण करनेकी भावना उत्पन्न न हुई तो उन शास्त्रोंके बांचनेसे प्रयोजन क्या है इसलिये ऐसे ही शास्त्रोंका स्वाध्याय करना चाहिये जिनसे आत्मतत्वकी प्राप्ति हमें होसके।

जो लोग ध्यानके लिये साधक शास्त्रोंका अध्ययन नहीं करते और ख्याति, लाभ व पूजा के लिये अन्य अनेक शास्त्रोंका अध्ययन करते है सचमुचमें वे मूर्ख हैं। वे नीच प्रकृतिके हैं, वे नेत्ररोगके बहानेसे युक्त रीछके समान है। लोकमें उनकी हंसी होती है।

सपूर्ण शास्त्रोंका सार अध्यात्मचिंतवन है। और वही निष्क-

लंक तपश्चर्या है। व वही मुक्तिका बीज है इत्यादि अनेक प्रकारसे भरतजीने उनको कितने ही वार उपदेश दिया था। इसलिये उन सब बातोको स्मरण करती हुई अत्यत एकाग्रताके साथ स्वाध्यायमे दत्तचित्त होगई है। कोई भी आपसमें इधर उधरकी बातें नहीं करती हैं। केवल आध्यात्मिक चर्चा करती हुई ही अपने समय को व्यतीत कर रही है।

वे राणिया भरतजीके द्वारा निर्मित अध्यात्मसार नामक पुस्तक को बाच रही है। क्या उस पुस्तकमे आत्मा मौजूद है? नहीं, नहीं, पुस्तक तो यह कहती है कि आत्मा तुम्हारे शरीर में है, तुम उसे अपने ही स्थानमे देखो।

वे स्त्रिया विचार कर रही है कि अभीतक हम लोग बाह्यमे ही मोहित होकर हम बाह्य हो रही थी परतु हमें अब ग्राह्य अध्यात्म मिल गया है। हमारा अब कल्याण होगा।

इस समय उनमें से कुछ स्त्रिया कई तरहके वाद्योंको लेकर उनके साथ प्राभृत शास्त्रके अर्थोंको गाने लगी। कोई २ वीणाके साथ अत्यत सुस्वरके साथ गारही हैं।

उस समय रात्रीके १२ बजे हैं। इस लिये उस समयके लिये उचित देसि, रामाक्षि, भैरवि, कुरुजिका आदि रागोंके क्रमको जानकर ही वे अत्यत सुधुमधुर शब्दोंसे गारही थी जिससे सब लोगोंका आलस्य दूर होजाय।

लोकमें इतर कोई स्त्रिया उपवास करें तो वे उठ ही नही सकती हैं। किसी तरह उठती पडती दिन और रात पूरा करती है। परतु ये राणिया इस चातुर्यसे आलाप कर रही थी कि सात वार भोजन किये हुए गायक भी उतने अच्छीतरह गा नही सकता, अर्थात् उन स्त्रियोंको उपवासका कोई आयास ही नही, अत्यंत उत्साहसे आत्मकार्यमें मग्न हैं।

इस प्रकार उनमे कुछ स्त्रियां साहित्य और संगीतरसमें मग्न थी, और कुछ जप करनेमे दत्तचित्त थी । और कुछ जिनसिद्ध बिंबोंको अपने हृदयमें स्थापन कर दाहिने हाथमें जपमालाको सरकाती हुई पंचपरमेष्ठियोंके स्वरूप को चिंतवन करने लगी ।

कुछ स्त्रियां पंचमंत्रका जप कर रही थी और कुछ अपने चंचलचित्तमें निश्चलता लाकर ध्यान का प्रयत्न करने लगी ।

जिस प्रकार भरतजीने ध्यानके लिये आदेश दिया है उसी प्रकार वे निश्चलतासे बैठकर आंखोंको बंद कर, अक्षरात्मक ध्यानको करने लगी हैं, उस ध्यानमे कभी वह कमलासन आदिब्रह्मा भगवान् आदिनाथका दर्शन करती हैं, और कभी लोकाग्रवासी सिद्धोंका दर्शन करती हैं । इनके ध्यानमे निश्चलता नहीं । एक क्षणमे भगवान्का दर्शन होता है, दूसरे क्षणमे विलय होता है । क्या वह ध्यानतत्व इतना सरल है जो कि भरतके समान सबको अवगत होजाय ? नहीं ।

ध्यान साक्षात् रूपसे पुरुष ही करते हैं, स्त्रिया ध्यानकी भावना करती हैं । इधर उधरके विकल्पोंको हटाकर यदि वे स्त्रिया निश्चलचित्तसे ठहरती हैं तो वह ध्यान नहीं अपितु ध्यानका स्मरण है । ध्यानकी भावना है ।

इस प्रकार भरतकी सतिया कोई शब्दब्रह्मसे (स्वाध्याय) कोई गीतनादब्रह्मसे (गायन) और कोई योगब्रह्मसे (ध्यान) उस रात्रीको व्यतीत कर रही थी ।

इस प्रकार जब वे स्त्रियां ब्रह्मत्रय पूजामें मग्न थी उस समय श्री भरतजी अपने निश्चल परब्रह्ममें मग्न थे ।

कभी वे शुद्धोपयोगमें मग्न होते हैं, और कभी शुद्धोपयोगके साधनभूत शुभोपयोगका अवलंबन लेते हैं ।

इस प्रकार उपवासके आयाससे रहित होकर वे अत्यत संतोषके साथ भीषण कर्मोंको नाश करते हुए अपने समयको व्यतीत कर रहे हैं।

रात्री बीतगई, अब सूर्योदय होनेके लिये पाच घटिका शेष है। भरतजी अभीतक ध्यानमें ही मग्न है।

इति पर्वयोगसंधिः



अथ पारणा संधिः



भरतजी अभीतक ध्यानमें मग्न हैं। उनके ध्यानका क्या वर्णन करें, शांति, कांति व एकांतका आदर्श वहांपर था।

कोयलके शब्द, वीणाके स्वर व समुद्रके घोषके समान वह ब्रह्मयोग भरतजीके कानमें मीठी २ आवाज उत्पन्न कर रहा है। उनको मोतीकी धवल बिंदुका भी दर्शन होरहा है। कभी आनंदसे मैं इधर उधर जारहा हू इस बातके सुखका अनुभव होरहा है। साथमें रत्नमालाके अदर अक्षर पंक्तियोंको भी उस ध्यानमें वे देख रहे हैं साथमें रत्नत्रयसे युक्त आत्माको देखकर सपत्न कर्मोंको नाश कर रहे हैं।

अंदर से भरतजी शुद्ध स्वरूप आत्माको देखरहे हैं। बाहरसे भी अब प्रकाश होने लगा है।

शीत पवनका संचार होने लगा। तारावोंकी कांति फीकी पडगई, जगत्का अंधकार कम हुआ, जिनमंदिरोंमें वाद्यघोष भी होने लगा सूर्य देवसे रहा नही गया, मैं जल्दी जाकर आत्मयोगी भरतका दर्शन करता हूं एवं उसकी पारणा कराबूंगा इस विचार से वह शीघ्रगतिसे अपने रथको चलाते हुए उदयाचलपर आकर चढ गया। उस समय उसके आगमनकी सूचना जिनमंदिरके उन्नत शिखरके कलशपर पडे हुए अरुण किरण दे रहे थे।

भरतकी राणियोनें आकार प्रार्थना की कि स्वामिन्! अब सूर्योदय होगया है, अब तो आप आंख खोलनेकी कृपाकरें, भरतजीने अंतरंगमें ही शातिभक्तिका पाठ किया एव चिदंबरपुरुष परमात्माको नमस्कार कर शांत दृष्टिसे आंखें खोल ली।

उसी समय राणियोंने आकर सविनय नमस्कार किया। आशिर्वाद देते हुए सबको उठाकर उनके साथ मिलकर स्नान गृहमें गये। वहां योगस्नान कर जिनमंदिरको चले गये।

सबसे पहिले मदिरमे शासनदेवताओंको अर्घ्य प्रदान कर श्री भगवंतका स्तोत्र व जप किया, तदनंतर अपनी देवियोंके साथ श्री जिनेंद्र भगवंतकी पूजा की।

जल गंध, अक्षत पुष्प, चरु, दीप, धूप, फल व अर्घ्यके साथ जिस समय भगवानका पूजन श्री भरतजी कर रहे थे उस समय वह जिनमदिर अनेक मगल वाद्योंसे गूंज रहा था।

अर्घ्य प्रदानके बाद शातिधारा छोड दी एव अनेक अनर्घ्य रत्नोंसे जयजयाकार शब्दके साथ पुष्पाजलि वृष्टि की।

तदनतर भरतजीने अपनी देवियोंके साथ गंधोदक को अत्यंत आदरके साथ ग्रहण किया भगवंतके सामने खडे होकर कहने लगे कि कल हमने जो व्रत लिए उनकी पूर्ति हुई, अब हम उन व्रतोंका विसर्जन करते हैं। इस प्रकार कहते हुए पहिले दिन के बंधे हुए व्रतकंकण को उतार कर वहा पर रखा। इसी प्रकार सब स्त्रियोंने भी ककण उतार दिया।

तदनतर भरतजीने अपनी स्त्रियोंके मुखकी ओर देखा।

कुछ स्त्रियोंके मुख प्रसन्न दिख रहे थे। और कुछ स्त्रियोंके मुख म्लान दिख रहे थे। भरतजी समझ गये कि जिनके मुख म्लान हुए हैं वे स्त्रिया प्रथम उपवास की हैं। उनको उपवास करनेका अभ्यास नहीं, जिनको पहिलेसे उपवास करनेका अभ्यास था उन स्त्रियोंका मुख प्रसन्न दिख रहा था।

भरतजी अपने मनमे ही विचार करने लगे कि हा! इन विचारी स्त्रियोंने उपवास व्रतको सरल समझकर ग्रहण किया, परतु इनको कष्ट हुआ मालुम होता है। तदनंतर प्रकट रूपसे कहने लगे कि देवी! आप लोग! बहुत देरी हुई, जल्दी जाकर पारणा करो।

तब उन स्त्रियोनें सासकी वदना कर पारणा करनेका विचार प्रकट किया।

तब सम्राट्ने कहा कि देवी ! आज आप लोग सासकी वंदना करती हुई विलंब न करें, नवीन संयमिनियोंके साथ मिलकर सब शीघ्र पारणा करें। साथमें इस बातका ध्यान रखें कि जो अनभ्यस्त उपवासिनी है उनके पास कोई अभ्यस्त उपवासिनी खडी रहकर उनको योग्य रीतिसे पारणा करावें, यही सज्जनोंका कर्तव्य है।

तब उन स्त्रियोनें कहा कि स्वामिन् ! आप जैसी आज्ञा दें वैसा ही हम करेंगी, परंतु हम अपने नियमानुसार एक दफे हमारी सासकी वंदना कर आयेंगी। स्वामिन् ! आपको हम लोगोंके प्रति इस प्रकारका विचार क्यों हुआ। हमें उपवासका कोई कष्ट नहीं हुआ।

सम्राट् कहने लगे कि देवी ! मैं जानता हूं कि आप लोग धैर्यवती हैं परंतु अधिक धूप होनेसे पित्तका प्रकोप होता है। इसलिये उसका ध्यान जरूर रखें।

तब उन देवियोनें कहा कि स्वामिन् ! हमेशा हम लोग सासकी वदना करती हैं। आज तो पर्व दिन है। इसलिये आज हम गये विना कैसे रह सकती हैं ?

देवी ! रोज तुम लोग सासका दर्शन करो। आजके दिन नही करे तो भी चलेगा। जावो ! जल्दी पारणा करनेकी तैयारी करो।

स्वामिन् ! प्रतिनित्यके समान हम लोग आज दर्शन के लिये नही जावें तो हमारी पूज्य सासके मनको कष्ट नही होगा ?

देवी ! यदि कही हुई आज्ञाको आप लोग नहीं मानेंगी तो तुम्हारी सासके बेटे को कष्ट नहीं होगा ? जरा विचार करो ! जावो।

इस बातको सुनकर वे स्त्रिया हंसकर कहने लगी कि आज हम लोग माता यशस्वती देवीके दर्शनसे वंचित होगई। हर्ज नहीं

हम अब पारणाके लिए जाती हैं।

देवी! जावो! चिंता मत करो। पुत्रकी बात सुननेसे माता यशस्वती तुम लोगोंसे प्रसन्न हो जायगी। कुछ लोग नवीन उपवासिनियोंको भोजन कराने जावो। और कुछ लोग माताकी वंदनाकेलिये जावो। देखो! कोई चिंता मत करो। आज मातुश्री हमारे महल में भोजन करें वैसी व्यवस्था करेंगे जिससे सबको दर्शन करनेका मौका मिल जायगा।

इस बातको सुनकर सब स्त्रिया प्रसन्न होकर जाने लगी। उनमें से पारणाकेलिये जानेवाली स्त्रियोंको बुलाकर सम्राट्ने कहा कि देवी! देखो! पहिले पहिले उपवास करना महान् कष्ट है। उदरमें आग होती है। जलाती है। परंतु पीछे अभ्यास होनेपर यह उपवास सरल हो जाता है। उसी उपवासकी आगसे कर्म भी भस्म हो जाता है।

एक दिनका उपवास भी कर्मको अच्छी तरह सताता है। आगे उससे कैवल्यकी प्राप्ति होती है। जन्ममरणका संकट टलजता है। देवी! मुक्तिकी प्राप्तिकेलिये अभेद भक्तिकी आवश्यकता है। अभेद भक्तिके लिये विरक्तिकी आवश्यकता है। विरक्तिके लिये यथाशक्ति तपकी आवश्यकता है। तपकेलिये भी युक्तिकी आवश्यकता है। वही युक्ति यह उपवास है।

उपवास किया हुआ शरीर अत्यंत उष्ण रहता है। इसलिये बहुत सावधानीसे भोजन करना! दो चार घास लेनेके बाद एक दम चक्कर आता है। उस समय होशियार रहना।

एक दम अन्न उतरता नहीं। पानी पीना अत्यधिक भाता हैं। प्यास अधिक लगती है। परंतु एकदम पानी पीना ठीक नहीं। पहिले किसी तरह अन्नका ग्रहण धीरे धीरे करके बादमें पानी लेना चाहिये। पहिलेसे पानी नहीं लेना।

देवी ! जिस प्रकार नवीन घटकेपर पानी डालनेपर चुप् शब्द होता है इसी प्रकार नवीन गर्भ रहनेपर एकदम शरीरमें भी चुप् होता है, चारों तरफसे पीलापना दिखने लगता है। बस मनमें घबराना नहीं।

पहिले २ उपवास करकर मालुम होनेपर भी बादमें उससे महान् सुखकी प्राप्ति होती है। कर्म निर्जरा होता है, मोक्षकी प्राप्ति होती है, यह भगवान् आदिनाथकी आज्ञा है। इत्यादि अनेक प्रकारसे सम्राट्ने उन स्त्रियोंको पारणा करनेकी विधिका उपदेश दिया। एवं कुछ स्त्रियोंको पारणाके लिये जानेको कहा, और कुछ स्त्रियोंको माता यशस्वतीके पास भेजकर और कुछ स्त्रियोंके साथ स्वयं महलकी ओर चले। जो स्त्रियां यशस्वती देवीके महलकी ओर जाती थी उन स्त्रियोंसे भरतजीने कहा कि आप लोग माताजीके पास रहें, मैं शीघ्र ही मुनिदानकी क्रियासे निवृत्त होकर उधर आता हूं, तबतक आप लोग मेरी प्रतीक्षा करें।

अपने साथकी स्त्रियोंसे इन्होंने कहा कि आप लोग जल्दी महलमें जाकर मुनिदान की तैयारी करें। मैं बाहर दरवाजे पर जाकर मुनियोंका प्रतिग्रहण कर लाता हूं। ऐसा कहकर भरतजी मुनियोंकी प्रतीक्षाके लिये गये। कुछ स्त्रियां पारणा करनेके लिये गई। और कुछ मुनि दानकी तैयारीके लिये गई और कुछ सासकी वंदना के लिये गई। इधर यशस्वती महादेवीका भी उपवास था। उसने भी अर्जिकाओंके साथ जागरणमें रात्रिको व्यतीत किया था। अब सुप्रभातमें देवपूजा कर मण्डपमें आकर बैठी है।

आज माता यशस्वती देवीकी पारणा है इस उपलक्ष्य में उसके पुत्रोंने स्थान स्थानसे अनेक बहुमूल्य उपहार भेजा है। उन सबको देखती हुई यशस्वती महादेवी विराजी हैं।

यशस्वती महादेवी को सौ सुंदर पुत्र हैं।

उनमें से छह पुत्र तो पहिले से दीक्षा लेकर गये थे, शेष ९४ पुत्र भिन्न २ राज्यो में राज्य पालन कररहे हैं। उन सभी पुत्रोनें मातुश्री की पारणा के उपलक्ष्यमे वस्त्र, कर्पूर, गंध, गुलाबजल, आदि अनेक उत्तमोत्तम पदार्थोंको भेजे हैं।

अयोध्यानगर के अधिपति सम्राट् भरत हैं। और युवराज बाहुबलि हैं जो पौदनापुरका राज्य पालन कर रहे हैं। उन्होंने भी अनेक अनर्घ्य वस्त्र रत्नादिक पदार्थोंको माताजीको भेट मे भेजे हैं।

बाहुबलि सुनंदा देवीका पुत्र है, कृतयुगका वह कामदेव है। अपनी मौसीके उपवासकी पारणाके हर्षके उपलक्ष्यमे रत्न निर्मित पलंग, मोतीके पखा, माणिक से निर्मित जलपात्र, एव अगणित उत्तमोत्तम वस्त्र आदि उपहारको उसने भेजा है। बाहुबलिकी प्रधानदासी इन सब उपहारोंको लेकर माता यशस्वतीकी सेवामें उपस्थित हुई। और बहुत भक्ति से नमस्कार कर खडी होगई।

माता यशस्वती देवीने उस दासीसे प्रश्न किया कि दासी! हमारा छोटा बेटा कैसा है? उसकी स्त्रियां कुशल तो हैं न? बडे भाईके समान वह भी उपवास करता है या नहीं?

उस दासीने उत्तर दिया कि माता! बडे स्वामीके समान हमारे स्वामी अधिक व्रत नहीं करते हैं। उनको केवल एकभुक्त व्रत रहता है। उनके समान ही उनकी देवियां भी अल्प चारित्रमे ही रहती हैं।

तब माता यशस्वती देवीने फिर पूछा कि दासी! बहिन् सुनंदा देवीका क्या हाल है? उसका वर्तन किस प्रकार है? वह दासी कहने लगी कि माता! माता सुनदादेवी तो व्रत, जप उपवास व शरीरदमन आदि कार्यमे सदा लगी रहती है।

इसे सुनकर यशस्वती देवीने कहा कि ठीक है। यह हर्षका समाचार सुनाया। एक दासियोंको बुलाकर आज्ञा दी कि इस पौदनापुरमें आई हुई दासीको अर्जिकाओंका आहार होवे ही भोजन करावे। सब यथास्तु कहकर वहांसे चली गईं।

अब यशस्वतीने देखा कि बहुएं उनके दर्शनके लिये आरही हैं बहुओंने भी सासको दूर से ही देख ली। सासको देखनेपर उनको भोजन करनेके समान ही हर्ष हुआ।

सास उनके प्रति देखकर हस रही थी, वे भी सासके मुख को देखकर हसती हुई पासमें आरही हैं।

सासके निकट आकर सबने पहिले सासके समक्ष जिनपूजा व अभिषेकके प्रसादरूप गंधोदक व पुष्पको रखा व प्रार्थना करने लगी कि मातुश्री! हमने जो अभिषेक व पूजन देखा था उसपर आप भी प्रसन्नता जाहिर करें।

तब यशस्वतीने गंधोदक व पुष्पको ग्रहण करती हुई "इच्छामि" शब्दका उच्चारण किया।

बादमें सर्व सतियोंने अपनी पूज्य सासके चरणमें मस्तक रखने पर माताने आशिर्वाद दिया कि आपलोग अखण्ड सौभाग्य व सुखसे चिरकाल जीती रहो।

बादमें उन रानियोंने पुनः एक बार नमस्कार कर कहा कि माता! हमारी कुछ बहिनें पतिकी आज्ञासे अन्य कार्यमें चली गई हैं। वे यहा नहीं आसकी, इसलिये उनकी ओरसे यह नमस्कार है। इसे भी स्वीकार कीजियेगा।

तदनंतर वे सतिया सासको घेरकर बैठ गईं और धर्मचर्चा करने लगी।

माता यशस्वती देवीने विचार किया कि बहुओंका परिणाम किस प्रकार है यह देखना चाहिये। इसलिये वह जरा हसकर पूछने लगी कि बेटी! तुम लोगोंको कुछ काम नहीं दिखता है,

तुह्मारे पतिको भी विवेक नहीं है। व्यर्थ ही इस नवीन जवानीमें उपवास आदि कर शरीरको कष्ट क्यों देरही हैं? यदि भरतको विवेक होता तो वह कभी भी तुम लोगोंको उपवास व्रत ग्रहण नहीं कराता, उसके विवेकका नमूना तो देखो। राज्यपालन करते हुए मुनियोंके समान आचरण करता है यह अविवेक नही तो और क्या है? कदाचित उसे भोगमें इच्छा न हो तो न सही! हमारी प्रिय बहुवोंको भूखी रखकर कष्ट क्यों देता है? समझमें नहीं आता? जिन! जिन! परम कष्ट है।

इस बातको सुनकर वे सतिया कहने लगी कि माता! हमें किस बातका कष्ट है? एक मासमें हम एक उपवास करती हैं। इससे ज्यादा हम क्या करती हैं। जवानी ऊमरमें शक्तिके रहते हुए ही व्रत करना क्या यह उचित नहीं है? माता! हमारे प्राणनाथको अविवेकी आप कहसकती हैं? क्यों कि वे आपके पुत्र हैं। स्वर्गके देव भी आपके पुत्रकी बडे गौरवके साथ प्रसंशा करते हैं लोकमें सर्वत्र उसकी कीर्ति गाई जारही है। इसलिये माता! आपका पुत्र न अविवेकी है और न हमें कोई कष्ट है प्रत्युत हमें महासुख है।

इस बातको सुनकर वह माता यशस्वती बहुत प्रसन्न होगई! और कहने लगी कि आप लोगोंसे मैं अत्यंत प्रसन्न होगई हूं। तुम्हारे पतिके गौरवके प्रति आप लोग भी अभिमान रखती है यह हर्षका विषय है। इसी प्रकार धर्माचरण करती हुई आप लोग सुखसे रहो। बेटी! अब देरी होचुकी है। पारणाके लिये जल्दी जावो। अब विलंब मत करो।

तब उन देवियोंने कहा कि माता! आज पतिदेव आपकी पक्ति में ही बैठकर अपनी महलमें पारणा करनेवाले हैं। मुनियोंको आहार दान देकर वे आपको बुलानेकेलिए यहा आयेंगे तबतक हम लोगोंको यहीं पर रहनेकेलिए आज्ञा दी है।

इस बातको सुनकर यशस्वती विचार करने लगी कि हा ! मेरा पुत्र उपवासमें ही यहांतक आयगा उसे व्यर्थ ही कष्ट होगा, प्रकट रूपसे कहने लगी कि देवी ! अपन ही उधर चले। भरतको व्यर्थ ही कष्ट क्यों ? यदि वह हमारी महलमें पारणा करता तो यहां आनेकी जरूरत थी नहीं तो व्यर्थ ही उसे कष्ट क्यों दिया जाय ? इस प्रकार कहती हुई एक आप्त सतीको बुलाकर आज्ञा दी कि तुम अर्जिकावोंको आहार दान देनेका कार्य अच्छी तरह करो ! मैं भरतकी महल की ओर जाती हूं।

माता यशस्वती देवी अपनी बहुवोंके साथ मिल कर अब भरतके मंदिरकी ओर आई। भरतजी भी मुनियोंको आहार देकर उधर ही चलनेकेलिये निकले थे। मार्गमें ही मातुश्री को आती हुई देखकर भरतजी को जरा दुःख हुआ कि माताको कष्ट हुआ। मैं जाता तो इनको योग्य वाहन वगैरहपर बैठाळकर लाता। फिर प्रकट रूपसे अपनी स्त्रियोंसे बोलने लगे कि मैंने आप लोगों को आज्ञा दी थी कि मैं वहांपर जरूर आवूंगा। तबतक आप लोग वहींपर ठहरें। अब आपलोगोंको कांता कहें या भ्रांता कहे समझमें नहीं आता। उन स्त्रियोंनें कहा कि स्वामिन् ! हम लोगोंने उसी प्रकार विनति की थी, परतु अपने बेटेको कष्ट होगा इस पुत्रमोहसे माता एकदम उठी, उस समय उन्हे कौन रोक सकते थे।

माता यशस्वतीने कहा कि बेटा ! व्यर्थ दुःखी मत होवो। मैं अपनी इच्छासे ही आगई हूं। तुम्हारी जब स्त्रियां आगई तब तुम्हारे ही आनेके समान होगया।

सम्राटने अत्यंत भक्तिपूर्वक माताके चरणमें मस्तक रखा। मातुश्रीने पुत्रके मस्तकपर हाथ रखकर " इंद्रो भव ! पुनः इंद्रपूज्यो भव ! सांद्रसुखी भव ! इस प्रकार आशिर्वाद दिया। चलती २ ही पूछने लगी कि बेटा! सुन लिया ? तुम्हारे छोटे भाईका हाल।

वह उपवास नही करता है। कभी एक भुक्त कभी रसत्याग कर रहता है तुम व्यर्थ ही क्यों उपवास करते हो?

माता! मैं ऐसा क्या ज्यादा करता चार पर्वदिनोमें किसी एक पर्वमे उपवास करता हू, वह भी मेरा नियमव्रत है। यम व्रत नही। यम व्रतका आचरण करना कठिन हैं। नियम व्रत चाहे पालन कर सकते हैं चाहे छोड सकते हैं। हमारे लिये इसमें कोई कष्ट मालुम नही होता है ऐसा भरतजीने कहा।

बेटा! यदि तुह्मारे लिये कोई कष्ट मालुम नही होता हो तो भले ही करो, परतु मेरी बहुवोंको भी जबर्दस्ती यह व्रत कराकर उन्हे कष्ट क्यों देते हो? यह तो कहो?

माताकी इस बातको सुनकर भरतको हसी आई। माता! क्या आपकी बहुऐं आपके पुत्रसे भी अधिक हैं? बडी बहिनके पुत्रसे भी छोटे भाईयोंकी बेटिया अधिक हैं? बडी बहिनका पुत्र जब भूखा रहता है तब छोटे भाईयोंकी बेटिया भूखी नही रह सकती हैं! बडी बहिनसे भी छोटे भाई अधिक है? माता! मैं स्वत: अपनी इच्छासे उपवास करता रहता हू आपकी बहुवोंको उपवास करने के लिये कभी नही कहता हू, वे ही अपने आप उत्साहसे करती हैं इसे मैं क्या करू? माता! ये स्त्रिया महिने में एक उपवास करती हैं? इनको क्या हुआ है? भोग के लिये शरीर को जब बहुत समयतक लगाती हैं तो धर्म के लिये एक दिन भी नही लगावे? शरीरके भोगमें ही यदि अत्यत आसक्त होजाय तो पाप का बध होता है। उससे नरकादि दुर्गति की प्राप्ति होती है माता! जिनव्रत के लिये थोडा बहुत कष्ट भी उठाना पडता है! आगे जाकर मुक्तिकी प्राप्ति होती है। माता! मनुष्य जन्मको प्राप्त करनेके बाद जितने होसके अधिकसे अधिक व्रतोंका पालन करना चाहिये, भोगमें उन्मत्त होना बुद्धिमानोंका कर्तव्य नही है.

इन बातोंको सुनती हुई माता यशस्वती बीचमें ही बोल उठी कि बेटा! ठीक है, इसे रहने दो, तुमने मुनिदान कर भोजन करनेका जो व्रत लिया है वह कैसा है?

भरतजी कहने लगे कि माता! वह नियमव्रत है, यमव्रत नहीं। युद्धको जाते समय, चिंता व सूतकके समय इस व्रतका पालन नही होता है, हां! खा पीकर महलमें रहते हुए बराबर इस व्रतका पालन करता हूं।

माता! मैं अभेदभक्तिकी उपेक्षा कभी नही करता, बाह्य आचरणों का पालन कभी करता हूं, कभी नहीं भी करता हूं। माता! राज्यकी झझटके होते हुए जो पलसके उसी व्रतको ग्रहण करना चाहिये। बडे व्रतको ग्रहण कर बीचमें विचारमें पडना यह पागलोंका कार्य है।

माता! विशेष क्या कहू? देवाधिदेवकी राणी यशस्वतीके गर्भ में उत्पन्न यह भरत बिलकुल मूर्ख नहीं है। आप चिंता न करें। मैं अपनी शक्ति देखकर ही व्रतका पालन करता हूं।

इन बातोंको सुनकर माता यशस्वती कहने लगी कि बेटा! असीम राज्यको पालन करनेवाले तुझे व्रतादिकके पालन करनेमे बडा कष्ट होता होगा इस बातकी मुझे चिंता जरूर थी, अब वह दूर होगई है।

मैं कई दफे सोचती थी कि मेरे बेटेको बुलाकर एक दफे समझावूं। फिर उसी समय मनमें विचार आता था कि मेरे पुत्रकी वृत्तिकी देवेंद्र भी प्रसशा करता है। मैं उसे क्या कहू? बेटा! इस जवानीमें अगणित सुदरी स्त्रियोंकी बीचमे रहनेपर भी अपनेको नहीं भूलकर जागृत अवस्थामें रहनेकी तुम्हारी वृत्तिको देखनेपर मन प्रसन्न होता है। मेरे पुत्रको हजारों झझटें हैं। उसमें यह व्रत व उपवास आदिकी चिंता इसे, और लग, गई इस बातकी मुझे कभी २ चिंता होती है, परतु तुम्हे उन सब बातोंसे

अलग देखते हुए मुझे परम हर्ष होता है। बेटा भरत ! तुह्मारे शपथ पूर्वक मैं कहती हूं कि तुह्मारा राज्य, तुम्हारे भोग क्रिया व तुम्हारे व्रतोंको देखने पर मनमें विशेष चिंता होती है। आज तुम्हारी बातें सुनने से वह चिंता दूर होगई।

भरतजी कहने लगे कि माता ! आप मेरे प्रति इतनी चिंता करती हैं अतएव मुझे किसी प्रकार का भय नही है। अन्यथा मुझे इसप्रकारकी सपत्ति कहासे आती ? यह सब आपका ही प्रसाद है।

इस प्रकार वार्तालाप करते हुए सब मिलकर महलके दरवाजे पर पहुंचे, उस समय भरतजीने माताके पाद कमलोंको शुद्ध जल से प्रक्षालन किया। फिर अदर जानेके बाद उच्च आसन पर बैठालकर माताकी पूजा करनेकी तैयारी भरतजी करने लगे।

माता यशस्वती कहने लगी कि बेटा ! मुनियोंकी पूजा करना सिद्धातविहित मार्ग है, मेरी पूजा करना उचित नही है। जरा विचार करो।

भरतजी कहने लगे कि माता ! आप मुनियोंकी जननी हैं। वृषभसेनाचार्यकी आप माता हैं। वीर मुनि, अनतविजयमुनि, अच्युतमुनि, सुवीर मुनि, और अनतवीर्य मुनिकी आप जन्म-दात्री नहीं हैं ? लोकमें यक्षयक्षियोंकी पूजा की जाती है, आप तो साक्षात् ब्रम्हचारिणी है, आपकी पूजा करनेमें कौनसा विरोध है ?

बेटा भरत ! तुह्मारी वृत्तिको लौकिक लोग पसंद नहीं करेंगे। वे कुछ न कुछ बोले विना नहीं रहसकते। मेरी पूजाकी आवश्यकता क्या है ? तुम इस प्रकारके कार्य को मत करो। लोकापवादको देखकर चलना चाहिये ऐसा माता ने कहा।

फिर भरतने कहा कि माता ! लोक सब मेरी पूजा करता है। उस अवस्थामें मैं अपनी माताकी भक्तिसे पूजा करूं, इसमें दोष क्या है ? अविवेकियोंके वचनपर हमें ध्यान देना नहीं।

आप शांत चित्तसे बैठीं रहें हम तो पूजा करेंगे ही ।

इस प्रकार कहकर दूसरी ओर देखकर " लावोजी ! साम-ग्री लावो, और पूजा करनेके लिये आवो कहते हुए अपनी राणि-योंको बुलाया, तत्क्षण सभी राणियां सामग्री सह आकर उपस्थित हुई । और सब मिल कर बहुत भक्तिसे पूजा करने लगी ।

भरतजी मंत्र बोलते हुए सामग्री चढाते जारहे हैं । वे स्त्रियां सामग्री थालीमें भरकर देती जारही है । जल, गंध, अक्षत, पुष्प चरु, दीप, धूप फल व अर्घ्य इस प्रकार अष्टद्रव्यों से माताकी पूजा सम्राटने की । कोई स्त्रियां चामर ढोलती है, कोई पुष्पवृष्टि करती है । कोई कुछ, कोई कुछ, इस प्रकार तरह तरह से भक्ति कर रही है । माता चुप चाप के बैठकर इनकी लीला को देख रही है । पूजाकी समाप्तिमें उन राणियोंने नवरत्न से निर्मित आरती उतारी । भरतजीने अपनी देवियोंके साथ माताको नमस्कार किया । फिर माताकी बायें ओर बैठ गये, । इसी प्रकार सब राणियां भी पंक्ति बद्ध होकर बैठ गई ।

सासुने बहुवोंको बुलाकर अपनी पंक्तिमें भोजन करनेके लिये कहा व सबने एक साथ पारणा की । भरत चक्रवर्ती की महलके भो-जनका वर्णन क्या करें ? क्षीर समुद्रमें डुबकी लगानेपर जैसा हर्ष होता है उसी प्रकार उन्होंने भोजन अत्यत आनदके साथ किया ।

बादमें पारणाश्रमकी निवृत्तिके लिये भरतजी माताको हाथ-का सहारा देते हुए विश्रांति भवनमें ले आये । और वहांपर उन्होने माता को झूलेपर बैठनेके लिये प्रार्थना कर उस झूलेके डोरेको हाथमें लेकर झोका देने लगे । शायद यह माताने बाल्यावस्था में उसे जो झोका दिया है उसका बदला है । फिर भरतजी माताके ऊपर गुलाबजल को छिडक रहे हैं । माता ने उन्हें बाल्यावस्थामें दूध पिलाया है । उसका ऋण अब वे चुका रहे हैं । इसी प्रकार अपनी राणियोंके साथ माता

की अनेक प्रकारसे सेवा करते हुए कहने लगे कि माता! आपको बहुत कष्ट हुआ। आपका शरीर थकगया है। आप इस बुढापेमें उपवास क्यों करती है?

माता पुत्रकी बात सुनकर कुछ भी नहीं बोली। और मनमें विचार करने लगी कि आज भरत मेरे कारणसे विश्रांति नहीं ले रहा है। इसलिये यहांसे अब जाना चाहिये। प्रकट रूपसे कहने लगी कि बेटा मुझे अपनी महलको गये विना नींद नही आती है। इसलिये मैं वहा जाती हूं। तुम यहा विश्रांति लेलो। यह कह कर उठी भरतने भी हाथका सहारा दिया।

उसी समय माताकी दासियोंको अनेक वस्त्र आभूषणोंको भेटमें दिये। तब माताने विनोदके लिये कहा कि मुझे कुछ भी नहीं दिया? तब भरतजी ने कहा कि माता! आपको देनवाला मैं कौन हू! यह सब संपत्ति आपकी ही है।

तदनंतर माता अपनी महलमे आकर पारणा कर गई है। उस हर्षोपलक्ष्यमे सम्राटने सेकडों पेटियोंको भरकर वस्त्र आभूषण वगैरह भेजे। माताके साथ कुछ दूरतक पहुचानेके लिये भरतजी गये। उतनेमें दरवाजेपर पलकी तैयार थी। माता उसपर चढ गई, पुत्रने भक्तिसे नमस्कार किया। माता प्रेमसे आशीर्वाद देकर अपनी महलकी ओर प्रयाण कर गई। इधर भरतजी अपनी महलमें आकर सुखपूर्वक भोगयोगमें मग्न हैं।

कल दिग्विजयके लिये प्रस्थान करनेका विचार निश्चित होगा। परंतु आज भरतजीके मनमें उसकी कल्पना भी नहीं है। विचार भी नहीं है [illegible] निराकुलतासे सुखमें मग्न हैं। क्यों कि महापुरुषोंकी वृत्ति अलौकिक ही रहती है।

इति पारणासंधिः।
